स्वास्थ्य शिक्षा

एवं

शारीरिक शिक्षा शिक्षण

लेखक

प्रो० हेतसिंह बघेला

एम ए (इतिहास व हिन्दी) एम एड

राजस्थान प्रकाशन

त्रिपोलिया बाजार जयपुर-2

प्रकाशक
राजस्थान प्रकाशन
त्रिपोलिया बाजार
जयपुर-2

संस्करण 1992

मूल्य 60/-

मुद्रक
इन्टरकान्टीनेन्टल ट्रेडर्स
चाँदपोल बाजार,
जयपुर

प्राक्कथन

एस० टी० सी० (शिक्षक प्रशिक्षण) के प्रथम वर्ष में सत्र 1989-90 से शिक्षा विभाग राजस्थान, बीकानेर द्वारा निर्मित नवीन पाठ्यक्रम प्रभावी हो गया है। इस नवीन पाठ्यक्रम के अनुरूप अभी तक कोई पाठ्यपुस्तक उपलब्ध नहीं है जो शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रवक्ताओं एवं प्रशिक्षणार्थियों का मार्गदर्शन कर सके। प्रश्नोत्तर रूप में जो पुस्तकें उपलब्ध हैं उनमें विषय का नवीन पाठ्यक्रमानुसार विवेचन नहीं किया गया है। अतः वे प्रशिक्षणार्थियों को इस विषय के अध्ययन में सहायक नहीं हो पा रही हैं। प्रस्तुत पुस्तक इस अभाव की पूर्ति हेतु लिखी गई है। एस० टी० सी० (प्रथम वर्ष) के **सप्तम प्रश्न पत्र "स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा शिक्षण'** विषय पर रचित इस एक मात्र पुस्तक में निम्नांकित विशेषताएँ समाविष्ट की गई हैं —

(1) नवीन पाठ्यक्रमानुसार प्रत्येक अध्ययन बिंदु का विस्तार से विवेचना।

(2) नवीन राष्ट्रीय शिक्षानीति के परिपेक्ष्य में स्तरीय ग्रंथों से यथास्थान उदाहरणों सहित विषय का प्रतिपादन।

(3) सुबोध भाषा शैली आवश्यक तालिकाओं व रेखाचित्रों सहित सिद्धान्तों, नियमों व सकल्पनाओं का स्पष्टीकरण।

(4) एस० टी० सी० की गत परीक्षाओं के प्रश्नपत्रों से लिये गये प्रश्नों का पुस्तक के अन्त में अध्यायक्रम से समावेश तथा 1990 का प्रश्नपत्र।

आशा है उपरोक्त विशेषताओं के कारण यह पुस्तक प्रशिक्षणार्थियों एवं प्रवक्ताओं के लिये उपयोगी सिद्ध होगी। पुस्तक को और उपयोगी बनाने हेतु सुझावों का सदैव स्वागत होगा।

—लेखक

विषय-सूची

द्वितीय खण्ड शारीरिक शिक्षा

इकाई—1

1 स्वास्थ्य शिक्षा का अर्थ एव महत्व

स्वास्थ्य शिक्षा की आवश्यकता

नवीन राष्टीय शिक्षा नीति (1986) म यह सकल्प किया गया है कि—"खेल और शारीरिक शिक्षा सीखने की प्रक्रिया के अभिन्न अग हैं और इन्हे विद्यार्थियो की काय सिद्धि के मूल्याकन म शामिल किया जायगा। शारीरिक शिक्षा और खेल कूद की राष्ट्रव्यापी अधोरचना (Infrastructure) को शिक्षा व्यवस्था का अग बनाया जायेगा।' नई शिक्षा नीति ने इसीलिय खेल के मैदानो व उपकरणो तथा शारीरिक शिक्षा के अध्यापको की उपलब्धि पर बल दिया है। प्रतिभाशाली खिलाडियो को प्रोत्साहित करने, योग शिक्षा द्वारा शरीर व मन का समकित विकास करने तथा शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम म भी इसे सम्मिलित करने का सकल्प किया है। इसीलिये नवीन शिक्षा नीति पर आधारित राष्ट्रीय पाठ्यक्रम' म स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा को एक अनिवाय विषय घोषित किया गया है।

सर्वांगीण विकास की दृष्टि से बालक का शारीरिक और मानसिक रूप म स्वस्थ रहना अत्यन्त आवश्यक है। प्राय देखा जाता है कि विद्यालयो म स्वास्थ्य शिक्षा को उचित महत्व नही दिया जाता। इस उपेक्षा का उल्लेख करत हुए माध्यमिक शिक्षा आयोग ने कहा है—"देश के युवको के शारीरिक कल्याण का मुख्य दायित्व राज्य का होना चाहिए तथा जीवन की इस अवधि मे शारीरिक कल्याण के सामान्य स्तर के नीचे गिरने से गम्भीर परिणाम होते हैं—य रोग उत्पन्न कर सकत हैं या कुछ रोगो से ग्रस्त होने कि आशका बनी रहती ह। अत शारीरिक स्वास्थ्य और स्वास्थ्य शिक्षा का इतना महत्व हो जाता है जिसकी उपेक्षा किसी राज्य का नही करनी चाहिए। स्वास्थ्य शिक्षा क अतगत शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से स्वस्थ रहने हेतु बालको को निर्देशन दिया जाता है जिसका दायित्व विद्यालय का होता है। डॉ एस एम माथुर के अनुसार, 'विद्यार्थी के स्वास्थ्य को अच्छा रखने का उत्तरदायित्व अध्यापक पर अधिक रहता है परन्तु अध्यापक इस दायित्व को उसी समय निभा सकता है जबकि वह

स्वास्थ्य विनान से परिचित हो।'[1] शिक्षक प्रशिक्षण सस्थाओ म प्रशिक्षणार्थियो को स्वास्थ्य विनान का ज्ञान दिया जाना अपेक्षित है।

स्वास्थ्य शिक्षा का अर्थ

स्वास्थ्य शिक्षा का अथ प्रकट करते हुए डा एस एस माथुर ने कहा है- 'स्वास्थ्य शिक्षा स तात्पय उन सभी साधनो से है जो व्यक्ति को स्वास्थ्य के सम्ब ध म नान प्रदान करते हैं। विद्यालय म स्वास्थ्य शिक्षा देने का प्रयोजन यह है कि छात्रो म इसके द्वारा स्वस्थ आदतो का निर्माण हो तथा व अपना स्वास्थ्य सु दर बनाये रखने के लिए प्रयत्न करते रहे।"[2]

एम एस रावत न स्वास्थ्य शिक्षा को उसके उद्देश्यो के रूप म परिभाषित करते हुए कहा है—'स्वास्थ्य शिक्षा का मुख्य उद्देश्य छात्र छात्राओ के चरित्र तथा व्यवहार म स्वास्थ्य सम्ब धी परिवतन लाना है। स्वास्थ्य शिक्षा का उद्देश्य छात्र को वैज्ञानिक ढग स रहना, सुचारु रूप से जीवन व्यतीत करना तथा सदैव सुखी और प्रसन्न रहना सिखाता है। साधारण विश्लेषण किया जाय तो प्रतीत होता है कि स्वास्थ्य शिक्षा के दो मुख्य उद्देश्य है—

(1) स्वास्थ्य सम्ब धी ज्ञान।
(2) स्वास्थ्य के प्रति वास्तविक अभिवृत्ति होना।[3]

जी पी शैरी ने स्वास्थ्य शिक्षा अथवा निर्देशन का अथ इस प्रकार व्यक्त किया है, "स्वास्थ्य निर्देशो से बालक को उन सब बातो की जानकारी दी जाती है जिनको समाज तथा जाति के वतमान तथा भविष्य के स्वास्थ्य को बनाये रखने की आवश्यकता होती है।[4]

डी पी विजयवर्गीय एव रामदत्त शर्मा के शब्दो म "विद्यालयो म विद्यार्थियो के सर्वांगीण विकास की ओर ध्यान दिया जाने के निमित्त बालको के बौद्धिक विकास की दृष्टि से विषयाध्यापन किया जाता है, वैसे ही उनके शारीरिक विकास के निमित खेलकूद व व्यायाम की व्यवस्था की जाती है और उनके व्यक्तिगत तथा सामूहिक स्वास्थ्य की रक्षा कैसे की जानी चाहिए, इसकी जानकारी दी जाती है। विद्यालयो के लिए इस प्रकार स्वास्थ्य सम्ब धी जो सैद्धातिक और प्रायोगिक नान दिया जाता है उसे स्वास्थ्य रक्षा के विषयो म सम्मिलित किया जाता है।"

---

1 डॉ एस एस माथुर विद्यालय सगठन एव स्वास्थ्य शिक्षा, पृ 285
2 पूर्वोद्धत, पृ 285
3 एम एस रावत स्कूल स्वास्थ्य विनान, पृ 18
4 जी पी शैरी स्वास्थ्य शिक्षा।

विश्व स्वास्थ्य सगठन (W H O) के अनुसार स्वास्थ्य की परिभाषा इस प्रकार है 'स्वास्थ्य रोग या निबलता का मात्र अभाव नही है वरन् शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक कल्याण की पूण अवस्था है।" अत स्वास्थ्य की इसी समेकित रूप म जो शिक्षा दी जाती है, वह स्वास्थ्य शिक्षा कहलाती है।

उपयुक्त परिभाषाओ से स्वास्थ्य शिक्षा की सकल्पना के निम्नांकित तथ्य प्रकट होत हैं —

(1) विद्यालयो मे बालको के सर्वांगीण विकास हेतु स्वास्थ्य शिक्षा दिया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

(2) स्वास्थ्य शिक्षा के अ तगत बालको को स्वास्थ्य सम्ब धी ज्ञान देना तथा उनमे स्वास्थ्य के प्रति उचित अभिवृत्तियो को विकसित करना है।

(3) यह बालको को समाज क वतमान तथा भविष्य के स्वास्थ्य को बनाये रखने की प्रेरणा देती है।

(4) स्वास्थ्य शिक्षा से बालको मे स्वस्थ आदतों का निर्माण होता है।

(5) इसके द्वारा व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्वास्थ्य की रक्षा होती है।

(6) इसके अ तगत शारीरिक एव मानसिक दोनो प्रकार की स्वास्थ्य की रक्षा हेतु प्रयास किया जाता है।

स्वास्थ्य शिक्षा का महत्व

स्वास्थ्य शिक्षा की उपयु क्त अवधारणा से इसका महत्व प्रकट होता है। निम्नांकित बिन्दु इस सन्दभ मे द्रष्टव्य हैं —

(1) **बालको के उचित विकास हेतु स्वस्थ आदतों का निर्माण**—प्राथमिक शाला के 6 से 14 वष के आयु वग के बालको के लिये स्वास्थ्य शिक्षा का विशेष महत्व है क्योंकि इसी अवधि म बालक का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एव सवेगात्मक विकास तेजी से होता है। स्वस्थ आदतो का निर्माण इन बालको म वाछनीय है।

(2) **सामा य एव सक्रामक रोगों से सुरक्षा**— इसी आयु मे बालको को विभिन्न सामान्य एव सक्रामक रोगो से सुरक्षा की आवश्यकता होती है। स्वास्थ्य-शिक्षा इस आवश्यकता की पूर्ति करती है।

(3) **समुचित विकास हेतु कुपोषण एव सन्तुलित आहार का ज्ञान**— अत्यन्त आवश्यक है। स्वास्थ्य शिक्षा स पोषण की उचित व्यवस्था म सहायता मिलती है।

(4) **अधिगम म सहायक**—सीखने अथवा अधिगम की प्रक्रिया को प्रभावी बनाने म बालक के शारीरिक एव मानसिक स्वास्थ्य की विशेष भूमिका होती है। इस दृष्टि से स्वास्थ्य शिक्षा अधिगम म सहायक होती है।

(5) व्यक्तिगत एव सावजनिक स्वच्छता (Hygiene)—स्वास्थ्य शिक्षा द्वारा शारीरिक अगो की स्वच्छता तथा विद्यालय वातावरण की स्वच्छता सम्बन्धी उचित अभिवृत्तियो एव आदतो का विकास होता है।

(6) मानसिक स्वास्थ्य मे सहायक—बालको मे कुसमायोजन से उत्पन्न अनेक मानसिक विकृतियाँ हो जाती है। स्वास्थ्य शिक्षा बालको म आत्मविश्वास तथा सामाजिकता का विकास कर उनके मानसिक स्वास्थ्य एव व्यक्तित्व समायोजन मे सहायक होती है।

(7) आकस्मिक दुघटना मे प्राथमिक उपचार—किया जाना अत्यन्त आवश्यक है ताकि डाक्टर की चिकित्सा के पूव रोगी की जान बचाई जा सके। छात्रो को स्वास्थ्य शिक्षा के अन्तगत इसका ज्ञान कराया जाता है।

उपयुक्त तथ्य स्वास्थ्य शिक्षा की आवश्यकता एव महत्व को प्रकट करते है। शिक्षको का इस दृष्टि से विशेष दायित्व होता है। डा एस एस माथुर के शब्दो मे—"प्रत्यक शिक्षक का कत्त व्य है कि वह विद्यार्थियो म स्वस्थ आदतो का निर्माण करे और उन्हे स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करके स्वस्थ आदतो एव दृष्टिकोण को बनाने म सहायता प्रदान करे।'

नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुसार स्वास्थ्य शिक्षा के उद्देश्य एव महत्त्व

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) म स्वास्थ्य शिक्षा के उद्देश्य व उसके महत्व को इस प्रकार प्रकट किया है —

"स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा का लक्ष्य बालक को यह अवबोध कराना है कि *शरीर और मस्तिष्क का सतुलित विकास अच्छे स्वास्थ्य* के लिये अपरिहाय है। बालक को वाछित पोषण या आहार, स्वास्थ्य व स्वच्छता की आदतो के विकास मे सहायता देनी चाहिये जिसस कि परिवार व समुदाय के स्वास्थ्य स्तर म सुधार हो सके। शारीरिक शिक्षा का लक्ष्य शरीर के स्वास्थ्य, शक्ति व क्षमता म वृद्धि करना होना चाहिए।

स्वास्थ्य शिक्षा की विषय वस्तु प्रथम दस वर्षों म उन क्षेत्रो को सम्मिलित कर जो स्वस्थ जीवन के विकास हतु आवश्यक हो तथा साथ ही व देश की प्रमुख स्वास्थ्य समस्याओ से सम्बधित हो।'

इसी नीति को दृष्टिगत रखते हुए एन सी ई आर टी द्वारा निर्मित 'राष्ट्रीय पाठ्यक्रम म प्रथम दस वर्षीय सामान्य विद्यालयी शिक्षा के सभी स्तरो पर 'स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा' को एक अनिवाय पृथक् विषय के रूप म निर्धारित किया है। इसे 'केन्द्रिक पाठ्यक्रम' (Core Curriculum) का अभिन्न अग बनाया गया है। इस राष्ट्रीय पाठ्यक्रम राजस्थान सहित प्राय सभी राज्यों म लागू भी कर दिया गया है। शिक्षक प्रशिक्षण सस्थाओ के पाठ्यक्रम म भी

इसे एक पृथक् विषय-शिक्षण के रूप मे अपना लिया गया है। इस प्रकार स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार कर उसे विद्यालयी पाठ्यक्रम का अभिन्न अग बना दिया गया है।

नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति के नियान्वयन स्तर पर स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा को प्रभावी बनाने के उपाय भी किय जा रहे है जैसे खेल के मैदान व उपकरण की उपलब्धि, शारीरिक शिक्षा प्रशिक्षकों की नियुक्ति, प्रतिभाशाली खिलाडियो को प्रोत्साहन देना, स्वास्थ्य की जाच, आवश्यक टीके लगाना, स्वास्थ्य एव क्रीडा केन्द्रो आँगनवाडियो की स्थापना, योग शिक्षा द्वारा शरीर व मन का समन्वित विकास के प्रयास आदि। यदि राष्ट्रीय शिक्षा नीति का उचित कार्यान्वयन किया जाये तो निश्चित रूप म स्वास्थ्य शिक्षा द्वारा शरीर के स्वास्थ्य, शक्ति व क्षमता के विकास का लक्ष्य उपलब्ध हो सकेगा।

———

2 अच्छे व्यक्तिगत स्वास्थ्य के लिये स्वस्थ आदतो का अनुसरण/अनुकरण

अच्छा व्यक्तिगत स्वास्थ्य तथा आदतो का अर्थ एव महत्त्व

अच्छे व्यक्तिगत स्वास्थ्य का अभिप्राय 'विश्व स्वास्थ्य सगठन' के अनुसार इस प्रकार है— "स्वास्थ्य रोग या निवलता का मात्र अभाव नही है वरन् शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक कल्याण की पूर्ण अवस्था है।" अच्छे स्वास्थ्य के लिये नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति म "शरीर और मस्तिष्क के सन्तुलित विकास" को अपरिहार्य माना है। अच्छे व्यक्तिगत स्वास्थ्य के लिय स्वस्थ आदतो का निर्माण किया जाना वांछनीय होता है।

गैरेट (Garrett) ने आदत को परिभाषित करते हुए कहा है—"आदत उस व्यवहार का नाम है जो इतनी बार दोहराया गया है कि वह य त्रवत हो गया है।" आदतें बुरी भी होती हैं और अच्छी भी। अच्छी व स्वास्थ्य मान्य का अच्छे व्यक्तिगत स्वास्थ्य के लिए अनुसरण व अनुकरण करना आवश्यक है।

अच्छे व्यक्तिगत स्वास्थ्य हेतु अनुसरणीय एव अनुकरणीय स्वस्थ आदतें

रोग भोगकर आरोग्य होने की अपेक्षा यह बेहतर होता है कि व्यक्ति बीमार ही न पडे। दरअसल बीमार न होना अच्छा तो होता ही है और यदि थोडी सूझ बूझ से काम लिया जाये तो स्वस्थ रहना बहुत आसान है।

सक्षेप म, प्रत्येक रोग हमारी आहार विहार सम्बन्धी भूलो और अनियमितताओ से पैदा होता है। यहा कुछ स्वस्थ आदतो का उल्लेख किया जा रहा है—

(1) सुबह जल्दी उठना—प्रात काल सूर्योदय स पहले उठने के महत्त्व को प्राय सभी लोग जानते है, लेकिन इस नियम को लोग बहुत कम प्रयोग म लाते हैं। अत सवेर उठना शुरू कीजिए, आपको खुद अच्छा महसूस होने लगेगा।

(2) उषा पान —प्रात काल बिस्तर मे उठते ही शौच जाने से पहले कम से कम एक गिलास ताजा ठण्डा पानी पी लेना चाहिए।

इस अभ्यास से पाचन क्रिया दुरुस्त रहती है। पानी से आतों में हरकत पैदा होती है जिससे शौच खुलासा होता है। शाम के भोजन को पचाने के लिए रात भर पाचन यन्त्र काम करता रहता है। उदर में कुछ रासायनिक क्रियाएँ होती रहती हैं, जिनके फलस्वरूप पेट में कुछ गर्मी बढ़ जाती है। उषा पान से यह गर्मी शान्त होती है। पेशाब अधिक आता है जिससे गुर्दों और मसाने की सफाई होती रहती है।

वस्तुत हमारे स्वास्थ्य की अच्छाई-बुराई बहुत कुछ हमारी पाचन क्रिया पर निर्भर होती है। पाचन ठीक रखकर हम अनेक रोगों से बच जाते हैं। स्वास्थ्य सम्बन्धी सर्वेक्षण से यह पता चला है कि प्राय 80 फीसदी रोगों की शुरुआत पेट की खराबी के कारण होती है।

(3) व्यायाम—स्वस्थ रहने के लिए व्यायाम एक दूसरा बेहतरीन उपाय है। वस्तुत व्यायाम उन लोगों के लिए और भी जरूरी हो जाता है जिन्हें दिन में ज्यादातर बैठने का काम करना पड़ता है। मोटापा, मधुमेह, ऊँचा रक्तचाप आदि अनेक ऐसे रोग हैं जो काफी शारीरिक परिश्रम न करने से हो जाते हैं। इस दृष्टि से जिन लोगों को अपने पेशे के सिलसिले में चलना फिरना न मिलता हो, उन्हें अवश्य ही अपनी दैनिक क्रियाओं में व्यायाम शामिल कर लेना चाहिये। इसके अलावा जिन लोगों के शरीर का वजन ज्यादा होने लगा हो, उन्हें भी अपने दैनिक प्रोग्राम में व्यायाम शामिल कर लेना चाहिए।

व्यायाम से शरीर में स्नायु और पेशियाँ चुस्त व शक्तिशाली बनी रहती हैं। पाचन क्रिया दुरुस्त रहती है, रक्त सचार तेज और प्रवाहयुक्त बना रहता है। इसलिए शरीर हल्का और स्फूर्तिपूर्ण रहता है। व्यायाम अनेक रोगों से हमारे शरीर की रक्षा करता है।

व्यायाम अनेक तरह के होते हैं। व्यक्ति को अपनी पसन्द और सुविधा के अनुसार उनका चुनाव कर लेना चाहिए। योगासन व्यायाम दूसरे व्यायामों की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक और लाभकारी है।

(4) स्नान – नहाना हमारे रोजमर्रा के जीवन का एक साधारण कार्य है। प्राय प्रतिदिन स्नान करने के कारण हम नहाने का विशेष महत्व नहीं आंकते हैं। कदाचित् इसलिए सर्दी के दिनों में बहुत से लोग कई कई दिनों तक बिना नहाए ही रह जाते हैं।

लेकिन वास्तव में स्नान प्रतिदिन करना चाहिए। जो लोग सर्दी के डर से स्नान नहीं करते हैं उन्हें गरम पानी से नहाना चाहिए। स्नान से त्वचा के रोमकूप खुलते हैं और पसीना खुलकर आता है। रक्त सचार तेज होता है। ये दोनों क्रियाएँ स्वास्थ्य रक्षा करती हैं। बीमार पड़ने का खतरा बहुत कम हो जाता है।

(5) **भोजन** —स्वास्थ्य रक्षा मे भोजन का भारी महत्व है। सही भोजन से स्वास्थ्य को भारी सुरक्षा मिलती है और गलत भोजन बहुत जल्दी रोगो को निमन्त्रण देता है। भोजन के सन्दभ मे निम्नलिखित बातें ध्यान म रखने योग्य हैं—

एक बार भोजन करने के बाद दुबारा कम से कम पाच घण्टे बाद खाना चाहिए, इससे कम समय म भोजन पच नही पाता। भोजन खूब चबाकर खाना चाहिए। कम चबाने से उसका पाचन देर से होता है और भोजन से पूरे पोषक तत्व शरीर को नही मिल पाते। नियत समय पर भोजन करने से उसका पाचन अच्छा होता है। क्योकि पाचक रस नियत समय पर निकलने के अभ्यस्त होते हैं। भोजन हल्का और ताजा खाना चाहिए, रूखा सूखा और बासी भोजन अनेक प्रकार के पाचन विकार पैदा कर देता है। ज्यादा तले गए, भूने गए और पकाए हुए मिच मसाले क भोजन पोषणहीन हो जाते है। देर से हजम होते है तथा जिगर को हानि पहुँचाते है। इनस खून म अनावश्यक गर्मी बढ जाती है।

कच्ची सब्जिया जैसे टमाटर, गाजर, मूली एव मौसम के फल जैसे खरबूजा, केला, सन्तरा, ककडी चीकू, अमरूद, सेव, आम, अगूर, खीरा आदि अवश्य खाने चाहिए। इनसे प्राकृतिक खनिज लवण और विटामिन्स मिलते हैं, जो शरीर को स्वास्थ्य प्रदान करने के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। इनके अभाव म बहुत से रोग शरीर को घेर लेते हैं।

हल्के मन और प्रसन्न चित से भोजन करना चाहिए। खाते समय क्रोध, चिन्ता, शोक आदि भावनाओ को मन म मत आने दीजिए। प्रसन्नचित रहने स पेट की दीवारो से काफी पाचक रस निकलते हैं और भोजन का परिपाक अच्छा होता है। चिन्ता, क्रोध आदि से आक्रान्त रहने पर पाचक रस बहुत कम हो जाते हैं और खाया हुआ भोजन अच्छी तरह हजम नही हो पाता जिससे पाचन दोष पैदा होते हैं। अच्छा और पौष्टिक भोजन भी भूख से अधिक नही खाना चाहिए, क्योकि आतो म भोजन को पचाने की शक्ति की भी सीमा होती है। भूख म अधिक भोजन हजम नही होता, पेट म पडा पडा सडने लगता है और रोग पैदा कर देता है।

भोजन के साथ पानी ज्यादा नही पीना चाहिए। यदि पानी बिल्कुल ही न पिया जाए तो अच्छा है। पानी मे पाचक रस पतल पड जाते हैं। भोजन के दो तीन घण्टे बाद पानी पीने से पाचन म सहायता मिलती है। चाय का अधिक सेवन पाचन का बिगाडना है। खून म अनावश्यक गर्मी पैदा कर देता है और गुर्दों को क्षति पहुँचाता है। चाय पीने स जल्दी जल्दी खाँसी-जुकाम होने लगता है। गला खराब हो जाता है।

दूध दही, घी, छाछ, मक्खन स्वास्थ्यवधक और पौष्टिक भोजन है, लेकिन इन्हे भी आवश्यकता से अधिक मत खाइए। जो भोजन अच्छा न लगे, नही खाना चाहिए। अरुचिकर भोजन हजम नही हो पाता।

(6) **दातो की सफाई**—रोगो से रक्षा पाने के लिए दातो की प्रतिदिन सफाई करना बेहद जरूरी होता है। आज कल आम लोग दान साफ अलबत्ता करते हैं। लेकिन शायद वे उनकी सफाई का तरीका और उसके महत्व को नही समझ पाते। अगुली पर मजन लगाकर दातो पर रगड लेने मात्र से सफाई का काम पूरा नही हो जाता। इस तरीके से न तो दातो पर जमी मैल की पत ही साफ हो पाती है और न दातो की दरारो म अटका हुआ भोजनाश ही साफ हो पाता है। इन दोनो कार्यों के लिए ब्रुश की आवश्यकता होती है। लेकिन प्रत्येक बार दात साफ करने के बाद पूरी तरह सफाई की जरूरत होती है अन्यथा ब्रुश मे लगी पिछले दिन की गन्दगी और ज्यादा सडकर मुँह म पहुँचती है। वस्तुत इस दृष्टि से प्रतिदिन ताजी दातौन करना बहुत वैज्ञानिक और स्वच्छतापूण अभ्यास है।

दातो की सफाई जब अच्छी तरह नही हो पाती तो मैल की पत जमने से दात ढीले पडने लगते हैं। दातो की दरारा मे अटका हुआ भोजनाश सडकर मुँह से बदबू आने लगती है। अतएव ब्रुश हो या दातौन का ब्रुश बनाया गया हो उससे दात सामने की ओर से तो साफ करना ही चाहिए साथ ही मुँह के अन्दर पीछे की ओर से भी सफाई करनी चाहिए और दाढो की सतह भी रगडकर साफ करनी चाहिए।

दरारो के मध्य का भोजनाश नीम की सीक अथवा ताबे या चादी की बनी सीक से साफ करना चाहिए। दरअसल दात प्रातःकाल तो प्रतिदिन साफ करने ही चाहिए, इसके अलावा भी दोनो समय के भोजन के बाद सफाई जरूरी होती है। दाता के बीच से भोजनाश निकालकर पानी कुल्ले से अच्छी तरह सफाई अपेक्षणीय होती है।

दानो की सफाई मे लापरवाही करने से अक्सर दात मे कीडा लग जाता है। मसूडा के भीतर दात की जड म मवाद पड जाता है। दातो मे पायरिया का रोग सफाई न करने स ही होता है।

(7) **आखो की सुरक्षा**—हमारी सभी इन्द्रिया म आँखें सबसे नाजुक अग हैं। जब तक हम जागते रहते हैं हमारी आखें बराबर काम करती रहती है। अस्वास्थ्यकर वातावरण मे तथा आखो के थक जाने पर उनम खराबी आने की आशका बनी रहती है। मन्दी रोशनी म आंखो से ज्यादा काम लेना तथा बहुत बारीक अक्षर पढना, दृष्टिदोष हो जाने के आम कारण है। गन्दे हाथ लगने से

आँखों को गन्दे रूमाल, तौलिया आदि से पोंछने से, और मक्खी मच्छर द्वारा गन्दगी पहुँचने से आँखें दुखने आ जाती हैं। दुखने की दशा में आँखों को पूरा आराम देना चाहिए और उनका मुनासिब इलाज करना चाहिए। आँखों की सुरक्षा के लिए दिन में धूप का चश्मा इस्तेमाल करना एक अच्छा अभ्यास है।

पढ़ने लिखने के समय रोशनी पीछे से और बायें कन्धे की ओर से आनी चाहिए। कभी भी रोशनी को सामने रखकर न पढ़ें। यदि सामने रखना जरूरी हो तो लालटेन बल्ब या लैम्प पर कोई ऐसी चीज लगा देनी चाहिए कि रोशनी सीधी आँखों पर न पड़े।

(8) कानों की सुरक्षा—कानों की सफाई की ओर से लापरवाही रखने पर कई बार कान में दर्द हो जाता है और लोग बहरे तक हो जाते हैं। स्नान करने के बाद कानों को गुम तौलिये से भीतर बाहर से अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिए। अगर संयोग से कान में पानी भीतर पहुँच गया हो तो कुछ देर उसी करवट से लेट जाना चाहिए ताकि पानी बह जाए। तिनका, पैंसिल, हेयर पिन, निब जैसी नोकीली चीजों से कान कभी नहीं कुरेदना चाहिए, ये चीजें कान की गहराई में पहुँचकर पर्दे को नुकसान पहुँचा सकती हैं। कई बार पर्दा फट भी जाता है।

(9) कपड़ों की सफाई—यदि हम अपने पहनने और बिस्तर के कपड़ों की स्वच्छता की तरफ ध्यान न दें तो केवल स्नान द्वारा त्वचा की स्वच्छता का कोई अर्थ नहीं रह जाता। शरीर के समान ही कपड़ों की स्वच्छता भी अपेक्षणीय है। कपड़ों के सम्बन्ध में निम्नलिखित सावधानियाँ बरतिए —

(i) सर्दी के मौसम में सर्दी से बचने के लिए ऊनी कपड़े पहने जाते हैं। लेकिन कोई भी ऊनी वस्त्र सीधा ही धारण नहीं करना चाहिए, उसके नीचे एक सूती वस्त्र जैसे बनियान (गंजी) या अण्डरवियर जरूर पहनना चाहिए। सर्दियों के कपड़े बदन पर फिट अवश्य हों मगर किसी हालत में भी सख्त न हों। सर्दी के मौसम में कभी कभी पसीना आ जाता है। अतः नीचे के वस्त्र ऐसे होने चाहिए जो पसीना सोख लें और बदन पर ठण्डे न लगें।

(ii) गर्मी के मौसम के पहनने के कपड़े ढीले, हल्के और छीदे बुने होने चाहिए ताकि हवा लगकर पसीना खुश्क होता रहे।

(iii) वास्तव में किसी भी मौसम के कपड़े तंग नहीं होने चाहिए। आज कल नवयुवकों में तंग कपड़े पहनने का चलन स्वास्थ्य और स्वच्छता की दृष्टि से हानिकारक है।

व्यक्तिगत स्वास्थ्य के लिये अवांछित आदतें

(1) जहां तहां थूकना नही चाहिये। पान खाने की आदत नही डालनी चाहिये। पान से दांत मैले और कमजोर हो जाते हैं हर कहीं थूकने से गन्दगी के साथ साथ बीमारी भी फैलती है।

(2) उठने-बैठने के गलत तरीके रीढ की हड्डी को आगे की ओर झुका देते है। झुककर बैठना, ढीले ढाले तौर पर झुककर खडे होना और चलना, दोषयुक्त मुद्राएँ मानी जाती हैं। झुककर बैठने से वक्ष का विकास नही हो पाता इससे शरीर के विकास और रचना पर बुरा प्रभाव पडता है।

(3) बाजार की खुली चीजें खाना गन्दी आदत है इसी तरह चाट पकौडी खाना भी अच्छी आदत नही है।

(4) सिगरेट पीने से हानियाँ—सिगरेट पीने की आदत से सूँघने की शक्ति मन्द पड जाती है। इसमे निकोटीन नाम का एक प्रकार का जहरीला रसायन होता है जो फेफडो को खराब करता है। इससे सिरदर्द, सिर मे चक्कर आना अथवा अनिद्रा रोग उत्पन्न होता है तथा हाथ काँपना, दम फूलना, हृदय की गति तीव्र होना आदि लक्षण भी अधिक सिगरेट पीने से होते हैं। बहुत अधिक सिगरेट पीने से मुँह व फेफडो मे कैंसर तक हो जाते हैं। सिगरेट के सेवन मे मनुष्य की सोचने की शक्ति नष्ट हो जाती है।

(5) शराब से हानियाँ—अधिक शराब पीने से मनुष्य निष्क्रिय हो जाता है। शुरू मे थोडी सी स्फूर्ति का बोध होता है वह भी उच्चतर स्नायविक केन्द्रो के प्रभावित होने के कारण होता है। जब वह प्रभावित स्नायु केन्द्र स्नायु मण्डल से शराब के प्रभाव के कारण अलग हो जाता है तब पीने वाला आदमी आत्म-सम्मान और उचित अनुचित की भावना से मुक्त हो जाता है और वह हर तरह के उल्टे सीधे काम करने लगता है।

शराब से पौष्टिक शक्ति तथा तापमान जो थोडा बहुत प्राप्त होता है वह अत्यन्त अस्थायी होता है। जरूरत से अधिक बोलना और शरीर मे कम्पन होने जैसे लक्षण शराब के विषैले प्रभाव के कारण होते हैं, शराब पीते ही उसका कुछ भाग पक्वाशय की दीवारो से छनकर सीधे रक्त प्रणाली मे चला जाता है और शेष भाग प्राय छोटी आतो मे चला जाता है, अत उस पर पाचन प्रक्रिया द्वारा किसी तरह का परिवर्तन नही हो पाता। रक्त की धारा मे इस प्रकार मिल जाने के बाद वह शरीर के कोषो और अगो को भेदकर आक्सीकरण प्रक्रिया के द्वारा कार्बनडाई आक्साइड और जल उत्पन्न करता है और इसका लगभग 0 02 भाग ही गुर्दों और फेफडो के द्वारा सीधे बाहर निकल पाता है। शरीर की सतह पर

की रक्त वाहिनियों को फैलाकर व शरीर के अन्दर ताप का नियन्त्रण करने वाली प्रक्रिया म विघ्न डालकर त्वचा म भले ही शराब गर्मी पैदा करे परन्तु वास्तव में शरीर के भीतरी तापमान का कम करता है।

शराब आँख या कान जैसे ज्ञानेंद्रियों के स्नायुतन्तुओं पर अपना कुप्रभाव डालती है। शराब आमाशय म अम्ल की मात्रा बढ़ाकर तथा पेप्सिन की मात्रा कम कर पेप्टिक अल्सर जैसे रोगो को पैदा करती है। हल्की किस्म की शराब बुद्धि तो नष्ट करती ही ह साथ ही लीवर जैसे अगो को नुकसान पहुँचाती है।

---

3 सामान्य बीमारियाँ

इकाई–3-सामान्य बीमारियो एव उनकी रोकथाम के उपाय।

इकाई–11 पारिवारिक सुरक्षा के लिये घरेलू उपचारो की जानकारी।

इकाई–12-बीमारियो और उनकी रोकथाम, व्यक्तिगत एव सामूहिक स्वास्थ्य।

सक्रामक रोग (Contagious or Infection Diseases) सक्रमण या छूत (Infection) के कारण उत्पन्न होने वाले रोग है। सक्रमण या छूत शरीर मे विशेष लक्षण पैदा करने वाले जीवाणुओ के प्रवेश एव उनकी सख्या वृद्धि है। प्रत्यक्ष रूप से लगने वाले ससर्ग (Contagions) रोग तथा अप्रत्यक्ष रूप से लगने वाले सक्रामक स्पर्शजन्य (Infections) रोग कहलाते है।

सक्रामक रोगो की विशेषताए

1 वैज्ञानिको ने मालूम किया है कि छूत के रोग अत्यन्त सूक्ष्म कीटाणुओ अथवा वाइरसो द्वारा होते हैं। ये कीटाणु प्रत्येक रोग के लिए भिन्न भिन्न होते हैं अर्थात् खसरे के कीटाणु खसरा ही पैदा करते है तथा इनका आकार लगभग 1/10,000 सेंटीमीटर का होता है।

2 ये कीटाणु प्राय वनस्पति जन्य होते है तथा प्रकाश व ताजी हवा म इनका विकास रुक जाता है। ये गन्दे, गीले व अधेरे स्थाना मे विशेष रूप से पनपते हैं।

3 ये कोटाणु स्वस्थ मनुष्य के शरीर म पहुँचकर विष उत्पन्न करते हैं जो व्यक्ति के रक्त मे मिल जाता है। इनके रक्त मे पहुँचने पर रक्त म पाए जाने वाले श्वेतकण इनको प्रभावहीन करने का काय करते हैं। सफल होन पर व्यक्ति बीमार नही होता पर असफल होने पर उसम उस बीमारी के लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

4 कीटाणु जब एक ही साथ अधिक व्यक्तियो को प्रभावित करते हैं ता इनका रूप महामारी जैसा हो जाता है, जैसे—हैजा, इन्फ्लूएन्जा आदि।

5 संक्रामक रोगों में प्रत्येक की एक निश्चित अवधि रहती है तथा इस अवधि के समाप्त होने पर यह रोग प्राय स्वत ही हो जाता है।

6 ऐसे रोगों में एक व्यक्ति प्राय एक ही बार पीड़ित होता है परन्तु कुछ रोग किन्हीं विशेष कारणों से एक से अधिक बार भी होते हैं। उदाहरणार्थ कंठ रोहिणी (Diphtheria) एक ही बार होता है। पर चेचक, इन्फ्लुएन्जा दुबारा भी हो जाते हैं। किसी बीमारी विशेष से प्रभावित न होने की शक्ति रोग निरोधक क्षमता (Immunity) कहलाती है। किसी किसी रोग में यह जीवन भर के लिए और किसी किसी में थोड़े समय के लिए पैदा होती है। इस क्षमता को कृत्रिम तरीकों से भी जैसे टीका लगाकर पैदा किया जाता है। इस क्षमता के कारण प्राय बहुत से व्यक्ति बीमार नहीं होते।

7 प्रत्येक संक्रामक रोग की तीन अवस्थाएँ होती हैं—सम्प्राप्तिकाल, पूर्ण लक्षण काल तथा रोग मुक्तिकाल जो भिन्न भिन्न रोगों में भिन्न भिन्न होती है।

8 इनसे बचने के लिए रोगी को स्वस्थ व्यक्तियों से अलग रखना तथा रोगी के काम में आने वाली वस्तुओं को दूसरे व्यक्ति द्वारा उपयोग में लाने के पूर्व निःसंक्रमित करना आवश्यक रहता है।

9 जिन व्यक्तियों पर ऐसे किसी संक्रामक रोगों से ग्रसित होने का सन्देह हो, उन्हें रोग के सम्प्राप्तिकाल के दिनों तक गाँवों या शहरों में जाने से रोकना चाहिए। विशेष रोगों में इस प्रबन्ध को, 'क्वारेनटाइन' (बस्ती से दूर अस्थायी प्रबन्ध) के द्वारा रोका जाता है। विद्यालय के बालकों को ऐसे संक्रामक रोगों से बचाने के लिए रोग ग्रसित बालकों से पृथक रखा जाना चाहिए और उन्हें बिमारी की अवस्था में विद्यालय में उपस्थित न होने दें।

बीमारियों का संक्रमण

संक्रामक रोगों के कीटाणु स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में पहुँचने के बाद रक्त में अपने विष को पहुँचाते हैं। इसमें हम यह देखना होगा कि कीटाणु स्वस्थ व्यक्ति तक कैसे पहुँचते हैं? ये कीटाणु अति सूक्ष्म होते है, अतः हम इन्हें देख नहीं सकते, पर वे रोगी के थूक, छीक, खासी के साथ निकले हुए बलगम, वमन, मल तथा मूत्र में मिले रहते हैं या उसके श्वास के साथ निकलते हैं। इस प्रकार किसी भी रोग के कीटाणु, वायु, भोजन एवं जल के द्वारा स्वस्थ व्यक्ति तक पहुँचते हैं। रोग फैलाने में मक्खी की भी गणना की जा सकती है क्योंकि मक्खी के खाने पीने की वस्तुओं पर बैठने से रोगी के कीटाणु स्वस्थ व्यक्ति तक पहुँचते है। कभी-कभी चोट लगने से कटी हुई त्वचा के द्वारा भी ये शरीर तक पहुँच जाते हैं।

सामान्य रोगो का सक्रमण, लक्षण परिचर्या एव उपचार के क्रम मे विश्लेषण

(1) मलेरिया (Malaria)—भारत म अब मलरिया का जार पहल जैसा नही है क्योकि राष्ट्रीय स्तर पर इसके उन्मूलन का व्यापक कायक्रम हमारी सरकार ने चलाया है। सरकार को इस काय म विश्व स्वास्थ्य सघ (डब्ल्यू एच ग्रो) का पूरा पूरा सहयोग मिला है। यह रोग उष्णकटिबन्धीय रोग है अर्थात् ट्रापिकल कन्ट्रीज म ही यह विशेष रूप म मिलता है। यह एनोफिलिज जाति की मादा मच्छर के काटने स फैलता है।

लक्षण—सिर दर्द, जी मचलना, वमन, ठड के साथ जोरों स बुखार ग्राना तथा बाद म पसीना ग्राकर उतरना, 24 48 72 घण्टा के बाद पुन बुखार ग्राना, तिल्ली का बढ जाना तथा रक्ताल्पता होना इस रोग के प्रधान लक्षण हैं।

सक्रमण—रोग का सक्रमण एनाफिलीज मादा मच्छर के काटने स होता है। वस्तुत इस रोग का जीवाणु मलेरिया परेसाइट है जो मनुष्य के खून के लाल कणो मे पहुँच कर ग्रपनी सख्या बढाता है, फिर उक्त कणों का तोडकर खून के तरल ग्रश 'प्लाजमा' म ग्रा जाता है तथा फिर दूसरे लाल कणा म पहुँच कर ग्रपनी सख्या बढाता जाता है। इस कारण इसकी सख्या बढने के साथ साथ खून मे लाल कणो की कमी से रक्ताल्पता बढती हैं ग्रौर टूटे हुए कण तिल्ली म इकट्ठे होने से उसका ग्राकार बढता जाता है। खून के लाल कणो को तोडकर प्लाज्मा म इन जीवाणुग्रो के मिलते समय खूब जोर से ठड लगती है ग्रौर ज्वर बढ जाता है। यह समय लगभग 24, 48 या 72 घण्टों म ग्राता हैं। इसी के ग्रनुसार मलेरिया प्रतिदिन तिजारा या चौथिया (पाली) के रूप म रोगी को रहता होता है।

मलेरिया परेसाइट (मलेरिया के पराश्रयी जीवाणु का जीवन चक्र)—यह जीवाणु ग्रमैथुनी ग्रथवा मैथुनी (Asexual or sexual) चक्र द्वारा ग्रपनी वश वृद्धि करता है। ग्रमैथुनी चक्र म तो यह रोगी के खून के लाल कणा के भीतर उपयुक्त विधि से सख्या वृद्धि करता है ग्रौर प्राय 3–4 चक्रो के बाद फिर यह चक्र बन्द हो जाता है किन्तु मैथुनी चक्र म एनोफिलीज मादा मच्छर के पेट मे जब नर व मादा दोनो प्रकार के परेसाइट रोगी को काटते समय रक्त चूसने के साथ पहुँच जाते है तो दोनो के मेल से ग्रनेक पराश्रयी पैदा हो जाते हैं। जब मादा मच्छर किसी स्वस्थ व्यक्ति को काटती है तब उस समय इन परेसाइट्स को खून म छोड देती है जहाँ य ग्रपने ग्रमैथुनी चक्र द्वारा बढते जाते हैं।

परिचर्या एव उपचार—रोगी को विश्राम दें। रोग की तीव्रता कम करने के लिए ग्राजकल एटेब्रीन्, पेल्यूड्रीन, नेवाक्वीन ग्रादि विशिष्ट ग्रौषधियो का प्रयोग

गोलिया तथा इन्जेक्शन के रूप म किया जाता है, जिन्हे चिकित्सक की सलाह स काम मे लेना चाहिए।

रोग के प्रसार की रोक—इसके लिए मच्छरा का नाश व रोग के शरीर म पहुचे हुए पराश्रयी का नाश करना आवश्यक है। मच्छरो की रोक के लिए घरा क पास एकत्रित पानी पर मिट्टी का तेल छिडकना, घर की दीवारा पर डी डी टी या पिलट छिडकना, गन्दे पानी को बहाने के लिए अच्छी नालियाँ बनवाना, पानी मे मछली छोडना आदि लाभदायक है। मच्छरदानी के प्रयोग से भी मच्छरा से बच सकते हैं। रोगी के शरीर म पहुचे पराश्रयी के नाश के लिए उपयुक्त औषधिया योग्य चिकित्सक की सलाह से काम म ली जायें।

बरसात के दिना म जब कि आस पास के गड्ढा म पानी भर जाता है एनोफिलिज जाति के मच्छर विशेष रूप से बढ जाते है और इस कारण मलेरिया व्यापक रूप से घर घर मे फैल जाता है। यद्यपि राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम द्वारा इस रोग मे काफी हद तक रुकावट हुई है, फिर भी जब इस बीमारी का जोर हो, उन दिना मे विद्यार्थिया को इसकी रोक के लिए उचित मात्रा म गोलियाँ देते रहना लाभप्रद रहता है। जो बालक बार-बार इस बीमारी से ग्रसित रहते हैं, उनको चिकित्सक के पास भिजवाना चाहिए। ऐसे बालको की तिल्ली बढ जाती है तथा खून की कमी के कारण चेहरा फीका पड जाता है।

(2) **आन्त्रिक ज्वर (टाइफाइड)**—जैसा कि इसके नाम से प्रकट है यह बीमारी आता स सम्बन्ध रखती है। अत उसका उपसग खानेपीने की वस्तुओं द्वारा रोगी से स्वस्थ व्यक्ति को हो जाता है। हमारे देश म यह बीमारी विशेष रूप से ग्रीष्म ऋतु म होती है। इसका सप्राप्ति काल 4 दिन से लेकर 1 दिन होता है।

सक्रमण—यह रोग सालमोनिला टाइफोसा (Salmonella Typosa Group) के कीटाणुओ से फैलता है। रोग की प्रारम्भिक अवस्था म यह कीटाणु रक्त म परिक्रमण करता है तथा 30% रोगिया के पेशाब म मौजूद रहता है। ऐसे रोगी के मल मूत्र पर बैठने वाली मक्खिया इन्हें स्वस्थ व्यक्तियो तक पहुचाने म सहायक होती है। दूध को बिना उबाले पीने स भी इसका भय रहता है।

लक्षण—प्रारम्भिक अवस्था मे बेचैनी सिरदद तथा आलस्य का अनुभव होता है। सारे शरीर व पेट म दद होकर तापक्रम 103 डिग्री के आस पास पहुँचता है। ज्वर प्राय तीन सप्ताह तक चलता है। प्रात काल व सायकाल के तापक्रम म थाडा अन्तर रहता है। बहुधा रोगिया के शरीर पर छोटे छोटे दाने निकलते हैं जो प्रकाश म मोती स चमकते है अत इस राग को मोतीझरा भी कहते हैं। इसम रोगी की नाडी कमजार व एक मिनिट मे कम सख्या म चलती है। दूसरे सप्ताह म रोगी की कमजारी बढ जाती है। नाडी की गति तापक्रम के मुकाबले मे कम रहती

रहती है जैसे 102 डिग्री फारनहाइट के ताप पर 110 प्रति मिनट के बजाय कम रहती है। पतले दस्त आते हैं, ज्वर बढ़ जाता है, पेशाब कम व रंगीन आता है तथा तीसरे सप्ताह म ज्वर कम होने लगता है।

परिचर्या एव उपचार—रोगी को हवादार कमरे मे रखें। उसके मल मूत्र, थूक आदि मलो का नि-सक्रमण करें। भोजन म हल्के व तरल पदार्थ दें। पानी को उबाल कर ठण्डा करके पिलाएँ। रोक के लिए डी ए बी का टीका लगवाना चाहिए। आन्त्रिक ज्वर के रोगी को असावधानी से कितनी ही प्रकार के अन्य विकार हो जाते हैं। अत योग्य चिकित्सक की देख-रेख मे भी रोगी को रखा जाना चाहिए। रोगी की तापक्रम तालिका रखनी चाहिए।

(3) क्षय (Tuberculosis)

यक्ष्मा, राज्य यक्ष्मा, तपदिक व अग्रेजी मे ट्यूबरक्लोसिस (Tuberculosis) नाम से पुकारा जाने वाला यह रोग अत्यन्त भयानक एव अत्यधिक सक्रमित हाने वाला है। जैसा इसके नाम से ही प्रकट है। यह रोगी के शरीर को क्षय करता जाता है।

सक्रमण—इसका उत्पादन जीवाणु ट्यूबरक्लि वेसिलस माना जाता है, जो श्वास द्वारा व्यक्ति के शरीर म पहुँचता है। रोगी के खासने, छीकने तथा जोर से बोलने पर ये कीटाणु हर 3 फीट दूर के व्यक्ति के श्वास म प्रविष्ट हो जाते हैं। जिस धूल म रोगी की लार अथवा नाक का श्लेष्मा मिला रहता है, उसके उडने से भी वायु म मिलकर यह स्वस्थ व्यक्ति के श्वास म पहुँच जाता है। बीमार पशुओ के दूध व मांस प्रयोग से भी यह स्वस्थ व्यक्ति तक पहुँच जाता है। इसका सक्रमण प्राय 15 से 30 वर्ष की आयु में अधिक होता है और पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो पर (विशेषत पर्दा रखने वाली) अधिक प्रभाव होता है। गन्दी बस्तियो म जहाँ सूर्य का प्रकाश नही पहुँचता यह प्राय मिलती है। इसके अतिरिक्त अपौष्टिक तथा अपर्याप्त भोजन करने वाले, अपनी शक्ति से अधिक श्रम करने वाले तथा शराब पीने वाले, धूम्रपान करने वाले, एव खसरा, कूकर खासी आदि रोगो के कारण दुबले व्यक्तियो को यह बीमारी अधिक प्रभावित करती है। यह रोग अधिकतर फेफडो से होता है, लेकिन कण्ठमाला हड्डियो के क्षय एव आँतो के क्षय के रूप मे भी इसका प्रभाव पडता है।

लक्षण—फेफडो के क्षय से प्रारम्भ मे थकावट, धीरे धीरे भूख कम लगना, काम करने म जी नही लगना, सांयकाल हल्का हल्का ज्वर होना, खासी उठना जो आगे जाकर गीली खाँसी म बदल जाती है, बार बार जुकाम रहना, त्वचा का पीला पडना तथा चलने फिरने पर दम भर जाना आदि इसके मुख्य लक्षण हैं।

हड्डियो का क्षय—अधिकतर कूल्हे की हड्डी तथा रीढ की हड्डी मे इसका प्रभाव देखा जाता है जिसमे दद रहता है। कूब निकलना तथा मवाद पड जाने के भी लक्षण मिलते है।

कण्ठमाला—इसमे गदन की गिल्टिया फूल जाती है, दद करती हैं तथा गदन की हरकत म बाधा होने लगती है।

उपचार—आज के युग मे क्षय की चिकित्सा असाध्य नही है। विशिष्ट रूप से क्षय चिकित्सालया (T B Sanatorium) तथा सामान्य चिकित्सालयो मे भी इसकी सफल चिकित्सा होने लगी है। इसमे उपचार का सिद्धात रोगी की शारीरिक दुबलता को दूर करने तथा उसमे रोग के कीटाणुओ से लडने की शक्ति बढाना है। 'विटामिन 'बी' कम्पलेक्स की गोलिया, दूध, अण्डे व फलो का सेवन करना हितकर रहता है। बी सी जी का टीका रोग के प्रारम्भ को रोकने के लिए लगाया जाता है। इससे रोग निरोधक क्षमता पैदा होती है। डब्ल्यू एच ओ के द्वारा व्यापक रूप से इस टीके को लगाने का कायक्रम चल रहा है।

(4) हैजा (Cholera)

उपसर्ग—इस रोग का उपसग कॉलेरा विब्रिस (Cholera vibris) नामक जीवाणु से होता है। इसकी शक्ल कोमा चिन्ह जैसी रहती है। अत इसे कोमा वेसीलाई भी कहते हैं। ये कीटाणु खाद्य अथवा पेय पदार्थों से स्वस्थ शरीर मे प्रविष्ट होकर बडी शीघ्रता से सख्या वृद्धि करते हैं। मुख्यत दूषित जल का पीना इसके फैलने का प्रधान कारण बनता है। मक्खियाँ इसका प्रसार करने म सहायक है।

लक्षण—रोगी को कै और दस्त लगते हैं। जो चावल के माड जैसे व पतले होते हैं। रोगी को प्यास अधिक लगती है और उसका पेशाब बन्द हो जाता है। रोग अधिक बढने पर हाथ-पाँव मे पीडा व अकडन होती है तथा शरीर ठण्डा होने लगता है।

परिचर्या एव उपचार—रोग ग्रसित होते ही योग्य चिकित्सक को दिखाए। रोगी को आराम से लिटावें और खाने को केवल चावल का पानी या अण्डे की सफेदी दें। वमन तथा दस्त बढने से शरीर म द्रवांश की कमी रोकने के लिए नामल सलाइन के इन्जक्शन देना लाभदायक रहता है। पीने के लिये पोटेशियम परमेगनेट का हल्का घोल हितकर रहता है। रोकथाम के लिए हैजे के टीके लगवाने चाहिए। टीके म चार माह तक रक्षा हो जाती है। रोगी के उपयोग में आई वस्तुओ का निसक्रमण तथा उसके मल-वमन को नष्ट करना जरूरी है। मक्खियों को नष्ट करना व उनसे खाने पीने की वस्तुएँ बचाना आवश्यक है। सडी गला गन्दी व मिठाइयो का उपयोग न किया जाए।

(5) इन्फ्लूएन्जा (Influenza)

इसे संक्षेप मे 'फ्लू' कहते हैं। यह सामान्यत जुकाम के रूप म होता है तथा कभी-कभी महामारी के रूप मे फैलता है।

संक्रमण—यह रोग 'एन्फ्लूएन्जा वाइरस' के द्वारा उपसंजित होता है। इसका सम्प्राप्तिकाल कुछ घण्टो से लेकर कुछ दिना तक रहता है।

लक्षण—आकस्मिक जुकाम, सिर दद, छीक व नाक से पानी बहना, शरीर म ज्वर, हाथ-पाव व कमर मे दद, बेचेनी तथा कमजोरी का अनुभव इसके प्रमुख लक्षण हैं। फ्लू तीसरे दिन उतरता है।

परिचर्या एव उपचार—रोगी को तुरन्त बिस्तर पर लिटा देना चाहिए। गले व नाक को साधारण नमक के घोल से साफ करना चाहिये और चिकित्सक को दिखाकर आवश्यकतानुसार इन्जेक्शन लगा लेना चाहिये। इसम रोगी को ठण्ड से बचने की अधिक जरूरत रहती है, जिससे उसे ब्रोकाइटिस या निमोनिया न हो जाय। रोगी को दूसरे स्वस्थ व्यक्तियो से अलग रखना चाहिए। खासते व छीकत समय रुमाल का प्रयोग करना चाहिए एव उसे प्रयोग करने के बाद उबलते पानी से धोना चाहिए।

(6) पेचिस (Dysintry)

यह प्राय बच्चा को अधिक होता है। इसमे आता के व्रण बन जाते हैं। वर्षा ऋतु म इसका विशेष जोर रहता है।

संक्रमण—यह दो प्रकार के जीवाणुओ से अधिकतर फैलता है—एक अमीबा द्वारा जिसे अमीबिक (डिसेन्ट्री) कहते हैं तथा दूसरा जो बैसिलरी डिसेन्ट्री कहते हैं, उपसंजित होता है। यह रोगी के मल पर बैठी हुई मक्खिया के द्वारा स्वस्थ व्यक्ति तक पहुँचते हैं।

लक्षण—दोनो प्रकार की पेचिश मे पतले दस्त आना लक्षण है। दस्तो के साथ मवाद व खून आता है। पेट मे दद बना रहता है। यह दद कभी-कभी पट के कटने जैसा और कभी-कभी सुई चुभने जैसा होता है।

परिचर्या एव उपचार—रोगी को आराम दें, मक्खिया से खान पीने की चीजा को बचाएँ। रोगी के मल से अन्य रोगी की वृद्धि बचाने के लिए फिनाइल का इस्तेमाल करें।

(7) दाद खाज

ये रोग त्वचा से सम्बन्ध रखते हैं तथा ससग से फैलत है। दाद के जीवाणु बाला की जडो पर आक्रमण करते हैं तथा शरीर म कही भी त्वचा को प्रभावित करते हैं। दाद का रोग एक प्रकार की फफूँदी से होता है जो टीनिया (Tivea)

कहलाती है। खुजली का प्रसार एक पराश्रयी से जिसे स्केबीज (Scabbies) कहते है, होता है। यह त्वचा की ऊपरी सतह से नीचे घुस जाता है और प्राय कलाई के सामने व पीछे, टखन व पांव व बगल तथा हाथ-पांव की अगुलियो के बीच की जगह को प्रभावित करता है।

लक्षण—दाद के आरम्भ म 2–3 सेन्टीमीटर परिधि का एक लाल चकत्ता त्वचा पर पडता है। यह आसमान से उभरा हुआ तीन किनारे वाला व गुलाबी रग का होता है। यह केन्द्र मे ठीक हो जाता है व किनारो की ओर फलता जाता है।

खाज मे पहले छोटे छोट दाने व फुन्सियां होती हैं जो दाद मे बडी-बडी हो जाती हैं। खुजली चलती है। त्वचा मोटी हो जाती है और उसका रग काला पड जाता है।

उपचार—दाद यदि बालो म हो तो बाल कटवाने चाहिए और टिंचर तथा एमोनिएटेड मर्करी का मरहम या जम्सकटर या अन्य प्रचलित मरहम लगाना चाहिये। मरहम लगाने के पूव पाटेशियम परमैंगनेट के घोल से धो लेना चाहिए। दूसरे व्यक्तियो को रोगी द्वारा काम मे ली जाने वाली वस्तुओ से बचाना चाहिये।

खाज—गम पानी से स्नान करके अथवा प्रभावित अग को धोकर, पोछ कर गधक का मरहम लगाएँ या बेन्जिल बेंजोएट का घोल लगा कर सूखने दें। रोगी के वस्त्रो को बदल कर नि सक्रमित करें तथा स्वस्थ व्यक्तियो को रोगी के ससग मे आने दें।

(7) ट्रेकोमा (Trachoma)

लक्षण—टेकोमा एक गम्भीर प्रकार का रोग है जो अंधेपन का कारण बन जाता है। एवलिन पीयस (Evelyn Pears) के अनुसार—"टेकोमा एक प्रकार का नेत्रसधि रोग है जो एक विषाणु द्वारा नेत्र मे सूजन के रूप म होता है। यह विश्व मे अंधेपन का प्रमुख कारण है।" इस रोग की चिकित्सा डाक्टर से कराई जानी चाहिए। नेत्रो मे टैरामाइसीन आपथैलमिक मल्लम लगाने तथा सर्फमेमाइड आई ड्रोप्स डालने से इस रोग मे आराम मिलता है।

सक्रमण—ऐसे रोग स ग्रस्त छात्र की आंखो की पलकें सूज जाती हैं व नेत्रो मे लाली व सफेद दाने हो जाते हैं। यह सक्रामक रोग है। अत रोगी के सपर्क म अन्य छात्रो को नही आने देना चाहिए। इस रोग के कारण आंखो पर अधिक जोर देना, धुएँ धूल का प्रभाव, दृष्टि दोष, दांतो की खराबी, अपौष्टिक भोजन, मुँह से सांस लेन तथा एडिनोइडस या गिल्टी (Adenoids) होते हैं।

उपचार—इस रोग म उपचार सम्बन्धी सावधानियाँ हैं—आंखो को

ंदगी, तेल, धूप प्रकाश, धूल, धुएँ मे सुरक्षा करना तथा चश्मे के प्रयोग मे दृष्टि-
ोष को ठीक रखना ।

8) कुष्ठ रोग (Leprosy)

सक्रमण व लक्षण—यह छोटे छोटे कीटाणुओ मे फैलता है । इसमे चमडी
ा गलाव पड जाता है व घाव हो जाते हैं । इसका उपचार है एन्टीसैप्टिक स्नान
ा ग धक का प्रयोग ।

(9) अधापन

सक्रमण तथा लक्षण—

(1) आँखो म सूजन इस नाम का कारण है ।
(2) जन्म के समय नेत्रो मे सुजाक (Gonorrhoea) का सक्रमण लगने से होता है ।
(3) निकट दृष्टि-दोष (Short Sightidness) के कारण भी हो सकता है ।
(4) जन्मजात गर्मी राग (Syphilis) तथा मोतियाबिंद (Cataeract) जैसे वशानुगत रोग भी इसके कारण होत हैं ।
(5) दुघटना के कारण नेत्रा पर आघात लगने से भी होता है ।

उपचार—

(1) दृष्टिदोष चश्मे के प्रयोग से दूर हो सकता है ।
(2) विद्यालयो मे छात्रों की नेत्र परीक्षा कर डॉक्टर से उनकी चिकित्सा करनी चाहिए ।
(3) दृष्टिहीन छात्रो को अध विद्यालयो मे प्रवेश दिलाना चाहिए ।
(4) अध छात्रो को ब्रेल (Braille) पद्धति से शिक्षा देनी चाहिए ।
(5) ऐसे छात्रों को हस्तोद्योग व सगीत का प्रशिक्षण देना चाहिए ।

(10) चेचक

हमारे देश म यह रोग सामान्यत प्रचलित है । गावो मे असावधानी के कारण यह बहुत तीव्रता के साथ फैलता है । परन्तु वर्तमानकाल म इसका टीका बन जाने से इस रोग की पर्याप्त रोकथाम हो गइ है ।

रोग के लक्षण सप्राप्ति काल के 10 12 दिन के बाद ही प्रकट हो जाते हैं ।

रोग के लक्षण — इस रोग मे शरीर के ऊपरी भाग पर लाल दाने प्रकट हो जाते हैं तथा रोगी के सिर मे और कटि प्रदेश मे पीडा, ज्वर आदि का आभास होने लगता है । धीरे धीरे ये दाने आकार मे बडे हो जाते है और इनम पीप पड जाता है । कुछ दिन के पश्चात दाने सूख जाते हैं, और उनम खुरण्ट पड जाता है ।

रोग की रोकथाम —। चेचक अत्यधिक तीव्र सक्रामक राग है । इसके रोगाणु रोगी की खाँसी, थूक, खुरट आदि मे प्रवेश कर जाते हैं, जो वायु द्वारा

स्वस्थ व्यक्तिया के शरीर म जाकर उन्हें अस्वस्थ बना दते हैं। अत रागाणुआ क नष्ट करने का भरसक प्रयत्न किया जाय। रोगी के कफार या थूक, खुरट पट्टी कपडा आदि को पूणतया जला देना चाहिए। प्रयोग म आने वाले बतन तथा बिस्तर का भली भाँति विसक्रमण कर लिया जाय।

2 जिन स्थला पर यह रोग फैल रहा हो वहाँ सबको टीका अवश्य लगवा लेना चाहिय। छोटे बालको के टीका लगवाना परम आवश्यक है। यह रोग बालका मे शीघ्रता से फैलता है। टीके का प्रभाव प्राय सात वष तक रहता है।

3 जो व्यक्ति इस रोग से पीडित है, उसे स्वस्थ लोगो से अलग कमर म रखा जाय। उसके आस पास वाले को टीका लगवा लना चाहिए।

4 रोगी के मल मूत्र आदि को भस्म कर दिया जाये।

विद्यालय मे सावधानी—विद्यालय के किसी छात्र म इस रोग के लक्षण दिखाई दें, तो उसे तुरन्त घर भेजा जाये तथा सक्रमण काल जब तक समाप्त नहीं हो जाये, तब तक उसे विद्यालय मे प्रवश करने की आज्ञा न दी जाये।

(11) खसरा

चेचक की भाँति यह रोग भी छाटे बालको को अधिक पीडित करता है। रोग की लापरवाही करने से कभी कभी भयकर परिणाम होते हैं। अत राग क चिन्ह प्रकट होते ही तुरन्त उपचार होना चाहिए। फिर भी यह रोग चेचक से कम होना हानिप्रद हाता है।

खसरे का सप्राप्ति काल प्राय 6 से 14 दिन तक चलता है।

रोग का लक्षण—प्रारम्भ म साधारण जुकाम होता है तथा सिर के अदर मन्द मन्द दद होता ह। धीरे धीरे ज्वर बढ जाता है। चौथे दिन शरीर मे छोटे-छोटे लाल दाने निकल आते हैं। दानो का आरम्भ सवप्रथम छाती से होता है। रोगी का शरीर दुबल हो जाता है, अत ऐसी दशा मे जरा सी असावधानी से निमोनिया होने का भय रहता है। निमोनिया का सन्देह होन पर तुरन्त डॉक्टर को सूचना दी जाय। तीव्र बुखार के दो या तीन दिन बाद दाने ढल जाते हैं और भूसी रह जाती है।

खसरा के रोगाणु रोगी की साँस तथा मुख से निकलने वाली लार मे रहते है जो वायु तथा सम्पक द्वारा दूसरो तक पहुँच जाते हैं।

रोग की रोकथाम—1 जिन छात्रो मे रोग के लक्षण प्रकट हो जाए, उन्हे कम से कम तीन सप्ताह का अवकाश प्रदान किया जाये। एक बालक के रोगी होने के पश्चात यदि कोई दूसरा बालक सर्दी व जुकाम का अनुभव करता है तो उसे भी विद्यालय से अवकाश प्रदान किया जाये।

2 रोगी छात्रो से अभिभावको को रोगी की गम्भीरता तथा उपचार के विषय म उचित निर्देशन प्रदान किया जाय।

3 रोगी छात्र को अलग कमरे मे लिटाया जाये। जहा तक हो सके शीत आक्रमण से रोगी की रक्षा की जाये।

(12) छोटी माता

यह भी हमारे देश म आमतौर से प्रचलित है, परन्तु शरीर पर इसका अधिक बुरा प्रभाव नही पडता है।

रोग का सप्राप्ति काल प्राय 12 से 20 21 दिन तक होता है।

रोग के लक्षण--ज्वर के साथ रोगी के शरीर पर दाने निकल आते है। इसम भी दाने सवप्रथम छाती से आरम्भ होते है और दो दिन पश्चात मुख, हाथ पैर पर छा जाते है। दाने का स्वरूप पहले छोटा होता है। पर कुछ समय पश्चात् फफोलो का रूप ले लेते है, जिनम पानी भर जाता है। तीन चार दिन के पश्चात फफोले सूख जाते हैं, और उनने पपडी सी पड जाता है। कुछ काल के बाद पपडी भी सूखकर गिर जाती है।

इस रोग मे भी रोगाणु रोगी के थूक तथा खुरटा द्वारा फैलते है। रोगी के जब तक खुरट पूर्णतया नष्ट नही हो जाते, तब तक राग की छूत फैलने की सम्भव बना रहती है।

रोग की रोकथाम—1 रोग के रोगचिन्ह प्रकट होते ही तुरत सावजनिक स्वास्थ्य विभाग को सूचना दे दी जाय।

2 रोग ग्रस्त छात्रा को विद्यालय न आने दिया जाये, जब तक कि पपडी पूर्णतया अलग न हो जाये।

3 रोगी को अलग कमरे मे रखा जाये तथा उसके द्वारा प्रयोग किए गए कपडे तथा बतनो का विसक्रमण कर दिया जाय। यथासम्भव खुरटा को जला दिया जाये।

(13) कण्ठ-रोहिणी

इस रोग का आक्रमण प्रमुखतया 2 वप से 5 वप तक क बालको पर होता है।

सप्राप्ति काल 2 स 3 दिन तक होता है।

रोग के लक्षण--बालक का गला सूज जाता है, गदन पर की लसिका ग्रथियाँ बढ जाती हैं कभी कभी श्वास लेने म कठिनाई होती है। शरीर के किसी भी अग पर लकवे का आक्रमण हो सकता है। ज्वर 103 डिग्री से 104 डिग्री तक हो जाता है। कभी कभी हृदय की मासपशिया जड हो जाती है, परिणामस्वरूप रागी की मृत्यु हो जाती है।

इस रोग की छूत का प्रसार रोगी के थूक, नाक स्राव तथा खाँसते या बोलते समय रोगाणुओ के हवा म मिल जान स होता है। कभी-कभी रोगी द्वारा प्रयाग किये जाने वाले पात्रो को यदि कोई स्वस्थ व्यक्ति प्रयोग कर लेता है, तो उसके शरीर मे मुख द्वार से रोगाणु चले जाते है।

रोग की रोकथाम—1 जिन छात्रा का कण्ठ राहिणी हो गई है, उ ह विद्यालय से अवकाश प्रदान कर दिया जाये तथा जिन बालका के गले म डिप्थी रिया के रोगाणु हो उन्ह भी विद्यालय स अलग कर दिया जाय।

2 यदि किसी छात्र के गले म सूजन तथा बुखार आदि का आक्रमण हो रहा हो, उसे भी तुरन्त अवकाश द दिया जाय।

3 जिस बालक पर डिप्थीरिया के आक्रमण का सन्देह हो, उसके थूक तथा खकार की जाच करवाई जाय।

4 रोगी छात्र के किसी भी भाइ बहिन का विद्यालय म 10 दिन तक न आने दिया जाये। रोगी बालक की समस्त वस्तुओ का विसक्रमण कर दिया जाय।

5 रोग के लक्षण प्रकट होने पर तुरन्त ही एन्टी डिपथरिया इन्जेक्शन लगवा दिया जाय।

6 शिक टेस्ट द्वारा स्वस्थ बालका की जांच करवाई जाये।

(14) इन्फ्लूइन्जा

यह रोग अत्यन्त तीव्रता के साथ फैलता है। इसका प्रसार एक विषैले तत्व के कारण होता है। कभी कभी यह महामारी का रूप धारण कर लेता है।

रोग का प्रसार, रोगी की श्वास, खकार तथा थूक मे मिले रोगाणुओ के वायु म मिलकर स्वस्थ व्यक्ति तक पहुँचने से होता है।

रोग का सम्प्राप्ति काल कुछ घन्टो से कुछ दिन तक रहता है।

रोग के लक्षण—शरीर म पहले हल्का ज्वर होता है तथा साथ ही छीक आने लगती हैं। सिर मे पीडा का अनुभव होने लगता है तथा कमर मे ऐंठन उठने लगती है। गले के अन्दर सूजन भी आ जाती है। एक दो दिन के ज्वर म ही रोगी अत्यधिक थकान का अनुभव करने लगता है। शरीर मे निबलता आ जाती है। शीत लग जाने पर निमानिया हो जाने का भय रहता है जिससे रोगी की मृत्यु तक हो जाने की सम्भावना रहती है। कभी कभी यह रोग एक नगर म इतनी तीव्रता के साथ बढता है कि इसे रोकना कठिन हो जाता है।

रोग की रोकथाम—(1) नगर म रोग फैलने पर यथासम्भव भीडभाड के स्थला से बचा जाये। सिनेमा, थियेटर, पुस्तकालय आदि को कुछ काल तक के लिए ब द करवा दिया जाये। आवश्यकता पडने पर विद्यालय को भी बन्द किया जा सकता है।

(2) यदि विद्यालय बन्द करने की परिस्थिति म न हो, तो रोगी छात्रा को विद्यालय म आने से कम से कम 15 दिन तक के लिए रोका जाये।

(3) रोगी छात्र ठीक होने के बाद भी खासते या बात करते समय रूमाल मुख पर रख ले।

(4) छात्रा को चेतावनी दी जाये की बर्फ पानी तथा बाजार की चीजों को खाने मे प्रयोग न करें।

(5) रोगी को अधिक स अधिक आराम दिया जाये।

(15) कण-फेर

यह राग अधिक भयकर नही है। कान के सामने वाली गिल्टी सूज जाती है। कीटाणुओ का आक्रमण जिन्हा ग्र थिया पर होता है। कभी कभी अधिक सूजन के कारण खाना निगलने म बडी कठिनाई हाती है। यह कभी-कभी खसर तथा टाईफाइड के साथ भी हो जाता है।

रोग के लक्षण—जबडे व आस-पास सूजन आ जाती है। धीरे धीरे दद बढता जाता है, जिससे मुख खोलन तथा भोजन को निगलने म कठिनाई होती है।

रोग का सप्राप्ति काल प्राय एक दिन से दो दिन तक रहता है। रोग के कीटाणु रोगी की श्वास तथा लार म रहत हैं।

उपचार—रोगी बालक को विद्यालय से दूर रखा जाये। रोगी के बिस्तर का गरम रखा जाये तथा जब तक सूजन रहे, हल्का भोजन ही दिया जाये।

(16) लाल-बुखार

यह रोग प्राय 5 से 10 वष तक की आयु के छात्रो म फैलता है। इस रोग के कीटाणु टासिलो के माध्यम से शरीर म फैलत है। रोग का आक्रमण अचानक होता है।

लक्षण—रोगी पीला पड जाता है तथा कभी कभी कपकपी का अनुभव हाने लगता है। वमन के साथ साथ पीडा का भी अनुभव होता है। चम शुष्क हो जाती है तथा चेहरे पर लालपन छा जाता है। गदन से वक्ष स्थल पर छाटे छोटे दाने (रेश) झलक आते हैं। धीरे धीरे ये दाने आमाशय तथा हाथ पैरो पर फैल जाते है। ये दाने लालपन लिए हाते हैं। जीभ भी लाल हो जाती है। टासिलो म सूजन आ जाती है।

साधारणतया रोग थूक मे मिले कीटाणुओ द्वारा फैलता है। नाक सिनकने स भी रोग फैलता है। रोगी द्वारा प्रयोग म लाई गई वस्तुएँ भी प्रसार का कारण बन जाती है।

उपचार—जो बालक इस रोग स पीडित हो, उन्हें विद्यालय से तुरत अवकाश दे दिया जाये। जब तक रोगी बालक पूण स्वस्थ न हो जाये, तब तक उसे विद्यालय म न जाने दिया जाये। जिन दिनो यह रोग फैल रहा हो उन दिनो जिन बालको पर सन्देह हा, उनकी ' डिक टेस्ट" प्रणाली स परीक्षा ली जाये।

(17) काली खांसी

यह रोग मुख्यतया छाटे बालको को सताता है। छोटे बालको पर जब इसका आक्रमण होता है तो उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो जाती है। खांसते खांसत बालको का बुरा हाल हो जाता है। रोग के अधिक दिन

तक रहने पर निमोनिया या क्षय रोग होने का भय रहता है। इस रोग का तुरन्त उपचार करवाया जाय।

रोग के लक्षण—रोगी प्रथम सप्ताह जुकाम से पीड़ित रहता है, बाद में खांसी के दौरे एक के बाद एक शीघ्रता के साथ पड़ने लगते हैं। रात्रि को प्रायः और भी अधिक हो जाता है, यहाँ तक कि बालक को ठीक से नींद तक नहीं आ पाती। कभी-कभी खांसते खांसते उल्टी तक हो जाती है।

रोग प्रसार गमग तथा रोगी वस्तुओं के प्रयोग करने से होता है।

रोग की रोकथाम—(1) रोगी को शीत से बचाया जाये। रोग के बढ़ने पर डाक्टर को दिखाकर सावधानी से उपचार करना चाहिए।

(2) काली खांसी के रोगी को विद्यालय में न आने दिया जाये। यह रोग वायु द्वारा एक दूसरे के सम्पर्क से अत्यन्त तीव्रता के साथ फैलता है। रोगी को हल्का पौष्टिक भोजन दिया जाये।

(18) निद्रा रोग

इस रोग का प्रभाव स्नायविक संस्थान पर पड़ता है।

रोग का सम्प्राप्ति काल 2 दिन से 2 सप्ताह तक चलता है।

रोग के लक्षण—रोग का आरम्भ गले की सूजन से होता है। रोगी नेत्रों में जलन का अनुभव भी करने लगता है। धीरे धीरे रोगी पर सुस्ती छा जाती है जो कि आगे चलकर मूर्च्छा का रूप धारण कर लेती है। बालक की जबान भी लड़खड़ाने लगती है।

रोग की रोकथाम—रोगी बालकों को स्वस्थ बालकों से तुरन्त अलग कर दिया जाये। यथासम्भव, रोगी को अस्पताल भेज दिया जाये। जो बालक रोगी के सम्पर्क में रहे हों, उन्हें भी विद्यालय से एक सप्ताह का अवकाश प्रदान कर देना चाहिए।

(19) शीशु पक्षाघात

यह रोग पाँच वर्ष तक की आयु के बालकों को होता है। इसके रोगाणु शरीर में प्रवेश करके केन्द्र त्यागी सूत्रों का विनाश कर देते हैं।

रोग का सम्प्राप्ति काल प्रायः 2 दिन से 10 दिन तक है। यह रोग रोगी के थूक तथा मल मूत्र द्वारा प्रसारित होता है। सवाहक द्वारा भी यह रोग प्रसारित होता है।

लक्षण—पहले रोगी साधारण जुकाम और हरारत का अनुभव करता है। धीरे धीरे गले में सूजन होने लगती है कमर में दर्द होने लगता है। मांसपेशियाँ दुर्बल हो जाने के कारण लकवे का शिकार हो जाता है।

रोग की रोकथाम--रोगी को स्वस्थ छात्रों से अलग रखा जाये। रोग प्रवाहकों को विद्यालय म आने से रोका जाये।

(20) मस्तिष्क सुषुम्ना की झिल्ली मे सूजन

यह रोग भी पाँच वर्ष से कम आयु के बालकों को होता है। रोग के कारण मस्तिष्क तथा सुषुम्ना पर चढी झिल्ली पर सूजन का आना है।

इसका सक्षिप्त काल 2 म 5 दिन होता है।

रोग के लक्षण--रोगी के सिर म तीव्र पीडा होती है। ज्वर और गदन मे कडापन एक साथ अनुभव होता है। धीरे धीरे कडापन समस्त शरीर म फैल जाता है। मस्तिष्क मे सुस्ती तथा सज्ञाहीनता आ जाती है। कभी कभी शरीर पर दाने भी निकल आते हैं। शरीर के कुछ अग निष्क्रिय भी बने रह सकते है।

रोग की रोकथाम--यह रोग रोगी की नाक तथा थूक द्वारा प्रसारित रोगाणुओं से फैलता है। रोगी के नाक छिनकते तथा खाँसते समय रोगाणु वायु म प्रसारित हो जाते हैं, और स्वस्थ व्यक्तियों तक पहुँचकर उ हे प्रभावित करते है।

रोग की भयकरता को ध्यान म रखते हुए यथासम्भव रोगी को स्वस्थ बालकों से दूर रखा जाय। यदि अस्पताल मे रोगी को रखा जा सके तो अति उत्तम है।

(21) प्लेग

प्लेग अत्य त भयकर सक्रामण रोग है। यह महामारी के रूप म जब फैलता है तो गाँव नष्ट हो जाते हैं। प्लेग का जीवाणु बैसिलस पैस्टिस होता है। यह जीवाणु पहले चूहो पर फैलता है तथा बाद मे मनुष्यों मे फैलता है। जिन चूहों पर प्लेग का आक्रमण हो जाता है उनके पैरों का रग हल्का लाल होता है। इस रोग का प्रसार-काल शरद् तथा मार्च अप्रैल का महीना है।

इसका सप्राप्ति-काल 10 मे 14 दिन तक का है।

रोग के लक्षण--जब यह रोग फैलता है तो कुछ काल मे ही अनेक चूहे मरने लगते हैं। रोग के आक्रमण के पश्चात् ज्वर तीव्रता के साथ चढता है तथा कुछ काल म ही 107 डिग्री फा तक तापक्रम पहुँच जाता है। प्यास बडी तीव्रता के साथ लगने लगती है। कभी कभी अत्य त पतले दस्त होते हैं। चार-पाँच दिन म जघा के ऊपर के भाग म गिल्टी उछल जाती है। रोग के अधिक बढ़ जाने पर निमोनिया होने की सम्भावना रहती है।

रोग की रोकथाम--जिस मकान मे अधिक सख्या मे चूहे मरने लगे उसे तुर त छोड देना चाहिये। सीलयुक्त स्थानों पर गधक जलाना चाहिये। आवश्यकता पडने पर प्लेग का इ जेक्शन लगवाया जाये।

रोगो के फलने के कारण —

(1) **वायु द्वारा**—कुछ रोग वायु द्वारा प्रसारित होते है। रोगी की छींक श्वास की वायु तथा थूक म रोग के जीवाणु मिले रहते हैं। दूसरा व्यक्ति इन जीवाणु युक्त वायु मे सास लेता है, तो उसके श्वास के साथ-साथ य जीवाणु भी शरीर म प्रवेश कर जाते है। वायु के द्वारा फैलने वाले प्रमुख रोग इन्फ्लूएंजा छोटी चेचक, बुखार, खासी, तपेदिक तथा जमन खसरा आदि हैं।

(2) **भोजन एव जल द्वारा**—दूषित भोजन और जल द्वारा हैजा, सब रोग, पेचिश तथा मोतीझरा मुख्य रूप से फैलते हैं। मक्खियां रोगाणु युक्त भोजन से उडकर पीने की वस्तु पर बैठ जाती हैं, जिमसे खाने-पीने की वस्तुएँ रोग के कीटा णुओ से भर जाती है, और जब वह भोजन खाया जाता है तो शरीर म रोगाणु प्रवेश कर जाते हैं। तपेदिक के जानवरा का दूध पीने से तपेदिक के कीटाणु शरीर म प्रवेश कर जाते है। इसी प्रकार रोगाणु युक्त जल तथा भोजन भी रोगा फैलाने म सहायक होता है।

(3) **कीट द्वारा**—कुछ कीडे, जैसे—मच्छर, पिस्सू, खटमल, तथा जू— मानव शरीर का रक्त पान करन के अभ्यस्त होते है। जब यह रोगी के शरीर का रक्तपान कर लेते हैं और उसके बाद स्वस्थ शरीर पर अपना आक्रमण करते हैं, तो वे अपने डक के साथ स्वस्थ शरीर मे रोग के कीटाणुओ को भी प्रवेश करा देते हैं। इस प्रकार रोगाणु शरीर के रक्त म प्रवेश कर शीघ्रता के साथ प्रसारित होते हैं। कीट द्वारा फैलने वाले रोगा म मलेरिया, पीत ज्वर, डेंग्यु ज्वर, प्लग तथा काला जार आदि प्रमुख हैं।

(4) **सम्पक के द्वारा**—रोगी व्यक्ति के अधिक सम्पक मे रहने से भी स्वस्थ मनुष्य रोगो के शिकार हो जाते है। खसरा, खुजली माता, दाद आदि मुख्यतया सम्पक द्वारा ही फैलते है। रोगा के फैलने म केवल रोगी का सम्पर्क ही नहीं मेज, वस्त्र आदि के प्रयोग करने से भी स्वस्थ मनुष्य रोगी हो जाता है।

(5) **चम के माध्यम से**—यद्यपि चम हमारे शरीर पर रोगाणुआ के विरुद्ध एक आवरण का काम करता है, परन्तु कभी-कभी टेटानस और एनेरेक्स के रोगाणु चम-सघषण द्वारा ही शरीर म प्रवश करत है।

(6) **जननेद्रियो के माध्यम से**—सुजाक और गर्मी जैस रोग जननेन्द्रिय द्वारा फैलते है। वेश्यागमन द्वारा यह रोग एक व्यक्ति स दूसर व्यक्ति तक पहुंच जाता है।

(7) **रोग के सवाहक द्वारा**—कुछ व्यक्तिया पर रोग के कीटाणु यद्यपि कोई असर नही करते, पर तु उनके शरीर म कीटाणुआ की छूत लग जाती है जिसे व स्वस्थ व्यक्तिया तक पहुँचा देते हैं। इसी कारण ऐसे व्यक्ति रोग के सवाहक कहलाते हैं। यथा पचिश हैजा, माताझरा, डिप्थीरिया आदि राग इसी प्रकार से फलत हैं।

रोग निवारक या प्रतिरक्षण शक्ति (Immunity)

छूत के रोगो के उत्पादक जीवाणु असख्य है तथा हमारे आस पास प्राय फैले रहते है, फिर भी हमम से प्रत्यक व्यक्ति इनका सदा ही शिकार नही बनता इसका कारण हमारे रक्त मे पैदा हुई रोग निवारक शक्ति (इम्यूनिटी) है। आज के औषधि विज्ञान मे इसे पैदा करने के कृत्रिम साधनो का भी पर्याप्त विकास हो गया है तथा होता जा रहा है–इसी कारण व्यापक रूप से एक साथ फैलने वाले छूत के रोग जिन्हें महामारियाँ (इपीडेमिक डिजिजेस) कहा जाता है, अब दिनो दिन कम होती जा रही हैं। रोग निवारक शक्ति स्वस्थ शरीर म स्थित प्राटीन्स के सामान्य अणुओ से भिन्न प्रोटीन्स के समूहो को नष्ट करने की क्षमता है। वस्तुत शरीर के लिए विजातीय प्रोटीन्स को ही उसमे प्रविष्ट जीवाणु पैदा करते है।

रोग निवारक क्षमता का वर्गीकरण नीचे दिया जा रहा है—
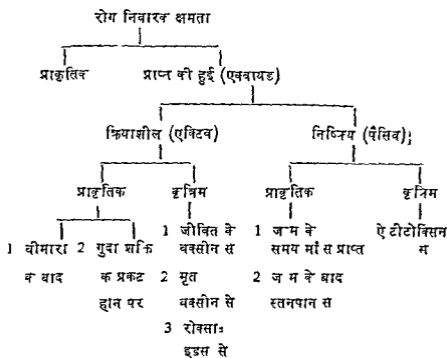
कतिपय विशिष्ट रोगो के लिए रोग निवारक क्षमता उत्पन्न करने के टीके नीचे लिखे अनुसार काम म लिए जाते हैं—

जीवित वैक्सीन से—बी सी जी चेचक, पोलियो, मीजल्स, मम्पस।

मत वेक्सीन से--कॉलेरा, हूपिंग, कफ, प्लेग पोलियो, एन्फ्लूएंजा, टाइफस, पागल कुत्ते क काटने पर।

रोक्साइडस से--डिप्थीरिया, टिटेनस।

ऐंटोटोक्सिन्स से--डिप्थीरिया, टिटेनस, पागल कुत्ते के काटने पर।

सचय काल--प्रत्येक प्रकार के छूत के लक्षण जीवाणु के शरीर म प्रविष्ट होने के बाद निश्चित अवधि म प्रकट होते हैं--इसी कारण इसकी पहचान तत्काल नही हो पाती। इस अवधि मे रोगी सामान्यत स्वस्थ दिखाई देता है, पर इसी बीच उसमे प्रविष्ट जीवाणुओ की सख्या वृद्धि होती रहती है और एक ऐसी अवस्था आती है जब उसके लक्षण पूणतया दीखने लगते है। इस अवधि को उपसग काल (इनक्यूबेशन पीरियड) कहते हैं। कतिपय रोगो का सचय काल नीचे दिया जा रहा है--

छोटी माता	2 से 3 सप्ताह
कॉलेरा	1 से 5 दिन
डेंगू फीवर	3 से 15 दिन
डिप्थीरिया	2 से 5 दिन
डीसेंटरी	1 से 7 दिन
इन्फ्लूएन्जा	1 से 3 दिन
मीजल्स	10 दिन
मम्पस	2 से 3 सप्ताह
कुकर खासी	7 से 14 दिन
पोलियो	7 से 14 दिन
चेचक	7 से 17 दिन
टायफाइड फीवर	5 दिन

रोग निरोधक टीका की तालिका

बालको मे रोग निरोधक क्षमता उत्पन्न करने के लिए सुविधानुसार नीचे दिये गये टीके लगाये जाने उचित हैं--

आयु	टीके
1 माह	बी सी जी व चेचक
3 से 4 माह	डी पी टी
5 से 6 माह	डी पी टी (दूसरी डोज)

2 वष	डी पी टी (तीसरा डोज)
5 से 6 वष	टायफाइड, टेटनस व बी सी जी चेचक (दूसरी बार)।
11 से 12 वष	चेचक (तीसरी बार) टेटेनस व टायफाइड वक्सीन।

इनके अतिरिक्त विशेष प्रकोपो से बचने के लिए कालेरा, प्लेग, टायफाइड फीवर, इन्फ्लूए जा के वक्सीन लगवाय जान चाहिए।

अ तर्राष्टीय बचाव के लिए विश्व स्वास्थ्य सगठन (W H O) की ओर से चेचक, पीतज्वर, कालेरा तथा प्लेग के वेक्सीन यात्रियो के लिये आवश्यक माने गय है तथा विदशो म यात्रा करने वालो को इन्हे लगाकर सर्टिफिकेट लेना पडता है।

4

इकाई—4 "अच्छे स्वास्थ्य का आधार, शरीर की संतुलित वृद्धि और विकास।"

इकाई—13 "शरीर की वृद्धि और विकास कई कारणो पर निर्भर करता है।"

अच्छे स्वास्थ्य का अर्थ

सामान्यत स्वास्थ्य का अर्थ उस स्वस्थ दशा से लगाया जाता है जिसके द्वारा शरीर तथा मस्तिष्क के समस्त कार्य सुचारु रूप से सक्रियतापूर्वक सम्पन्न किये जाते हैं। स्वास्थ्य के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिये कुछ परिभाषाएँ निम्न हैं—

एलोपैथिक विचारधारा के अनुसार, "कोई मनुष्य उसी समय तक स्वस्थ कहा जा सकता है, जब तक कि उसके शरीर के अग या उपाग अपने कर्त्तव्यो को ठीक ठाक पालन करते रहें। शरीर के अगो मे किसी प्रकार का भी विकार चाहे वह स्थायी हो या अस्थायी, रोग कहलाता है।"

आयुर्वेदिक विचारधारा के अनुसार, "वात, पित व कफ सम हो – न कोई कम हो, न अधिक हो। भोजन को पचाने वाली अग्नि ठीक हो और शरीर का तापमान उचित मात्रा मे हो। शरीर के रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र उचित परिमाण मे शरीर के अन्दर हो। मल मूत्र और पसीना ठीक तरह से बाहर निकलते रहें, तो समझना चाहिए कि स्वास्थ्य ठीक है।"

जे एफ विलियम्स के अनुसार, "स्वास्थ्य जीवन का वह गुण है जो व्यक्ति को दीर्घायु बनाने तथा उत्कृष्ट सेवा करने के योग्य बनाता है।"

वेब्सटर शब्दकोष के अनुसार "स्वास्थ्य शरीर, मन या आत्मा में स्वस्थता तथा निरोगता की अवस्था है अर्थात् रोग या दुख का अभाव है।"

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार 'स्वास्थ्य रोग या निर्बलता का मात्र अभाव नहीं है वरन् शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक कल्याण की पूर्ण अवस्था है।"

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि स्वास्थ्य में पर्याप्त मात्रा में चुस्ती, शारीरिक शक्ति, सक्रियता एवं सहनशक्ति निहित है। साथ ही मानसिक स्वास्थ्य भी निहित है जिससे दैनिक जीवन की माँगों की पूर्ति की जा सकती है। एक स्वस्थ व्यक्ति में निम्न विशेषतायें पायी जाती हैं—

(1) स्फूर्ति
(2) उत्साह व कुशलता से कार्य करने की योग्यता
(3) कल्याण की भावना
(4) रोग का अभाव
(5) स्वस्थ मानसिक दृष्टिकोण
(6) आत्मविश्वास तथा आत्मनियन्त्रण
(7) चिन्ता से मुक्ति
(8) साहस
(9) परस्पर सहयोग की भावना से कार्य करने की योग्यता।

अच्छे स्वास्थ्य का आधार—शरीर की सन्तुलित वृद्धि और विकास

वृद्धि या अभिवृद्धि (Growth) और विकास (Development) प्राय समानार्थक समझ लिये जाते हैं, जो भ्रामक है। डॉ रामपाल सिंह वर्मा ने इन दोनों का अर्थ व अन्तर स्पष्ट करते हुए कहा है कि—" 'अभिवृद्धि' से तात्पर्य शरीर एवं उसके अवयवों की वृद्धि से है। इन दोनों में आकार और परिमाण में परिवर्तन होता है। इस प्रकार अभिवृद्धि जनित परिवर्तनों को नापा एवं तोला जा सकता है। किन्तु विकास से तात्पर्य शरीर एवं मन में होने वाले सभी प्रकार के परिवर्तनों से है।" जी ए हेडफील्ड ने इनके अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि विकास रूप व आकार में परिवर्तन है, जबकि अभिवृद्धि आकार का बढ़ना है। विकास एक व्यापक अर्थ वाला शब्द है जिसमें अभिवृद्धि का भाव सदैव निहित रहता है। अभिवृद्धि एवं विकास दोनों परस्पर जुड़े हुए हैं। अभिवृद्धि की अनुपस्थिति में विकास भी अवरुद्ध हो जाता है।"[1]

उपर्युक्त कथन से अभिवृद्धि एवं विकास का अर्थ, उनमें अन्तर तथा परस्पर सम्बन्ध स्पष्ट होता है तथा यह भी अवबोध होता है कि अभिवृद्धि एवं विकास ही अच्छे स्वास्थ्य का आधार है। अभिवृद्धि एवं विकास बालक की शैशवावस्था, बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था में शनैः शनैः होता रहता है। यद्यपि अभिवृद्धि परिपक्वता (Maturity) प्राप्त होने तक होती रहती है किन्तु विकास की प्रक्रिया सदैव चलती रहती है। शारीरिक अभिवृद्धि के साथ साथ मानसिक,

---

1 डॉ रामपाल सिंह वर्मा शिक्षा मनोविज्ञान, पृ 39

सामाजिक व आध्यात्मिक विकास भी चलता रहता है। अच्छा स्वास्थ्य अभिवृद्धि एव विकास पर आधारित है। डॉ एस एस माथुर के शब्दो मे- "बालक के शारीरिक और मानसिक विकास म भी घना सम्बद्ध है। जैसे जैसे बालक की आयु बढती जाती है, उसी अनुपात से उसम शारीरिक और मानसिक विकास पाया जाता है। सुन्दर और स्वस्थ शारीरिक विकास के साथ उच्च भावनाओं का सम्बन्ध माना जाता है। अत एक ही उम्र के बालक—समूह म, जो शारीरिक दृष्टि स अधिक विकसित और परम स्वस्थ है, मानसिक विकास और स्वस्थता भी अधिक मिलती है तथा उम्र के अनुपात से जिनका शरीर विकसित नहा हुआ, जो दुबल, छोटे और हीन रह गये, निश्चय ही उनका मानसिक विकास भी कम ही होगा।[1]

शिक्षा का उद्देश्य बालक के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति करके उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना है। अत शिक्षक व अभिभावकों को व सब परिस्थितिया उत्पन्न करनी चाहिए जिससे कि बालकों की अभिवृद्धि एव विकास वाछनीय दिशा म होता रहे। नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति मे कहा गया है कि— 'स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा का लक्ष्य बालक को यह अवबोध कराना है कि शरीर और मस्तिष्क का सन्तुलित विकास अच्छे स्वास्थ्य के लिये अपरिहार्य है। बालक का वाछित पोषण या आहार, स्वास्थ्य व स्वच्छता की आदतो के विकास मे सहायता देनी चाहिए जिससे कि परिवार व समुदाय के स्वास्थ्य स्तर मे सुधार हो सके। शारीरिक शिक्षा का लक्ष्य शरीर के स्वास्थ्य, शक्ति व क्षमता म वृद्धि करना होना चाहिए।"

शरीर की वृद्धि और विकास कई कारणो पर निर्भर करता है अथवा स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक (Factors)

बालक के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक निम्नाकित है —

(1) दूषित वातावरण—घर, पड़ौस तथा विद्यालय के दूषित वातावरण का बालक के स्वास्थ्य पर सर्वाधिक प्रभाव पडता है।

(2) वशानुक्रम (Heredity)— कुछ स्वास्थ्य सम्बन्धी विकार वशानुगत भी होते है।

(3) अध्यापक का व्यवहार—बालक के स्वास्थ्य को अध्यापक का कठोर व्यवहार भी काफी सीमा तक प्रभावित करता है।

---

1 डा एस एस माथुर शिक्षा मनोविज्ञान, पृ 80-81

(4) कुपोषण--बालक के शारीरिक विकास हेतु उसे खाद्य पदार्थों से उचित मात्रा म भोजन के आवश्यक तत्व, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, लवण, विटामिन, वसा व जल, मिलने चाहिए जिससे उसे आयु के अनुसार ऊर्जा उत्पादन हेतु कैलोरीज (Calories) प्राप्त हो सकें। कुपोषण से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। सतुलित भोजन व सुपोषण से बालक का स्वास्थ्य ठीक रहता है।

(5) व्यायाम, खेल कूद एव मनोरजन के अवसर--बालक के स्वास्थ्य के लिये नितान्त आवश्यक है।

(6) सामान्य एव सक्रामक रोग--बालकों के स्वास्थ्य हेतु हानिकारक होते हैं। अत इनकी रोकथाम, उचित चिकित्सा एव परिचर्या की आवश्यकता है।

(7) स्वास्थ्य परीक्षण--नियमित रूप से किया जाना चाहिए ताकि बालकों के रोगो और विकृतियों का पता चल सके और उनके अभिभावकों को चिकित्सा हेतु परामर्श दिया जा सके। विद्यालयों में प्राय इसकी उपेक्षा की जाती है जिससे बालकों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है।

(8) व्यक्तिक निर्देशन--के अभाव म वैयक्तिक विभिन्नताओं, घरेलू वातावरण तथा शैक्षिक कारणो से बालकों को अनेक कठिनाइयाँ एव समस्याओं का अनुभव होता है जिनका कुप्रभाव उनके स्वास्थ्य पर पडता है।

(9) आदतें तथा अभिवृत्तियाँ --बालकों मे स्वस्थ जीवन हेतु अच्छी आदतों और अभिवृत्तियों का निर्माण किया जाना वाछनीय है। कुसगति के कारण बुरी आदतों व अभिवृत्तियों से उनका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है।

(10) मानसिक रोग--मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहने से बालकों का सुसमायोजन होता है। इसके अभाव मे कुसमायोजन के कारण बालकों म अनेक मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

(11) व्यक्तिगत एव सामूहिक अस्वच्छता--व्यक्तिगत तथा शाला एव घर की अस्वच्छता बालक के स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

(12) अनुचित शारीरिक आसन (Postures)--अनेक शारीरिक विकृतियाँ एव मानसिक व शारीरिक थकान के कारण बालकों के बैठने, खडे होने, पढने या लिखने के अनुचित शारीरिक आसन होते है जो अनुपयुक्त फर्नीचर तथा शुद्ध वायु, जल व प्रकाश के अभाव से बन जाते है।

बालक के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले उपयुक्त कारकों तथा स्थानीय परिस्थिति से उत्पन्न विशेष कारणों का निदान एव उपचार किया जाना चाहिए।

शिक्षक का दायित्व

शिक्षक का यह दायित्व है कि वह बालक म शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखने का प्रयास कर। विशेषत मानसिक स्वास्थ्य के विषय में गेंड एव शर्मा के ये शब्द उल्लेखनीय हैं—"यदि शिक्षक बालको की शक्ति को उचित मार्गों म प्रयुक्त कर सकते हैं, यदि वे उनकी मूल वृत्तियो को उन्नयन कर सकते हैं, यदि व उनकी व्यक्तिगत समस्याओं को समझकर उन्हे सहानुभूतिपूर्ण ढग स हल करने म सहायता द सकते हैं तथा यदि बालको म अपने और स्कूल क प्रति विश्वास पैदा कर सकत हैं तो यह निश्चित रूप मे सत्य है कि बालको क मानसिक स्वास्थ्य की भी वृद्धि होगी।" अत शिक्षक को अपने इस दायित्व का ध्यान रखना चाहिए।

इकाई-5 व 6

अच्छे स्वास्थ्य के लिये भोजन-उसकी पौष्टिकता एव पोषक तत्वो की आवश्यकता एव भोजन द्वारा उनकी पूर्ति | 5

विषय प्रवेश

गत अध्याय म हम देख चुके हैं कि बालको को कुपोषण एव सन्तुलित आहार क विषय मे उचित निर्देश देना स्वास्थ्य शिक्षा का एक प्रमुख अग है। पोषण या आहार अथवा भोजन (Nutrition) हमारे शरीर के लिए उतना ही आवश्यक है जितना जल तथा वायु। उचित पौष्टिक पोषण के अभाव मे कुपोषण (Malnutrition) के कारण स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पडता है तथा सन्तुलित आहार (Balanced Diet) से हमारा स्वास्थ्य ठीक रहता है। भोजन की आवश्यकता प्रकट करते हुए डॉ एस एस माथुर का कथन है--"हमारे शरीर को पौष्टिक भोजन की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि शुद्ध वायु एव सूय के प्रकाश की। पौष्टिक भोजन द्वारा हमे शक्ति प्राप्त होती है लेकिन काय करने से हमार शरीर की शक्ति क्षीण हो जाती है। इस शक्ति के ह्रास की पूर्ति पौष्टिक भोजन द्वारा ही की जा सकती है। हमे पौष्टिक एव सन्तुलित भोजन की आवश्यकता है और इसके लिए कुछ ऐसे तत्व हमारे भोजन में सम्मिलित होने चाहिए जो कि हमारे शरीर की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये आवश्यक हैं।" प्रस्तुत अध्याय मे स्वास्थ्य रक्षा हेतु कुपोषण एव सन्तुलित आहार का विवेचन किया जा रहा है।

कुपोषण का अर्थ एव तात्पर्य

कुपोषण का अर्थ एव तात्पर्य समझने के पूव हम पोषण या भोजन द्वारा शरीर मे सम्पन्न मुख्य कार्यों को देखना होगा। इस सन्दर्भ मे कु शकुन जोशी की पुस्तक "आहार निरूपण" का यह कथन उल्लेखनीय है—"भोजन वह तत्व है जो

किसी स्थिति मे भी हमारी अन्न नलिका द्वारा अवशोषित हो जाने के पश्चात् निम्नलिखित तीन कार्यों मे एक काय को सम्पन्न व सम्पादित करता है —

(1) शरीर म उन पदार्थों को प्रदान करता है जो कि शरीर म उष्णता क्रियाशीलता व ऊर्जा प्रदान करता हो।

(2) शरीर की बाढ करता है और कार्य करने पर जो छीजन होता है उसकी पूर्ति करता है तथा पूणतया नष्ट हुए भागो का पुन निर्माण करता है।

(3) क्रियाशील अवयवो के चलन व उनकी क्रियाशीलता के लिए ऐसे तत्वों को प्रदान करता है जो कि उससे उनके विशिष्ट काय करवाय अर्थात ऊर्जा उत्पादक अवयव से ऊर्जा उत्पादन करवाये, बाढ करने वाले अवयव से निर्माण काय करवाये और छीजन को पूण करवाने वाले अवयवो से निर्माण और मरम्मत दोनो ही काम करवाय।" समुचित भोजन मिलने पर ही शरीर की ये क्रियाएँ सफलता से सम्पन्न होती है तथा इसके अभाव मे अपूण भोजन या कुपोषण के कारण ये क्रियाएँ सम्पन्न नही होती और शक्ति क्षीण होकर शरीर दुबल हो जाता है। 'कुपोषण' को इस प्रकार परिभाषित किया गया है —

विजयवर्गीय व शर्मा—"ऐसा पोषण जिसके पोषक तत्व अनुचित अनुपात मे हो, पर केलोरीजन की शक्ति आवश्यकतानुकूल हो, कुपोषण कहलाता है। इस परिभाषा के अनुसार यदि भोजन म प्रोटीन, कार्बोज, चिकनाई खनिज लवण, विटामिन म स किसी न किसी का अभाव हो अथवा उनकी उचित मात्रा न हो तो यह कुपोषण के लक्षण पैदा करेगा। पोषक पदार्थों का अपर्याप्त मात्रा म रहना हीन पोषण (Under nutrition) के लक्षण प्रकट करता है और पोषक तत्वों का अत्यल्प मात्रा मे उपलब्ध होना, क्षुधा पीड़ितावस्था या भूखापन (Starvation) का प्रतीक है।"

अत कुपोषण उस दिशा का नाम है जब शरीर को रक्त स अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कोई एक या एक से अधिक तत्व प्राप्त नही होते, जिससे काय करने के लिए शरीर को उचित मात्रा म ऊर्जा नही मिलती है और न नवीन उत्तकों (Cells) का निर्माण हो पाता है अथवा शरीर म इस प्रकार का विकार होता है कि रक्त लाये हुए पोषक तत्वों का उपयोग नही कर पाता है। इसका परिणाम यह होता है कि शरीर की क्षति होने लगती है।

कुपोषण के कारण

कुपोषण के कारणो को वर्गीकृत रूप मे इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है —

वातावरण सम्बन्धी कारण

(1) घर तथा विद्यालय का दूषित वातावरण—घर तथा विद्यालय म शुद्ध वायु, प्रकाश, धूप व जल के न मिलने तथा गन्दे वातावरण के कारण बालक कुपोषण से पीडित होते हैं।

(2) निद्रा व विश्राम का अभाव—अनुपयुक्त वातावरण के कारण बालको को उचित मात्रा मे निद्रा व विश्राम नही मिल पाता तो कुपोषण उत्पन्न करते हैं।

(3) शारीरिक रोग—अनेक सामान्य एव सक्रामक रोग भी कुपोषण का कारण बनते हैं।

(4) मानसिक कारण—घर तथा विद्यालय म बालको के प्रति माता पिता, अभिभावक तथा शिक्षको की उपेक्षा व असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से बालको मे चिंता, भय, आतक, निराशा, क्षोभ आदि उत्पन्न होते हैं जो कुपोषण का कारण बनते है।

(ख) आहार (भोजन) सम्बन्धी कारण

(1) कुपोषण का मुख्य कारण पौष्टिक तत्वो म युक्त भोजन का अभाव होता है। बालको के भोजन मे प्राय प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, खनिज लवण, विटामिन आदि आवश्यक तत्वो की कमी रहती है।

(2) अनुचित मात्रा म भोजन के इन तत्वो के होने स भी कुपोषण होता है। धनी लोगो के बच्चे अधिक मात्रा म गरिष्ठ भोजन कर कुपोषण से ग्रस्त होते हैं।

(3) भोजन उचित समय पर न करने से भी कुपोषण होता है।

कुपोषण का शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रभाव (अथवा कुपोषण के लक्षण)

कुपोषण से प्रभावित बालको की पहिचान निम्नाकित लक्षणो से हो सकती है—

(1) शरीर का कद छोटा, निबल तथा शक्तिहीन होना।
(2) शरीर का भार कम होना तथा मास की कमी व आँखो म उदासी होना।
(3) कक्षा म बैठते या खडे होते समय अनुचित आसनो (Postures) का प्रयोग।
(4) शरीर की त्वचा वसा के अभाव म पीली, शिथिल व खुरदरी होना।
(5) खनिज लवणो के अभाव मे अस्थियाँ व दाँत अविकसित व रोगग्रस्त होना।
(6) शीघ्र थकान होना व निद्रा ठीक प्रकार से न आना सिर दर्द रहना।
(7) बालक का व्यग्र व भयभीत होना।
(8) कक्षा म उसका एकाग्रचित्त न रहना।

(9) संक्रामक रोगों से अधिक ग्रसित होना।

(10) बालक की अधिगम (सीखने) की प्रक्रिया मंद पड जाती है।

भोजन के विभिन्न तत्वों के अभाव एवं अनुचित मात्रा में प्रयोग के प्रभाव निम्नांकित होते है —

(1) प्रोटीन (Protein)—प्रोटीन के अभाव में शरीर की संक्रामक रोगों के कीटाणुओं से संघर्ष करने की शक्ति क्षीण हो जाती है और वह रोगग्रस्त हो जाता है। प्रोटीन के अभाव में नये कोशों का निर्माण, हार्मोंस न बनने से शारीरिक वृद्धि तथा वसा की कमी से शारीरिक ऊष्मा एवं शक्ति अवरुद्ध हो जाती है।

(2) कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrates)—ये पोषक तत्व कार्बन, हाइड्रोजन व ऑक्सीजन से बने होते हैं। इसके अन्तर्गत शक्कर तथा श्वेतसार (मांडी) सम्मिलित हैं। ये शरीर में ऊर्जा उष्णता उत्पन्न करते हैं। इनके अधिक प्रयोग से अपच, अतिसार (पचिश) तथा मधुमेह रोग हो जाते हैं। इनके अभाव में शरीर अशक्त एवं निष्क्रिय हो जाता है।

(3) वसा (Fats)—वसा या चर्बी भी कार्बन, हाइड्रोजन व ऑक्सीजन से बनती है किन्तु इनका अनुपात कार्बोहाइड्रेट से भिन्न होता है। इनका कार्य भी शरीर को ऊर्जा व उष्णता प्रदान करना है तथा चिकनाई व गर्मी-सर्दी से सुरक्षा प्रदान करना है। इनके अधिक सेवन से शरीर स्थूल हो जाता है।

(4) खनिज लवण (Mineral Salts)—शरीर के लिए आवश्यक खनिज लवण कैल्शियम, फास्फेट, नमक, मैग्नीशियम, तांबा, गंधक, आयोडीन, लोहा आदि हैं। ये शरीर से बाहर निकलते रहते है, अतः इनकी पूर्ति होना आवश्यक है। इनके अभाव में पाचक रसों तथा शारीरिक विकास एवं संतुलन में अवरोध उत्पन्न होता है। कैल्शियम के अभाव में अस्थि, दांत एवं चर्म रोग हो जाते हैं। लोहे के अभाव से एनीमिया तथा आयोडीन के अभाव से घेंघा (Goitre) रोग हो जाते है।

(5) विटामिन (Vitamins)—विटामिन या जीवनसत्व भोजन के प्रमुख तत्व हैं जो शरीर की वृद्धि, भोजन पचाने की शक्ति तथा रोग के कीटाणुओं से संघर्ष करने की शक्ति में सहायक होते हैं। ये खाद्य पदार्थों में पाये जाने वाले सूक्ष्म रासायनिक पदार्थ हैं। इनके अभाव में अनेक रोग हो जाते हैं। विटामिन 'ए' के अभाव से चर्म रोग, नेत्र रोग (रतौंधी), खांसी, निमोनिया, गुर्दे की पथरी आदि रोग हो जाते है। विटामिन 'बी' की कमी से बेरीबेरी रोग, सूजन, लकवा, शक्ति क्षीणता आदि रोग हो जाते हैं। विटामिन 'सी' के अभाव में स्कर्वी (Scurvy) तथा रक्त की कमी के रोग हो जाते हैं। विटामिन 'डी' की कमी से आँतों की

प्रतिक्रिया क्षीण होती है। विटामिन 'ई' से गर्भपात व बांझपन स्त्रियों में तथा पुरुषों में नपुंसकता आ जाती है। विटामिन 'के' के अभाव में रक्त का थक्का न जमने से चोट लगने पर रक्तस्राव होता रहता है।

(6) जल-हमारे शरीर का बहुत बड़ा भाग जल से निर्मित है। यह शरीर से बाहर मूत्र, पसीना, सांस की भाप, आंसू आदि के रूप में निकलता है जिसकी पूर्ति आवश्यक है। इसके अभाव में रक्त शुद्धि, गर्मी की शांति तथा विषैले पदार्थों का निष्कासन नहीं हो पाता।

कुपोषण का उपचार

कुपोषण के उपचार हेतु विद्यालय में निम्नांकित उपाय अपनाये जा सकते हैं—

(1) संतुलित भोजन (आहार) की उपयुक्त जानकारी अभिभावक को कराई जाय।
(2) कुपोषण से ग्रस्त बालकों की चिकित्सा हेतु व्यवस्था की जाय।
(3) विद्यालय में मध्याह्न भोजन (Middary meals) की व्यवस्था की जाय।
(4) गृहणियों के लिए संतुलित आहार सम्बन्धी प्रदर्शन पाठों का आयोजन किया जाये।
(5) श्रव्य-दृश्य साधनों के माध्यम से कुपोषण के उपचार सम्बन्धी जानकारी दी जानी चाहिए।
(6) विद्यालय व घर के वातावरण को स्वास्थ्यकारी बनाया जाये।
(7) विद्यालय में नियमित व्यायाम की व्यवस्था की जाये।
(8) व्यक्तिगत स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान दिया जाये।
(9) विद्यालय के पास गंदी व अस्वस्थकर खाद्य-सामग्री को बेचने वाले खोमचे या दुकान पर प्रतिबंध लगाया जाये।
(10) सी एम एम केयर (CARE) तथा ए एन पी (Applied Nutrition Programme) के अन्तर्गत प्राप्त खाद्य-सामग्री का बालकों का नियमित स्वच्छता से वितरण किया जाये।

संतुलित आहार का तात्पर्य एवं आवश्यकता

शरीर की सामान्य वृद्धि तथा स्वस्थ बने रहने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को पोषण (न्यूट्रीशन) की आवश्यकता है। पोषण आहार में अन्तर है। आहार खाद्य पेय वस्तुओं का समग्र रूप है जिसे हम भूख को शान्त करने के लिए काम में लेते हैं, पर पोषण वह प्रक्रिया है जिससे भोजन शरीर को पोषक तत्त्व देता है।

आयु एव काय के अनुसार—पोषण की आवश्यकता काम धन्धे की प्रकृति तथा आयु के अनुसार होनी है। सभी व्यक्तियों के लिए एक समान पोषण नहीं चल सकता। इण्डियन कौंसिल ऑफ मेडीकल रिसच (आई सी एम आर) की न्यूट्रीशन एडवाइजरी कमेटी 1968 ने निम्नांकित रूप से पोषण की संस्तुति की है। पोषण की इकाई कैलोरी मानी गई है। पोषण कैलोरी की क्षमता 1 ग्राम पानी का तापक्रम 100° सेन्टीग्रेड बढा सकने की शक्ति मानी गई है। कैलोरीज की आवश्यकता का अनुमान शरीर की दैनिक जरूरता के लिए उपयोगी शक्ति विभिन्न प्रकृति के काम धन्धा के लिए जरूरी शक्ति के आधार पर लगाया जाता है। इस आधार पर कैलोरीज की जरूरत इस प्रकार है

काय	पुरुष (55 कि ग्राम भार)	महिला (45 कि ग्राम भार)
बैठने के काम करन पर	2400	1900
मध्यम श्रम काय	2800	2200
भारी श्रम काय	3100	3000
गभवती महिला	—	3700
स्तनपान कराने वाली महिला	—	3700

बालकों मे

जन्म से 6 माह तक		120 प्रति कि ग्राम
7 स 12 माह		100 ,, ,,
1 से 3 वप		1200 ,, ,,
4 से 6 वप		1500 ,, ,,
7 से 9 वप		1800 ,, ,,
10 से 12 वप		2100 ,, ,,
13 स 15 वप	(बालक)	2500 ,, ,,
	(बालिकायें)	2200 ,, ,,
16 से 19 वप	(बालक)	3000 ,, ,,
	(बालिकायें)	2200 ,, ,,

उपयुक्त तालिका से स्पष्ट है कि 13 वप के बाद के बालक बालिकाओं को वयस्कों के सामान ही शक्ति की जरूरत होती है। प्रौढावस्था की तैयारी के कारण शरीर म कोशिकाओं के टूटने व बनने की रसायनिक प्रक्रिया अर्थात् 'चयापचय (Matabolism) का बढ़ना ही इसका विशेष कारण है।

पोषक तत्त्वों का स्रोत आहार—शरीर को जिन पोषक तत्त्वों की आवश्यकता होती है, उनकी प्राप्ति का एक मात्र साधन आहार ही है जिनका स्रोत

खाद्य एव पेय पदार्थ है। शरीर इनको जिस रूप म काम लेता है और जो उपयोगी पदार्थ हम प्राकृतिक रूप म मिलते हैं, उनका रूप भिन्न रहता है। अत पोषक तत्त्वो एव प्राप्त शक्ति का स्रोत हम निम्नाकित रूप मे मिलता है--

आहार के विविध घटक

1	प्रोटीन	2	कार्बोहाइड्रेट	3	फटस
4	मिनरल साल्ट्स	5	विटेमिन्स	6	पानी

इनमे से प्रत्येक घटक के द्वारा प्राप्त कैलोरीज का विवरण नीचे लिखे अनुसार होता है--

प्रोटीन प्रति ग्राम	4 1	कैलोरीज
कार्बोहाइड्रेट से प्र ग्रा	4 1	"
फेट्स से प्र ग्रा	9 3	"

शेष घटको से कैलोरीज शक्ति नही मिलती तथा उनसे अन्य तत्त्वो की पूर्ति होती है।

आहार अर्थात् भोजन की उन समस्त वस्तुओ के समग्र रूप को कहते हैं जो जीवन निर्वाह के लिए व्यक्ति काम म लेता है, पर सन्तुलित आहार उस भोजन को कहते हैं जिसमे पदार्थों का एसा सग्रह रहता है जो शरीर की आवश्यकताओ की पूरी तरह पूर्ति कर सके। ऐसे भोजन मे शरीर के लिए आवश्यक कैलोरीज तथा पोषक तत्त्वो का समावेश रहता है। सन्तुलित आहार की परिभाषा नीचे दी जा रही है--

"सन्तुलित आहार उसे कहगे, जिसमे उचित मात्रा मे आवश्यक कैलोरीज की क्षमता एमीनो एसिड्स, विटमिन्स, मिनरल्स, फेटस, कार्बोहाइड्रेटस तथा अन्य पोषक पदार्थ हो जो स्वास्थ्य और शक्ति देन वाले हो और जो नियमित आहार के अभाव मे थोड़े समय के लिए पोषक शक्ति देते रहने की क्षमता रखें।"

सामान्य भोज्य पदार्थों मे पाये जाने वाले पौष्टिक तत्त्व एव उनकी आवश्यकता

भोजन के पौष्टिक तत्त्व जिन सामान्य भोज्य पदार्थों म पाये जाते हैं, उनका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है --

(1) प्रोटीन--दाल, मटर, चना, दूध, बादाम, अण्डा, मांस, मछली, मुर्ग, गेहूँ का छिलका, सेम आदि म पाया जाता है।

(2) कार्बोहाइड्रेटस--माडी (Starch) वाले पदार्थ जैसे मक्का, आलू, गेहूँ, चावल, शकरकद आदि तथा मिठास वाले पदार्थ जैसे चुकदर, गन्ना, अगूर, मीठे फल आदि म पाये जाते है।

(3) वसा--यह मक्खन, घी, बादाम, सूखे फल, वनस्पति तेल, सुअर व पशुओं की चर्बी आदि म पाई जाती है।

(4) खनिज लवण--कैल्शियम दूध, पनीर, अण्डे की जर्दी, मछली आदि म, फास्फेट अण्डा, मेवा, आलू, दूध गेहूँ, माँस, पनीर आदि म, लोहा गाजर, हरी सब्जी, माँस, अण्डा आदि म, आयोडीन मछली का तेल, समुद्री भोजन आदि म फास्फारस दूध, पनीर, अण्डा, मछली, माँस, चना, दालें, सोयाबीन, करेला आदि म, सोडियम नमक, जैतून फल, नमकीन पदार्थों आदि म, पोटाशियम सल्फर, मैदे की रोटी, चावल, मक्खन, सब्जियां आदि म, गधक अंडा, दूध, तण धान्य आदि म, मैग्नीशियम धान्य, मेवे, दालो आदि म तथा क्लोरीन नमक म पाये जाते हैं।

(5) विटामिन—विटामिन 'ए' मछली के तेल, दूध, हरे पदार्थ आदि में विटामिन 'बी' खमीर, अकुरित चने, दूध, मूगफली, मेवे, दालो आदि म, विटामिन सी' खट्टे फलो जैसे नीबू, नारगी, आम, इमली, अगूर, सतरा, सब, टमाटर व हरी तरकारियो म, विटामिन 'डी' अण्डे की जर्दी, मछली के तेल, सूर्य की किरणों, दूध, मक्खन, घी आदि म, विटामिन 'इ' अकुरित गेहूँ, पत्तीदार सब्जियां आदि म तथा विटामिन 'के' पालक, गोभी, हरी साग सब्जियां आदि म पाये जाते हैं।

(6) जल--जल सभी खाद्य पदार्थों म पाया जाता है किन्तु शुद्ध जल ही पेय रूप मे शरीर के लिए उपयोगी है।

सतुलित आहार सारणी

आयु वग के अनुसार--'भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसधान परिषद्' द्वारा अनुमोदित सन्तुलित आहार अग्राकित सारणिया म स्पष्ट किया जा रहा है—

छोटे बालकों के लिए सन्तुलित आहार (ग्रामो मे)

पदार्थ	विद्यालय पूर्व आयु				विद्यालय प्रविष्ट आयु			
	1 से 3 वर्ष		4 से 6 वर्ष		7 से 9 वर्ष		10 से 12 वर्ष	
	शाकाहारी	मांसाहारी	शाकाहारी	मांसाहारी	शाकाहारी	मांसाहारी	शाकाहारी	मांसाहारी
अनाज	150	150	200	200	250	250	320	320
दालें	30	40	60	50	70	60	70	60
हरी सब्जियां	30	50	75	75	75	75	100	100
कंदमूल	30	30	50	50	50	50	75	75
फल	50	50	50	50	50	50	50	50
दूध	300	200	250	200	250	200	250	200
चिकनाई	20	29	25	25	30	30	35	35
मांस मछली	—	30	—	30	—	30	—	30
गुड़ शक्कर	30	30	40	40	50	50	50	50

किशोरो के लिए सतुलित आहार (ग्रामो मे)

पदार्थ	किशोर बालक				बालिकाये	
	13 से 15 वर्ष		16 से 18 वर्ष		13 से 18 वर्ष	
	शाकाहारी	मासाहारी	शाकाहारी	मासाहारी	शाकाहारी	मासाहारी
अनाज	430	430	450	450	350	350
दालें	70	50	70	50	70	50
हरी सब्जियां	100	100	100	100	150	150
दूसरी ,,	75	75	75	75	75	75
कन्दमूल	75	75	100	100	75	75
फल	30	30	30	30	30	30
दूध	250	150	250	150	250	150
चिकनाई	35	40	45	50	35	40
मांस मछली	—	30	—	30	—	30
अण्डे	—	30	—	30	—	30
गुड शक्कर	30	30	40	40	30	30
मूंगफली*	—	—	50	50	—	—

*मूंगफली के स्थान पर 30 ग्राम चिकनाई भी ली जा सकती है।

विभिन्न विटामिन्स की दैनिक आवश्यकता नीचे दी जा रही है—

विटामिन 'ए'—750 मिलीग्राम साधारण, 1200 मिलीग्राम (स्तनपान कराने पर)

'डी'—100 ,, ,, 400 मि ग्रा (गर्भावस्था, स्तनपान कराने पर व बच्चो का)

'बी$_1$'— 5 ,, प्रति 1000 कैलोरोज पर

नियासीन 6 6 ,, ,, ,,

रिबोफ्लेविन— 55 ,, ,, ,,

फोलिक एसिड–100 ,, (सामान्य), 150 मे 300 मिलीग्राम (गर्भावस्था व स्तनपान कराने पर)

50 से 100 मिलीग्राम बच्चा को

25 स ,, ,, शिशुग्रा को

बी$_{12}$—2 0 मिली ग्राम (सामान्य) 2 5 स 3 0 मि ग्राम (गर्भावस्था व स्तनपान कराने पर)

1–1 5 ,, बच्चा का

'सी'—50 , (सामान्य) 50 से 80 मि ग्राम

30 से 50 ,, (शिनुश्रो व बच्चो को)

इसी प्रकार खनिज लवणों की पूर्ति नीचे लिखे अनुसार होनी चाहिए—

कैलशियम 400 स 500 मि ग्राम (सामान्य)

600 से 900 ,, (10 से 15 वप आयु के)

500 स 600 ,, (16 से 19 वप की आयु के)

1000 ग्राम (गर्भावस्था व स्तनपान कराने पर)

आयरन—20 मि ग्राम (सामान्य)

30 से 40 मि ग्राम (मासिक-स्राव, स्तनपान कराने व गर्भावस्था म)

15 से 25 ,, (बच्चा के लिए)

आयोडीन— 2 मि ग्राम

उपसहार—अच्छे स्वास्थ्य के लिए शरीर की विकासमान अवस्था के अवसर पर पूर्णतया सतुलित आहार मिलना चाहिए। हमारे देश मे प्राय वग के अनुसार खान पान भी भिन्न भिन्न रहता है। इस कारण बहुधा बालकों की खुराक मे पोषक तत्त्वो व पर्याप्त कैलोरीज का अभाव रहता है। इसकी पूर्ति के लिये विद्यालयों म पोषाहार की व्यवस्था मध्याह्न नाश्ते के रूप म की जाती है। पाउडर मिल्क से दूध बनाकर पिलाना, दलिया बनाकर देना व सोयाबीन की पकौडियाँ बना कर खिलाना इसी कार्यक्रम के अन्तगत चलता है। इसम हम लोग अभी विदेशी सहायता पर निभर हैं। इस कायक्रम का पूरा लाभ पाने क लिए हम अपने ही साधनो को विकसित करना होगा।

इकाई–7

6 उपभोक्ता शिक्षण–आवश्यकता एव महत्व

उपभोक्ता का अर्थ

उपभोक्ता अथवा 'Consumer' का अर्थ वह व्यक्ति है जो अपने जीवन निर्वाह हेतु भोजन, वस्त्र, घरेलू वस्तुओं आदि का बाजार से क्रय कर उपभोग करता है। भोजन सबधी वस्तुओं (अन्न, दालें, मेवे, फल, सब्जी, दूध, घी आदि) का उत्पादन कृषकों द्वारा होता है व बाजार में दुकानदारों द्वारा उनका विक्रय उपभोक्ताओं को किया जाता है। वस्त्रों का उत्पादन हाथकरघा या मिलों द्वारा किया जाता है व दुकानदारों के माध्यम से उन्हें उपभोक्ताओं को बेचा जाता है। घरेलू अन्य वस्तुओं गुड, शक्कर, फर्नीचर, सफाई का सामान, दवायें, गृह निर्माण की वस्तुओं, प्रसाधन-सामग्री, जल प्रदाय, श्रम की बचत के उपकरण (हीटर, मिक्सी स्टोव, गैस स्टोव, पखे, कूलर आदि), शिक्षा व मनोरजन के साधन (रेडियो, टी वी, टेपरिकोर्डर, खेल उपकरण आदि) तथा सामाजिक सेवाओं, शिक्षा, चिकित्सा, सफाई, जल-प्रदाय, बिजली प्रदाय आदि) का उत्पादन एवं व्यवस्था विभिन्न उत्पादकों, कल कारखाना अथवा सरकारी विभागों व अधिकरणों द्वारा की जाती है। उपभोक्ता इन सभी वस्तुओं का उपभोग करता है।

उपभोक्ता शिक्षण का अर्थ एव उसकी आवश्यकता एव महत्व

उपभोक्ता शिक्षण का अर्थ है कि उपभोक्ता को उसके उपभोग से सबधित सभी वस्तुओं एव सेवाओं के उपलब्धि स्रोतों, उनकी गुणवत्ता, मूल्य एव उनके क्रय सबधी ज्ञान का प्रशिक्षण दिया जाये जिससे कि उपभोक्ता को उसकी माँग व आवश्यकता के अनुकूल अच्छे स्तर की, किफायत से व स्वास्थ्यप्रद वस्तुएं उपलब्ध हो सकें।

उपभोक्ता शिक्षण की आवश्यकता एव महत्व का मूल्यांकन उपभोक्ता की आज के युग मे निम्नांकित समस्याओं के कारण होता है—

(1) **वस्तुएँ मँहगी होना**—आजकल मँहगाई के युग मे दैनिक उपभोग की वस्तुएँ काफी महगी हो गई हैं। इसका कारण व्यापारियों द्वारा जमाखोरी,

काला बाजारी, अधिक मुनाफा कमाने की प्रवृत्ति भ्रष्टाचार आदि होते है अथवा उपभोक्ताओ की माँग के अनुपात मे उपभोग की वस्तुओ का उत्पादन न होना भी है।

उपभोक्ताओ की इस समस्या का निराकरण सरकार द्वारा व्यापारियों पर कठोर नियन्त्रण करने तथा उत्पादको को अधिक वस्तुओ का उत्पादन करने हेतु प्रोत्साहित करने से हो सकता है। उपभोक्ता भी अपने स्तर पर इस समस्या के निराकरण मे सहयोग दे सकते हैं जैसे भ्रष्ट व्यापारियों की सरकारी अधिकारियो से शिकायत कर, उपभोक्ता सहकारी समितियो, (Consumers Cooperative stores) की स्थापना कर, फसल पर सस्ते खाद्यान्न खरीद कर तथा अपनी माँग व आय से अधिक वस्तुओ का क्रय न कर।

(2) वस्तुओं मे मिलावट (Adulteration)--उपभोक्ता के स्वास्थ्य के लिये हानिकारक व घातक परिणाम प्राय भ्रष्ट उत्पादकों या व्यापारियो द्वारा खाद्यान्नो, पेय पदार्थों, पिसे हुए मसाला, दवाइयो आदि म बडी मात्रा म सस्ते व स्वास्थ्य के लिय हानिकारक पदार्थो की मिलावट करना सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिये सकट उत्पन्न कर रहा है। उदाहरणाथ, पिसे हुए मसालो म मिच के साथ गेरू, धनिया के साथ घोडे या गधे की लीद, नमक म पत्थर का पाउडर, कालीमिच म पपीते के बीज आदि। इसी प्रकार अन्य सभी वस्तुओ म सस्ती व घातक वस्तुओ का सम्मिश्रण कर बेचा जाता है।

इस समस्या का निराकरण सरकारी स्तर पर मिलावट विरोधी कानून का कठोरता म पालन कराने, भ्रष्ट निरीक्षण अधिकारियो पर नियन्त्रण करने व भ्रष्ट व्यापारियो व उत्पादको की विक्रय वस्तुओ के नमूने लेकर जाच द्वारा यदि मिलावट पाई जाये तो उन्हे दण्डित करने से हो सकता है। उपभोक्ता भी एसे व्यापारियो का शिकायत सबधित विभाग से कर तथा उपभोक्ता सहकारी भण्डार' द्वारा क्रय कर इस समस्या के निराकरण मे सहयोग दे सकते है।

(3) वस्तुओ का कृत्रिम अभाव (Artificial Scarcity)—व्यापारी अधिक मुनाफा कमाने के उद्देश्य से जमाखोरी (Hoarding) कर किसी वस्तु का कृत्रिम अभाव उत्पन्न कर देते हैं जिससे उपभोक्ताओ को दैनिक उपभोग की वस्तुएँ (जैसे कोयला, घासलेट, गैस, शक्कर खाद्यान्न आदि) या तो मिलते ही नही और यदि मिलते भी है तो काला बाजार (Black Market) से अत्यधिक ऊँचे दामों पर।

ऐसी स्थिति का नियन्त्रण सरकार भ्रष्ट व्यापारियो के यहाँ छापे मार कर जमा किए हुए माल का जब्त कर उसे उपभोक्ताओ को वाजिब मूल्य पर बेच कर व भ्रष्ट व्यापारियो को कठोर दण्ड देकर कर सकती है। उपभोक्ता अपना सगठन बनाकर सरकार को अपना विरोध प्रकट कर सकते है।

(4) नकली वस्तुओं का विक्रय—कुछ ऐसी वस्तुएँ जिन्हें उच्च स्तर की माना जाता है, उन्हें व्यापारी नकली वस्तुओं के रूप में भी बेचते हैं जैसे साबुन, प्रसाधन सामग्री दैनिक उपभोग की अन्य वस्तुएँ आदि। ऐसे भ्रष्ट विक्रेताओं पर भी सरकारी नियन्त्रण किया जाना चाहिए। उपभोक्ताओं को यह प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए कि वे नकली व मिलावटी वस्तुओं की जाच स्वय करें व सरकार से शिकायत कर दोषी लोगों को दण्ड दिला सकें। नकली वस्तुओं की जाच के सब सुलभ उपाय भी सरकार द्वारा प्रचारित किये जाते हैं।

(5) मुनाफाखोरी (Profiteering)—थोक व्यापारियों व फुटकर व्यापारियों (Wholsale and Retail Traders) एक निश्चित मुनाफ पर ही वस्तुओं का विक्रय कर सकते हैं किन्तु यह देखा जाता है कि कुछ व्यापारी अधिक मुनाफा कमाने के उद्देश्य से वस्तुओं को काफी बढ़े चढ़े दामों पर बेचते हैं जिससे उपभोक्ता को ठगा जाता है। यह प्रवृत्ति भी 'मूल्य नियन्त्रण नियम' (Price control Act) के कठोरता से पालन करने से दूर की जानी चाहिए ताकि उपभोक्ता सही मूल्य पर दैनिक उपभोग की वस्तुएँ खरीद सकें।

(6) विज्ञापन व प्रचार (Advertisment) द्वारा उपभोक्ता को भ्रमित करना—आजकल उत्पादकों व व्यापारियों द्वारा अपने माल का आवश्यक एवं अत्युक्तिपूर्ण प्रचार व विज्ञापन कर उपभोक्ताओं को कम मूल्य की वस्तुओं को अधिक मूल्य पर खरीदने हेतु उत्प्रेरित, आकर्षित एवं भ्रमित किया जाता है। उपभोक्ता को झूठे विज्ञापनों से सावधान रहने का प्रशिक्षण देना इसीलिए आज आवश्यक हो गया है कि वह व्यर्थ में ठगा न जाय और उसके स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव न पड़े।

उपयुक्त एवं अन्य और भी कारण ऐसे हो सकते हैं जो उपभोक्ताओं की समस्याओं को बढ़ा रहे हैं। ऐसी स्थिति में इन समस्याओं के निराकरण की शिक्षा देना अति आवश्यक हो गया है। इन समस्याओं के कारण उपभोक्ता अर्थात् जनसाधारण का स्वास्थ्य निरन्तर गिरता जा रहा है और जीवन पर घातक प्रभाव पड़ रहा है। अतः उपभोक्ता शिक्षण स्वास्थ्य शिक्षा का अंग बन कर उपभोक्ताओं को इन समस्याओं के प्रति जागरूक बनाये तथा उनके निराकरण हेतु उत्प्रेरित करे।

———

इकाई—8 स्वस्थ जीवन के लिए स्वच्छ पर्यावरण का महत्त्व।

इकाई—9 स्वच्छ जीवन के लिए पर्यावरणीय सुविधाओं का ज्ञान एव घर-पडोस का स्वच्छ होना।

इकाई—15 सार्वजनिक स्वास्थ्य को बनाये रखने हेतु किए जाने वाले उपाय।

इकाई—17 सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए पर्यावरणीय स्वच्छता की आवश्यकता।

7

स्वच्छ पर्यावरण एव सार्वजनिक स्वास्थ्य

(1) ग्राम एव कस्बो की पर्यावरणीय स्वच्छता

देश के 80 प्रतिशत लोग गावो और कस्बो म रहते हैं, अतएव जब तक गांवो की स्वास्थ्य सम्बन्धी परिस्थितियो म उचित सुधार नही किया जायगा तब तक देश की ठोस उन्नति नही हो सकती है। गांवो की स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यवस्थाओ के सुधार के अन्तर्गत निम्नलिखित बाते आती है—

(1) जन शिक्षा
(2) मल मूत्र तथा कूडे करकट का निराकरण
(3) मृत पशुओ का निराकरण
(4) जल वितरण
(5) भोजन सम्बन्धी सफाई
(6) ग्रामीण टाउन योजना
(7) प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र
(8) ग्राम समिति एव स्वास्थ्य शिक्षा

(1) जन शिक्षा—देश के गांव व कस्बों म अधिकाश व्यक्ति निरक्षर है, इस कारण वे स्वास्थ्य सम्बन्धी मामलो से अनभिज्ञ है। ग्रामीण स्वस्थ जीवन यापन के महत्व को नही जानते। अत ग्रामीण सफाई की कोई भी व्यवस्था तब तक

सफल नहीं हो सकती जब तक ग्रामीणों को स्वच्छ आदतों, अनुपयुक्त, सवातन, अस्वास्थ्यप्रद वातावरण, जल वितरण की दूषित व्यवस्था आदि के खतरों के विषय में जानकारी प्रदान नहीं की जाती। इसलिए ग्रामीणों के लिए जन शिक्षा की उपयुक्त व्यवस्था की जानी चाहिए। स्वास्थ्य सम्बन्धी मामलों में उनको जानकारी देने के लिए भाषण, फिल्म, पोस्टर, स्लाइडस आदि का प्रयोग किया जाना चाहिए। जन शिक्षा के लिए ग्रामीणों की भाषा को ही माध्यम बनाया जाना चाहिए। ग्रामीण स्वास्थ्य शिक्षा पाठ्यक्रम सरल एवं सुबोध होना चाहिए, ऐसा होने पर ग्रामीण एवं अपने अपने गांव के वातावरण को स्वच्छ रख सकेंगे।

(2) **मलमूत्र तथा कूड़े करकट का निराकरण**—गांवों व कस्बों में निजी पाखाना का इन्तजाम नहीं होता और लोग खुली जगह में मल त्याग करते हैं। वे इस काम के लिए आमतौर पर तालाबों या नदियों के किनारे, खेतों या नहर के किनारे चुनते हैं। इन स्थानों का तापमान और नमी हुकवर्म के लार्वों को जीवित रखने और बढ़ाने के लिए उपयुक्त होते हैं। इस प्रकार खुली जमीन में मल त्याग करने की बुरी आदत से जमीन और जल दूषित हो जाते हैं और आंत सम्बन्धी रोग फैलते हैं। इसके अतिरिक्त गोबर का कुछ अंश उपला या कोयला के रूप में जलाने के काम लाया जाता है और शेष यों ही मकान के पास ढेर कर दिया जाता है जिससे मक्खियों व मच्छरों का प्रसार होता है और संक्रामक रोग फैलते हैं। घर का कूड़ा करकट गलियों के किनारे फेंक दिया जाता है या आम रास्ते के कोने में ढेर कर दिया जाता है। धूल के छोटे छोटे कण और कीटाणु हवा के द्वारा घरों में आ जाते हैं। ये घर के पानी, भोजन और हवा को गंदा करते हैं, इसलिए मलमूत्र का ठीक तरीके से निराकरण करना भी आवश्यक है। अब तक के अनुभवों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ऊपा ग्राम, बोर होल और सेप्टिक टैंक पाखाना की वर्तमान परिस्थितियों में गांव के लिए उपयुक्त है। घर का कूड़ा-करकट और पशुओं के मल मूत्र के निराकरण के लिये खाद बनाना सबसे अच्छा और सस्ता तरीका है।

(3) **मृत पशुओं का निराकरण**—गांवों व कस्बों में मृत पशुओं के निराकरण के लिए उपयुक्त स्थान होना आवश्यक है। सामान्यतः गांवों में मृत जानवरों को बस्ती के पास ही डाल दिया जाता है, जिससे वातावरण दूषित एवं दुर्गन्धपूर्ण हो जाता है। इसी तरह मृत व्यक्तियों की अंतिम क्रिया के लिए भी उपयुक्त एवं निश्चित स्थान गांवों की बस्ती से दूर होना चाहिए।

(4) **जल वितरण**—गांवों में साधारणतया पीने और घर के अन्य कामों के लिए छिछले कुओं, तालाबों, नदियों का पानी प्रयुक्त किया जाता है। इनका जल सरलता से गंदा और दूषित हो जाता है जिससे हैजा, पेचिस व मियादी

बुखार फैलने का भय रहता है। गावों म जल आपूर्ति का सबसे उपयुक्त तरीका गहरे कु आ या नलकूपो की व्यवस्था करना हो सकता है। इन कुआ का सुरक्षित बनानें के लिए ऊपर ढक्कन, मुण्डेर तथा पानी क निष्कासन के लिए उपयुक्त गलिया की व्यवस्था होनी चाहिए। दूसरा तरीका है गहरे ट्यूब वैल का प्रबन्ध करना। यदि पम्प लगाना सम्भव न हो सके ता धातु की वाल्टी तथा चेन से पानी निकालने की व्यवस्था की जावे। गांवो मे पानी को शुद्ध बनाय रखने के लिए समय समय पर निसक्रामको का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(5) **भोजन सम्बन्धी सफाई**—साधारणत गाव मे असावधानी से खाने पीने की चीजे छोड दी जाती हैं जिन्हे धूल और मक्खिया दूषित कर दती हैं। इस प्रकार खुले छोडे खाद्य पदाथ चूहे बिल्ली और कभी कभी कुत्ते भी दूषित कर देते है। इस तरह विषला भोजन शरीर को हानि पहुंचाता है। गाव वालो को उन साधनो से अवगत कराया जाना चाहिए जिनके द्वारा भाज्य पदार्था को दूषित होने से बचाया जा सके। ग्रामीणो का यह भी बताया जाय कि महामारी के फैलने पर उबली हुई वस्तुए एव उबले पानी का प्रयाग करना चाहिए। साथ ही कु ओ तथा तालावा के पानी को शुद्धिकृत करने के ढगो का भी बताया जाए।

(6) **प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र**—सक्रामक बीमारिया को फैलन से रोकने के लिये गांवा मे प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रो की स्थापना की जाना चाहिए। साथ ही इनके लिए डिस्पन्सरिया की भी स्थापना की जाय। बच्चा के लिए क्रमबद्ध ढग से विभिन्न रोगो के टीके लगवाने की व्यवस्था की जानी चाहिय।

(2) मानवीय अवशिष्टो को हटान के लिए अद्यतन विधिया

मानव की आंतो और गुर्दों से निकलने वाले बेकार पदार्थों को मलमूत्र कहते है। मानव क मल मूत्र को हटवान के लिए निम्नलिखित विधियो को अपनाया जाता है —

(1) मल वहन प्रणाली
(2) जलवाही प्रणाली।

(1) **मल वहन प्रणाली**—इस प्रणाली म मनुष्य का मलमूत्र शारीरिक श्रम द्वारा सग्रहित कर दूर किया जाता है। प्रारम्भ म इस विधि का सम्पूर्ण विश्व म अपनाया जाता था लेकिन अब बहुत स देशा मे जलवाही प्रणाली का अपनाया जाता है। भारत म भी कई शहरा म जलवाही प्रणाली का अपनाया जा रहा है लेकिन गांवो मे मलवहन प्रणाली ही अभी जारी है। जलवाही प्रणाली के कुशल सचालन का बहुत महत्व है क्योकि यदि इसम सतकता नहीं बरती गई तो इसम बडी असुविधा हो सकती है, साथ ही भयानक रोगा का प्रसार भी हो सकता है।

मल वहन प्रणाली म अवशिष्टा को निम्नलिखित विधिया द्वारा हटाया जा सकता है—

(i) **अवशिष्टा (मले) को भस्म करना**--इस प्रणाली मे अवशिष्टा को जलाकर ठिकाने लगाया जाता है। इसको जलाने के लिए यदि उपयुक्त प्रकार की भट्टी हो तो इसके धुए से वायु के दूषित होने का भय नही होता है। अवशिष्टा को जलाने के लिए सडको के कूडे करकट को मिलाया जा सकता है।

(ii) **खाइयो के द्वारा**--यह एक अच्छी विधि है परन्तु इस विधि को बहुत सी नगरपालिकाओ ने अभी प्रयुक्त नही किया है क्योकि इससे नगरपालिका को कोई आय नही होती है। साथ ही ट्रेंचो के लिए नगर के पास उपयुक्त भूमि न मिलने के कारण भी इस प्रणाली को उनके द्वारा नही अपनाया जाता है। ट्रेंच बनाने के लिए नगर से दूर भूमि का चयन करना चाहिए। यह भूमि उच्च स्तर की हो तथा इसके पास जल प्राप्ति का साधन होना चाहिए। इस भूमि म नालियों की उपयुक्त व्यवस्था की जाय जिससे वर्षा का पानी सरलता से बाहर जा सके। जब ट्रेंच मल मूत्र से भर जाय तभी उसे मिट्टी से भर दिया जाय। ट्रेंचो को भरने के बाद 3 महीने तक उसकी जुताई नही करनी चाहिये।

(iii) **खाद बनाना**—शहरो म मल मूत्र आदि उत्सर्जित पदार्थ की खाद बनाई जा सकती है। इसकी प्रक्रिया इस तरह म है—

(1) ट्रेंचो के द्वार आबादी से चार फर्लांग की दूरी पर होना चाहिए। ट्रेंचो का आकार प्रतिदिन की आवश्यकता के अनुसार निर्धारित करना चाहिए। जिन शहरो मे अवशिष्टो तथा कूडा करकट मिश्रित रूप से एकत्रित किए जाते हैं वहा ट्रेंचो म उसको फैलाने के लिए व्यक्ति रहने चाहिए। अवशिष्टा को निकाल कर उसमे पानी डालना चाहिए जिससे वे भीतर जल्दी सड व गल सकें। इस प्रकार जब ट्रेंच भर जाय तब सूखी मिट्टी से ढक देना चाहिए। इस प्रकार चार छ महीने के अन्दर खाद तैयार हो जायगा।

(2) **जलवाही प्रणाली**—देश के उन्नत नगरो म जहा पानी पर्याप्त मात्रा म मिलता है मानव मल मूत्र को घरो के गन्दे पानी के साथ पानी की फ्लश शक्ति से ड्रेन तथा सीवर के माध्यम से बाहर पहुचाया जाता है। यह अवशिष्टा को हटाने की सबसे स्वच्छ और स्वास्थ्यप्रद विधि है। इसके अतिरिक्त जमीन के नीचे समुचित नालियो तथा सीवरो का होना भी अनिवार्य है। साथ ही इसके लिए वायु सचालन की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। सीवेज को आवश्यक गति प्रदान करने के लिए पर्याप्त ढाल या ढलान होना चाहिए। साथ ही सीवेज के प्रयोग के लिए पर्याप्त साधन होने चाहिए। जलवाही प्रणाली की व्यवस्था म अग्रलिखित दो बातें निहित है—

नि मादक के रूप म काय करते है । कीचड दबकर टिक्कियो के समान हो जाती है और उनको खाद के रूप म बचा जा सकता है । साफ द्रव्य को मल नि स्राव कहा जाता है, किसी भी धारा या नदी म डाला जा सकता है या नालियो के माध्यम से सिचाई के काम मे लाया जा सकता है । शुद्धिकरण के लिए निम्नलिखित रासायनिक पदार्थों को प्रयाग म लाया जा सकता है—

(i) चूना,

(ii) फिटकरी या एल्यूमीनियम सल्फट,

(iii) चूना और फिटकरी,

(iv) ए बी सी प्रक्रिया,

(v) आयरन सल्फेट कापराज ।

(ब) जविक क्रिया द्वारा—वह विधि सीवेज मे उपस्थित जटिल कार्बनिक पदार्थों को जैविक क्रिया द्वारा कम करती है । यह क्रिया सीवेज म पाय जाने वाले दो प्रकार के जीवाणुओ पर निभर है । य जीवाणु हैं--(1) ऐरोबिक जीवाणु, (2) एनारोबिक जीवाणु । ऐरोबिक जीवाणु एमोनिकल तत्वा को नाइट्रीफिकेशन की प्रक्रिया द्वारा नाइटाईड्स तथा नाइट्रेटस मे परिवर्तित करते हैं । अवशिष्टो को ट्रेंचा, सीवेज फार्मिग द्वारा पूणत परित्याग करने की विधिया वस्तुत जविक विधिया हैं । इनमे अन्तिम परिणाम भूमि मे उपस्थित जीवाणुओ के द्वारा प्राप्त किये जाते हैं । एनाराबिक जीवाणु मुख्यत काबनिक पदार्थों को कम करन स सम्बन्धित हैं । ये जीवाणु काबनिक पदार्थों को विघटित तथा उनका तरलीकरण करके साधारण यौगिको म परिवर्तित करते है । जैविक क्रिया की प्रमुख विधियाँ इस प्रकार है--

(1) सेप्टिक टक--केमेरन द्वारा प्रतिपादित इस प्रक्रिया द्वारा सीवज के शुद्धिकरण के लिए ऐराबिक तथा ऐनारोबिक दोनो प्रकार क जीवाणुओ द्वारा की जाने वाली क्रियाओ को सम्मिलित रूप से प्रदान किया गया है । सवप्रथम सीवज ग्रिट चेम्बर म जाता है जहा ठोम पदाथ–पत्थर टुकडे, इट आदि उसके तल म जम जाते हैं । मैले के सख्त टुकडे धरातल पर तैरते रहते हैं इसम हवा के प्रवश के लिए कोई सम्भावना नही रहती । भारत म इसको ब द रखना आवश्यक है। सैप्टिक टक का मल नि स्त्राव काले रग का होता हे तथा उसम मैले की गध तथा उसमे हुक्वाम जैसे कीटाणु होते हैं । इस मल नि स्राव को और शुद्ध किया जाना चाहिए । इस मल-नि स्राव को फिल्टर बैड म डाला जाय । यहाँ एरोबिक नाईट्रीफिकेशन किया जाना चाहिए । इस फिल्टर बैड म एरोबिक जीवाणु विभिन्न एनामिकन यौगिका का आक्सीकृत नाइट्रोजीनियम तत्त्वा म परिवर्तित करत हैं । य तत्व हानिकारक नही होते हैं ।

(ii) वृत्त स्लज प्रक्रिया--यह अवशिष्टों को हटाने की एराबिक प्रक्रिया है। यह उसी सिद्धान्त पर कार्यान्वित की जाती है जिस पर मस्पश बैंड काय करती है परन्तु इसम शुद्धिकरण बडी कुशलता के साथ होता है। सस्पश बैड आकार म आयताकार होता है। यह इट तथा सीमेंट का बना होता है। इसकी गहराई 3 से 4 फीट होनी चाहिए। इसम सीवेज का प्रथम रफ स्क्रीना म होकर गुजरती है। ये स्क्रीन शीर्षात्मक बारा के बने होते हैं। ये छडें एक दूसर से 2 इन्च की दूरी पर होती हैं। इनके द्वारा सीवेज म मिले पत्थर व ईंट क टुकडो का रोका जाता है। यहाँ से सीवेज एरेटिंग म जाता है। जहाँ उसे सम्पीडित किया जाता है। इसके बाद सीवेज ग्रीस सग्रह करने वाले चैम्बर म जाता है। इसम उसकी चिकनाई को दूर किया जाता है। इसके बाद यह मिश्रित करने वाले चैम्बर म जाता है। इसके बाद अन्तिम ऐरेटिंग चैम्बर मे जाता है। इसम विचारकों द्वारा हवा का दबाव डाला जाता है। ऐसी क्रिया 6 म 8 घण्टे तक चलती रहती है। इस प्रक्रिया म सीवेज म उपस्थित एमोनिया ऑक्सीकृत होकर नाइट्रेट्स म परिवर्तित हो जाती है। इसके बाद सीवेज सैटलिंग टक म आ जाता है। यहाँ सीवेज क नाइट्रेट्स नीचे बैठ जाते हैं और द्रव्य पदार्थ ऊपर आ जाता है। इस वृत्त स्लेज का कुछ अश नवीन सीवेज को सक्रिय करने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। इस प्रक्रिया से सीवेज का शुद्धिकरण तीव्र गति से और पूणत होता है। मल नि स्राव पूणत आक्सीकृत तथा साफ होता है।

(iii) सीवेज फार्मिंग—इस विधि से सीवज को ठिकाने लगाने के लिए काफी भूमि की आवश्यकता है। इस विधि मे सीवज को नलिकाओ के माध्यम स सीधे खेतो म छोड दिया जाता है। यह भूमि प्रवेश्य होनी चाहिए। साथ ही भूमि निम्न स्तर की हो जिससे सीवेज वहा चला जाय।

(3) वायु, भूमि एव पेयजल का रख-रखाव

(क) वायु का शुद्धिकरण

वायु सभी प्राणियो के लिए एक आवश्यक तत्त्व है। हवा के अभाव म कोई भी जीव कुछ मिनट स अधिक नही जी सकता। शरीर के अस्तित्व के लिए हृदय का धडकना व श्वास लेना अत्यन्त आवश्यक है। इनम स कोई भी एक प्रक्रिया ब द होने पर हमारा शरीर नष्ट हो जाता है। श्वसन क्रिया के लिए वायु का होना नितात आवश्यक है। वायु गैसो का मिश्रण है। यह गैसो का रासायनिक मिश्रण नही है। वरन् यांत्रिक मिश्रण है। वायु मे आक्सीजन 20 95 प्रतिशत कार्बन डाईऑक्साइड 0 04 0 04 प्रतिशत तक, नाईट्रोजन 79 02 प्रतिशत और जल-वाष्प तापक्रम के अनुसार होती है। इसके अलावा ओजोन भी वायु मे

मिली रहती है। वायु के सगठन मे ऑक्सीजन, कार्बनडाईऑक्साइड तथा नाईट्रोजन की महत्त्वपूर्ण भूमिका है परन्तु स्थानीय परिस्थितियों के कारण वायु में धूल धुँआ तथा अन्य वानस्पतिक पदार्थों के कण और ओजोन, अमोनिया एवं हाइड्रोजन सल्फाइड गैस भी सम्मिलित हो सकती है। सभी स्थानो पर वायु में आक्सीजन, कार्बनडाईआक्साइड तथा नाईट्रोजन इन तीनों गैसो की मात्रा समान नहीं रहती है।

वायु म अशुद्धताएँ निम्नलिखित कारणों से उत्पन्न होती हैं—

(i) श्वास क्रिया
(ii) रासायनिक सयोग
(iii) पुन मिश्रण
(iv) धूल
(v) बैक्टीरिया।

अशुद्ध वायु का प्रभाव—बन्द कमरे मे थोडी देर रहने पर शारीरिक तथा मानसिक थकान निद्रा, भारीपन, बेचैनी, घबराहट, हृदय की क्रिया में धीमापन सिरदर्द तथा श्वास की तेजी का अनुभव होने लगता है। यदि ऐसे वातावरण में निरन्तर रहा जाए तो उसके भयकर परिणाम निकलते हैं। जैसे शक्ति की कमी, भूख की कमी, अपच, पौष्टिकता म बाधा, छूत लगने का भय, एनीमिया, शारीरिक कुरूपता आदि प्रमुख हैं। वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि घुटन और बेचैनी का कारण वायु का रासायनिक मिश्रण न होकर वातावरण की निम्नलिखित भौतिक दशाएँ होती हैं—

(i) अत्यधिक ऊँचा तापक्रम
(ii) वायु म अत्यधिक आर्द्रता
(iii) वायु मे गति का अभाव
(iv) सक्रमण उत्पन्न करने वाले जीवाणुओ का अत्यधिक मात्रा में उपस्थित होना।

आस पास के वातावरण को शुद्ध रखने के लिए यह अनिवार्य है कि वातावरण मे बेचैनी या घुटन उत्पन्न करने वाले उन कारणों को दूर किया जाय। यदि वातावरण म प्राकृतिक या अप्राकृतिक कारणों से गति उत्पन्न कर दी जाए तो हमारा शरीर अपने अधिक ताप का सरलता से त्याग सकेगा। सामान्यत शरीर का तापक्रम 98 6 डिग्री का होता है। जबकि रहने के कमरे का तापक्रम सामान्यत 55 डिग्री से 60 डिग्री फा तक होता है। इस प्रकार शरीर अपने आस पास की वायु की अपेक्षा अधिक उच्च तापक्रम पर होता है। शरीर म प्रतिक्षण ताप उत्पन्न होती रहती है अत यह आवश्यक है कि अतिरिक्त गर्मी शरीर से बाहर

निकलती रहे, तभी शरीर का ताप स्थिर रह सकता है। ताप त्यागने की क्रिया निम्नलिखित दो प्रकार से होती है—

(i) गतिशील वायु शरीर के सम्पर्क में आकर उसका कुछ ताप ग्रहण करती है।

(ii) पसीना सूखने से शरीर का ताप कम हो जाता है।

अतः यह अनिवार्य है कि वायु में गति और उसमें आर्द्रता की मात्रा कम हो, दूसरे कमरे में तापक्रम को कम करने का प्रयास करना चाहिए, क्योंकि अधिक ऊँचे तापक्रम के कारण शरीर अपने ताप का नाश नहीं कर पाता है। यदि वायु में कार्बन डाईऑक्साइड तथा अन्य विषैली गैसों की मात्रा अधिक हो जाय तो हमारा जीवन दुर्बल हो जाता है क्योंकि ऑक्सीजन हम शुद्ध वायु से प्राप्त होती है। शुद्ध वायु को प्राप्त करने तथा अशुद्ध वायु को बाहर निकालने के लिए जो व्यवस्था की जाती है उसे साधारणतया संवातन कहते हैं। संवातन का अर्थ वायु में अवयव गैसों का समुचित संगठन नहीं है वरन् उपर्युक्त तापक्रम, आर्द्रता, वायु की गतिशीलता तथा रोगाणुओं की अनुपस्थिति है जिसमें मानव शरीर को स्वस्थ तथा सुखी बनाया जा सके। पर्यावरण की दृष्टि से घरों के आस पास बड़ी फैक्ट्रियाँ, मिलें एवं रासायनिक कारखाने तथा भारी वाहनों का अधिक आवागमन नहीं होना चाहिए क्योंकि इनके कारण वायु में विषैली गैस, धुआँ एवं रासायनिक तत्व मिलने के कारण वायु प्रदूषण बढ़ जाता है। स्वास्थ्य के लिये वायु प्रदूषण अत्यन्त ही घातक है। इसमें दमा व कैंसर जैसे घातक रोग होते हैं। बढ़ते वायु प्रदूषण के कारण वायु के रख रखाव पर अधिक ध्यान देना बहुत जरूरी हो गया है।

प्राकृतिक संवातन (Ventilation) के साधन—प्राकृतिक संवातन के साधनों या विधियों को निम्नलिखित चार समूहों में बाँटा जा सकता है—

(अ) चिमनी—चिमनी संवातन का सर्वोत्तम साधन है। वस्तुतः यह वायु को बाहर निकालने का मार्ग प्रदान करती है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि चिमनी निकास का साधन है। इसके द्वारा कमरे की दूषित वायु को बाहर निकाला जा सकता है—भारतीय घरों में इसको सामान्य रूप से देखा जा सकता है।

(ब) खिड़कियाँ तथा दरवाजे—ये अन्तर्गमन के साधन हैं। भारत जैसे गर्म देशों में संवातन के इन साधनों का बहुत महत्त्व है। वस्तुतः ये साधन सरल भी हैं। परन्तु ठण्डे देशों में इनकी अधिकता कष्टदायक होती है इसलिए अन्तर्गमन के लिए वहाँ डबल सेश खिड़की, लावर्स कूपर के संवातन हेटन हॉपर्स का इनलेट, शेरिंगधम वाल्व, टाबिन्स ट्यूब, इलिसन्स ब्रिक आदि का प्रयोग किया जाता है।

(स) फर्श की सतह पर वायु मार्ग—इस प्रकार के संवातन में फर्श या उसकी सतह पर खड़े तिरछे स्तम्भ बनाये जाते हैं। जिनके द्वारा वायु का आवा

गमन होता रहता है। आजकल सवातन की इस विधि को नव-निर्मित इमारतों म पर्याप्त मात्रा म उपयुक्त (प्रयुक्त) किया जाने लगा है।

(द) दीवार या छत मे वायु माग—कमरे म ताजी हवा के आने व उसे दूषित हवा को बाहर निकालने के लिए दीवार या छत म एसे वायु माग बनाये जाते है जो कमरे की छत पर बनते हैं। परन्तु ऐसे माग उन कमरो की छत पर बनते है जिनकी छत पर और कोई कमरा नही होता है। कई मजिला वाले मकानो म ये वायु मार्ग आखिरी मजिल की छत पर बनते हैं। एसे मार्गों में मेक्लीन का छत का सवातन प्रसिद्ध है। इसमे वायु के अन्दर आने तथा बाहर जाने के लिए बीच म दो नलिया होती है। दोनो नलियो के बीच का स्थान वायु का प्रवेश माग प्रस्तुत करता है।

अप्राकृतिक सवातन के साधन—आधुनिक युग मे अप्राकृतिक सवातन विधि का चलन कम है, क्योकि एक तो यह खर्चीली अधिक है। दूसरे यह बडी उलझनपूर्ण है। इसके खराब होन का अधिक भय बना रहता है। बडे सभा भवनो या हालों मे इसका प्रयोग अभी तक जारी है। अप्राकृतिक सवातन के लिए निम्नलिखित विधियो को अपनाया जाता है—

(अ) वायु को आगे धक्का देने की प्रणाली—इस प्रणाली म पखों बॉयलस भाप तथा अन्य यन्त्रो द्वारा वायु को कमरे म पहुँचाया जाता है और अशुद्ध वायु कमर मे बनी खिडकी तथा रोशनदानो से बाहर निकाली जाती है। इस प्रणाली का सबसे बडा लाभ यह है कि हाल मे भेजी जाने वाली वायु को किसी भी गति तथा स्तर पर पहुँचाया जा सकता है। साथ ही इसके द्वारा वायु के तापक्रम तथा उसकी आर्द्रता की परिस्थिति के अनुकूल बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त वायु को छाना भी जा सकता है जिसस कमरे म धूल व कण तथा अन्य गन्दगी प्रवश न कर सके।

(ब) वायु बाहर खींचने की प्रणाली—इसम बिजली के पखो द्वारा कमरे या सभा भवन की दूषित वायु को बाहर कर दिया जाता है और ताजी वायु को प्राकृतिक ढग स पखे को विपरीत दिशा म बन द्वार म प्रविष्ट कराया जाता है। इस प्रणाली म दो प्रकार के पखा उच्च दबाव वाले तथा निम्न दबाव वाले पखे का प्रयोग किया जाता है।

(स) सयुक्त प्रणाली—सभवत यह प्रणाली सबस अधिक सतोषजनक है क्योकि यह वायु का आग धक्का दने की प्रणाली तथा वायु को बाहर खींचने की प्रणाली का सयुक्त समन्वित रूप है। इस प्रणाली को एयर कडीशनिंग के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

भारत के लिए उपयुक्त सवातन विधियाँ—भारत ऐसा देश है जहाँ की जलवायु समग्र रूप मे एक सी है। यहाँ तेज हवाओ का अभाव है। इसलिए प्राकृतिक सवातन भारत के लिए सबसे उपयुक्त विधि है। भारतीय घरो के लिए प्राकृतिक सवातन सस्ता तथा सतोषजनक है जिन घरो म कोयले का अधिक पयोग किया जाय। परन्तु अन्य सामान्य घरो म सवातन क लिए खिडकी तथा दरवाजे ही पर्याप्त एव उपयुक्त है। विद्यालयो म सवातन की व्यवस्था करते समय यह ध्यान म रखना चाहिए कि छात्रो को दूषित वायु के रोगो से बचाया जा सके। इसके लिए विद्यालयो कक्षो मे खिडकियाँ तथा दरवाजा को ऐसे ढग से व्यवस्थित किया जाय जिससे वायु का आमन सामने सवातन हो सके। इसके अतिरिक्त हवा की अन्तरावहन क्रिया सरलता स हो सके। सावजनिक भवनो, सिनेमाघर, थियेटर हॉल, परीक्षा भवन म प्राकृतिक सवातन उपयुक्त नहीं होगा। अत इनम अप्राकृतिक विधियो का प्रयुक्त किया जा सकता है।

(ख) भूमि का रख-रखाव--

पत्थर और चेतनायुक्त पदार्थ नष्ट होकर भूमि का निर्माण करते है। ये पृथ्वी की ऊपरी परत को ऊपर से ढके रहते हैं। भूमि चेतनायुक्त पदार्थ की एक बडी राशि को, जिससे छूत वाली बीमारियाँ फैल सकती है, सडाकर निर्दोष बनाती रहती है। भूमि की ऊपरी सतह जीवित प्राणी की तरह काम करती है। कूडा-करकट आदि बेकार चीजो को सडाने, गलाने जैसा महत्वपूर्ण काय भूमिस्थित जीवाणु करते हैं। यदि ऐसा न होता तो मनुष्य के लिये पृथ्वी पर रहना असम्भव हो जाता।

भारतीय भूमि—(i) पत्थर के रूपान्तर होने से प्राप्त भूमि।

(ii) एक प्रकार की भारी चट्टान से निर्माण होने वाली मिट्टी।

(iii) अवसाद शैल से प्राप्त होन वाली मिट्टी।

(iv) कच्छारी मिट्टी।

कूडा करकट से भरी गई जमीन—साधारणत बेकार पोखरे, खडढे खन्दर तथा अन्य प्रकार के गड्ढो को कूडा करकट से बनाकर तैयार की गई जमीन को प्रस्तुत जमीन कहते हैं (मेड स्वायल) कहते है।

प्रस्तुत जमीन या मेड स्वायल जमीन सम्बन्धी सावधानियाँ—

(i) प्रस्तुत जमीन को अच्छी तरह सूखने के लिए छोडकर जल विहीन हो जाने देना चाहिए।

(ii) भराई का काम सम्भवत जाडे के मौसम म ही होना चाहिए, जिससे ग्रीष्म ऋतु म उसके अन्दर का जल स्वत सूख जाय।

(iii) भरावट धरती की सतह से लगभग दो फीट ऊपर होनी चाहिये जिसम वह बाद म बैठकर सतह के बराबर आ जाय।

(iv) भरावट की हर सतह पर कूडा-करकट को अच्छी तरह बैठ जाने का अवसर लाभदायक होगा।

(v) धरती की भीतरी नमी को सोखने के लिये परती जमीन पर तरकारी या अन्य पौधा को काफी अन्तर देकर लगाना चाहिये।

भूमि जनित रोग--भूमि जनित बीमारियाँ मुख्यत चार प्रकार की होती है--

(i) कृमि रोग--यह जीवाणु दूषित जमीन मे उत्पन्न साग सब्जियो के खाने से होता है। अकुल कृमि रोग इसका प्रमुख उदाहरण है।

(ii) हैजा, पेचिस और मियादी बुखार--यह जीवाणु दूषित भूमि म परोक्ष रूप से होता है।

(iii) धनुष टकार--वाति कोथ विर्प और विसहरिया जैसी बीमारियाँ भी दूषित भूमि से फैलती है।

(iv) वाति व्याधि और यक्ष्मा, आदि पेडो के रोग नम जमीन के कारण हो सकते है।

भूमि की सुरक्षा के लिये अधिकाधिक पड पौधे लगाये जाने चाहिये। पेड पौधे बरसात के पानी के साथ बहने वाली मिट्टी को रोक लेते है। जगलो में वृक्षारोपण अभियान चलाये जाने चाहिये। ताकि द्रुत गति से कटने वाले पेड पौधा को बचाया जा सके। घरो के आस पास दूषित पानी को नही फलने देना चाहिये। दूषित पानी मिट्टी को भी दूषित कर देता है।

(ग) जल का शुद्धीकरण--

जीवित रहने के लिये जल अत्यन्त आवश्यक पदार्थ है। भोजन के बिना मनुष्य कई दिनो तक जी सकता है। परन्तु जल के बिना वह शीघ्र मर जाएगा। शरीर को जल की आवश्यकता निम्न कारणा से होती है --

(i) रक्त की तरलता बनाये रखने हेतु।

(ii) तन्तुआ को मुलायम और लचीला बनाये रखने के लिए।

(iii) भोजन को पचाने, उसके रस को एकीभूत करने एव मल मूत्र त्याग करने मे मदद करने के लिए।

जल प्राप्ति के साधन

(i) वर्षा का जल।

(ii) पृथ्वी की ऊपरी सतह का जल--जैसे स्रोत, झील, तालाब एवं कुण्ड इत्यादि।

(iii) पृथ्वी की भीतरी सतह का जल--जैसे झरना, छिछले कुएँ, गहरे कुएँ, छिछले नलकूप तथा गहरे नलकूप आदि।

जल के दूषित होने के कारण

तालाब और पोखरो का जल कई कारणो से दूषित होता है जिनमे मुख्य निम्न है—

(i) मनुष्य द्वारा इनके किनारे और आस पास मल मूत्र त्याग करना। बारिश होते ही वे सारे दूषित पदार्थ घुलकर पोखरो मे चले जाते है और जल को दूषित कर देते है।

(ii) जानवरो का पोखरो म नहाना। पालतू जानवरो को पोखरो म नहलाने पर व जल को दूषित कर देत हैं।

(iii) धोबियो का पोखरो या तालाबो के घाटो पर कपडे धोना।

(iv) शौचादि क्रिया के बाद पोखरो म ही गदे हाथो को धो लेना।

(v) गाव की नालियो का निकास तालाब या पोखरो मे होना।

(vi) आस पास के वृक्षो के पत्तो का पोखरो व तालाबो म गिरकर सडना।

(vii) मर हुए जानवरो का जलाशयो के किनारे फेंका जाना।

जल को दूषित होने से बचाव के उपाय

(i) जल को दूषित करने वाले उपयुक्त कारणो का निराकरण।

(ii) जल के व्यवहार के सम्बन्ध म उचित नियमो का पालन।

(iii) तालाब और पोखरो को उचित तरीको से घेर कर सफाई के साथ सुरक्षित रखना।

(iv) तालाब व पोखरो की प्रति वर्ष सफाई करना।

सूर्य की पारनील लोहित किरणो द्वारा तालाबो का जल अपने आप शुद्ध होता रहता है। पर यथासम्भव पीने के काम के लिए तालाबो का पानी बिना उबाले हुए या दवा डाले हुए व्यवहार करना ठीक नही होता है।

जल को सग्रह करने और उसे सुरक्षित करने की विधि

जिन स्थानों पर नलकूप नही बनाय जा सकते है या वर्ष भर बहने वाली नदियाँ न हों, वहा के लिए जल का सग्रह करना अनिवार्य होता है। यदि इन स्थानो के लिये स्रोतो, झरना आदि स पानी प्राप्त करने की सम्भावना है तो स्रोतो को बाँधकर बडे बडे हौदो या कुण्डो म जल एकत्रित किया जाय। इस प्रकार से सग्रहीत जल को वितरित करने से पूर्व छानना आवश्यक है। यदि झीलों से जल की प्राप्ति सम्भव है तो भी उसको वितरित करने से पूर्व शुद्ध बनाया जाना तथा छाना जाना आवश्यक है।

जिस क्षेत्र म पानी को सग्रहीत किया जाय, उसको दूषित होने से बचाया जाना परमावश्यक है। यदि इस पानी की सुरक्षा के लिए ध्यान न दिया गया तो

वर्षा का पानी भी दूषित हो जायगा। अत जल को सुरक्षित रखने के लिए गड्ढ़ा के पानी को क्लोरीनेट करना आवश्यक है।

घरों में जल की सुरक्षा —देहातों में तथा अनेक नगरों में जनता मिट्टी के घड़ा या भांडों में पीने का पानी हर रोज संचय कर रखती है। इस प्रकार जल को संचित रखने में कोई दोष नहीं है, पर बहुधा लोग इन पात्रों को खुला छोड़ देते हैं। इससे इनमें धूल पड़ने या मक्खियाँ लगने की सम्भावनाएँ बनी रहती हैं। कभी-कभी इन पर चिड़ियाँ बैठकर अपनी चोंच डुबाती और जल में विष्टा करके उसे गन्दा करती रहती हैं। स्वास्थ्य रक्षा के लिए इन बर्तनों का एकदम साफ सुथरा तथा ढका रहना अत्यावश्यक है। अच्छा तो यह होता यदि इन पात्रों में नल लगे रहते, जिसमें केवल पानी भरने के ही समय उसके ढक्कन खोले जाते।

जल को शुद्ध करने की दो विधियाँ

(1) प्राकृतिक विधि

(11) कृत्रिम विधि

(1) प्राकृतिक विधि—इस विधि में पानी दो ढंगों से शुद्ध होता है—(क) भाप बनकर या घनीभूत होकर पानी का शुद्ध होना तथा (ख) नदी के जल में प्राकृतिक शुद्धता होना। नदी का जल प्राकृतिक रूप में दो प्रकार की क्रियाओं द्वारा शुद्ध होता रहता है —(क) क्षीणीकरण द्वारा तथा (ख) तलछटीकरण द्वारा। प्रथम क्रिया में अधिक जल के मिल जाने से गन्दगी की कमी हो जाती है। दूसरी क्रिया में जल का दूषित भाग पर्याप्त मात्रा में नदी के जल में बैठता रहता है। इसमें आक्सीजन का अन्य तत्वों से योग होकर भिन्न भिन्न पदार्थों के ऑक्सीकरण में सहायता मिलती है। आक्सीकरण द्वारा जल में उपस्थित गन्दगी और जीवाणु दोनों की कमी होती रहती है। सूर्य की रोशनी में 'अल्ट्रावाइलट किरणें' होती हैं। इन किरणों में जल के जीवाणुओं को नष्ट करने की शक्ति होती है। इनका प्रभाव केवल तभी होता है जब जल पर्याप्त मात्रा में साफ और चमकीला होता है। इन किरणों द्वारा जल के जीवाणुओं को बिना किसी रासायनिक परिवर्तन के नष्ट किया जाता है।

(11) कृत्रिम विधि—इस विधि के अन्तर्गत कई रीतियों या ढंगों से जल को शुद्ध किया जाता है। इन विभिन्न ढंगों का वर्णन निम्नलिखित प्रकार है—

(क) आसवन —इस विधि का प्रयोग रासायनिक प्रयोगशालाओं, जहाजों तथा एंजिन जैसे स्थानों पर किया जाता है। आसवन किया हुआ जल भारी तथा स्वादहीन होता है क्योंकि इसमें घुली हुई गैसों का अभाव होता है। अत आसवन किये हुए जल का प्रयोग में लाने से पूर्व फनिल या वातित कर लेना चाहिए।

(ख) उबालना उबालने या औटाने से, पानी के ठोस द्रव्य, जैसे क्षार, कार्बनिक पदार्थ, रोगजनक तत्त्व आदि समाप्त हो जाते हैं। गृहकार्य के लिए पानी शुद्ध करने की यह उत्तम विधि है। पानी को कम से कम 212 डिग्री फारेनहाइट तापक्रम तक औटाना चाहिए। इस तापक्रम में सभी प्रकार के जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। जल को उबालने से पानी स्वादहीन हो जाता है। इसलिए उबले पानी को प्रयुक्त करने से पूर्व वातित कर लेना चाहिए। उबालने से अस्थायी कठोरता या खारीपन को कुछ मात्रा तक हल्का बनाया जा सकता है। इसके लिए कैल्सियम लवण के अवक्षेप की आवश्यकता है।

(ग) निस्पदन—यदि किसी नगर की जल आपूर्ति का साधन नदी या तालाब हो तो उसके भौतिक, रासायनिक और जीवाणु सम्बन्धी दोषों को दूर करने की व्यवस्था करनी परमावश्यक है। इस कार्य को फिल्टर द्वारा किया जा सकता है।

(घ) रासायनिक द्रव्य से परिशोधन—पेय जल को कीटाणुओं से मुक्त करने के लिये क्लोरीन का सबसे अधिक प्रयोग प्रचलित है। उचित मात्रा में इसका प्रयोग करने से साधारणत यह सभी तरह के जीवाणुओं को नष्ट कर देता है। किन्तु उनके कुछ ऐसे कोष्ठ भी होते हैं जिन पर क्लोरीन का प्रभाव नहीं पड़ता। जल के अधिक गन्दा या दूषित होने से भी नियमित रूप से किया गया निसक्रमण पर्याप्त नहीं होता। अत ऐसे जल को छानकर क्लोरीन डालना चाहिये।

क्लोरीन अपने प्राकृतिक रूप में विशिष्ट गन्धयुक्त हरे रंग का गैस होता है। इसे जल में भी घोला जाता है और चूने में भी मिलाया जाता है। तरल रूप में प्राप्त क्लोरीन विभिन्न मात्रा से दवाखानों में पाये जाते हैं। इनमें साधारणत 1 से 3 प्रतिशत क्लोरीन होता है। चूने में मिलाया गया क्लोरीन ब्लीचिंग पाउडर या क्लोरीनेटेड लाइम कहलाता है। इसमें 30 से 35 प्रतिशत क्लोरीन होता है। परन्तु ज्योंही ब्लीचिंग पाउडर का डिब्बा खोला जाता है, पर्याप्त गैस के उड़ जाने से चूने की निसक्रमण शक्ति न्यून पड़ जाती है। अत न्यून स्तर पर अर्थात् "पारिवारिक निसक्रमण-कार्य के लिये" स्टाक सौल्यूशन तैयार करके रखना और उसी का व्यवहार करना उत्तम होगा। जल को शुद्ध करने वाले कुछ पदार्थ निम्न हैं —

(i) ओजोन
(ii) आयोडीन
(iii) पोटाशियम परमैंगनेट
(iv) फिटकरी आदि।

(4) विद्यालय में उत्तम पर्यावरणीय परिस्थितियां बनाये रखने मे सहभागिता

छात्रों को पूर्ण स्वस्थ बनाने के लिए स्कूलों म उत्तम पर्यावरणीय परिस्थितियां बनाये रखना बहुत जरूरी है। स्कूलों म सफाई की दृष्टि स नालियों मल मूत्रालयों, हाथ मुँह धोने के स्थानो, स्नानघरो, वस्त्र परिवर्तनालयों की उत्तम व्यवस्था होनी चाहिय। जिससे विद्यालय के वातावरण को स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयुक्त बनाया जा सके। स्वास्थ्यप्रद सुविधाओं का विवेचन निम्न लिखित है —

(i) **नालियां**—नल डालने से पूर्व नालियों का पूरा नक्शा बना लेना चाहिए। नलो के नीचे कंक्रीट डालनी चाहिये। पानी क निष्कासन के लिए 6 व्यास वाले ग्लेज्ड पाइप लगाने चाहिए। नालियां ढाल पर होनी चाहिये जिससे स्लज को बहाकर ले जाने म सुविधा रहे। नालियों म कम से कम मोड रखने चाहिए। जिस स्थान पर नालियों की विभिन्न शाखाएँ मिलें वहां इन्सपेक्शन चैम्बर बनाना चाहिये। नालियों की बदबू रोकने के लिए वेंटीलेटिंग डिवाइस को प्रयुक्त करना चाहिये।

(ii) **हाथ मुँह धोने का स्थान**—प्रत्येक बालक की अच्छी आदतों को सिखाने के लिये विद्यालय म उपयुक्त वातावरण होना चाहिये। हाथ-पाव धोने के स्थान भी विद्यालय के वातावरण को उपयुक्त बनाने म सहयोग देते हैं। ये स्थान व्यक्तिगत स्वास्थ्य का दृष्टि से उपयुक्त माने जाते हैं। अत विद्यालय मे प्रति 25 छात्रों के लिये एक वाश बेसिन होना चाहिये। जिन कक्षा म यह लगाये जाएँ उनमे वायु एव प्रकाश के लिए समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। बेसिन से बाहर पानी ले जाने वाला पाइप गन्दगी ले जाने वाले किसी पाइप से नहीं जुड़ा होना चाहिए। बालकों के प्रयोग के लिए तौलिए या रूमालो की व्यवस्था होनी चाहिए। छात्रों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए विद्यालय के वातावरण पर पूरा पूरा ध्यान देना चाहिए। विद्यालय म छात्र चार पाच घण्टे रहते है, अत उनके स्वास्थ्य के ऊपर वहाँ के वातावरण का विशेष ध्यान व प्रभाव पडता है। यदि विद्यालय का वातावरण अस्वास्थ्यकर होगा तो छात्रों का स्वास्थ्य भी दिन प्रति दिन गिरता जायेगा तथा वे अनेक रोगो से ग्रस्त हो जायेंगे। विद्यालय के वातावरण को स्वास्थ्यकारी बनाने के लिए हमे निम्न बातो पर ध्यान देना चाहिए —

(क) **विद्यालय की स्थिति**—विद्यालय की स्थिति ऐसी जगह पर होनी चाहिये जहाँ पर नगर क दूषित वायुमण्डल का प्रभाव न पड सके। विद्यालय का

भवन दल दल कब्रिस्तान, धुएँ के कारखाने आदि के निकट न हो। दूसरे शब्दो म, विद्यालय की स्थिति नगर से दूर स्वास्थ्यवर्द्धक स्थल पर हो। दल दल तथा कारखानो के धुएँ से छात्रो के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पडता है।

(ख) वायु और प्रकाश की व्यवस्था—शुद्ध वायु स्वास्थ्य के लिए परम आवश्यक है। शुद्ध वायु के अभाव से शरीर मे अनेक राग हो जाते है। अत विद्यालय के कक्षा कक्षो म पर्याप्त खिडकिया हो, जिनसे वायु सरलता के साथ प्रवेश कर सके। कमरे मे रोशनदान एक दूसरे के आमने सामने होने चाहिये, जिससे वायु का आवागमन स्वच्छन्द रूप स हो सके। प्रत्येक कक्ष मे छात्रो के बैठने की जगह पर्याप्त हो, अधिक आस-पास तथा पिच पिच म सीट लगा देन स कक्षा का वायुमण्डल दूषित होने की सम्भावना रहती है।

वायु की भाँति प्रकाश का प्रबन्ध भी परम आवश्यक है। खिडकी तथा रोशनदान इस ढग से बनाये जाएँ कि जिससे प्रकाश कक्षा कक्ष म प्रचुर मात्रा म प्रवेश कर सके। प्रकाश के अभाव म नेत्र रोग, क्षय-रोग तथा सीलन फैलने की सम्भावना रहती है।

(ग) उपयुक्त फर्नीचर—अधिकाशतया विद्यालय मे खराब फर्नीचर का प्रयोग किया जाता है। फर्नीचर इस प्रकार का होना चाहिये कि जिस पर छात्र सुविधानुसार आराम से बैठ सकें। यदि फर्नीचर इस प्रकार का है कि छात्र सीध नही बठ पाते तथा उस पर उन्हें बैठकर झुकना पडता है तो रीढ की हड्डी के टेढे होने की सम्भावना रहती है। अत प्रधान अध्यापक को चाहिये कि वह विद्यालय के अन्दर उपयुक्त फर्नीचर के प्रयोग का प्रबन्ध करें। फर्नीचर के ठीक न होने पर छात्र अनुचित आसनो का प्रयोग करते है।

(घ) मल मूत्रालय—विद्यालय मे स्वास्थ्यपरक सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए मल मूत्रालयो की उचित एव उपयुक्त व्यवस्था होनी चाहिय जिन नगरो म जल वितरण की सुविधा है वहाँ के विद्यालयो मे जल से साफ होने वाले पाखाना की व्यवस्था की जानी चाहिये। ये पाखाने विद्यालय भवन के अन्दर नही होने चाहिए परन्तु इनको अधिक दूरी पर भी स्थापित नही करना चाहिए। माध्यमिक विद्यालयो म प्रति 10 छात्रो के लिए एक पाखाने की व्यवस्था होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त इनको सफाई क लिए भी उचित व्यवस्था की जाय। इनम प्रतिदिन दुर्गन्धनाशक पदार्थ छिडकवाने चाहिए। जिन नगरो या ग्रामो म जल वितरण की व्यवस्था नही है वहा मिट्टी से साफ होने वाले पाखानो की व्यवस्था होनी चाहिए इनकी सफाई की भी व्यवस्था होनी चाहिये। मूत्रालयो की भी व्यवस्था होनी चाहिए। इनकी सफाई पर भी उचित ध्यान देना आवश्यक है। छात्रो तथा छात्राओ के लिये पाखाने तथा मूत्रालय पृथक् पृथक् होने चाहिये। साथ ही अलग अलग स्थानो पर स्थापित किये जाने चाहिए।

(च) **विद्यालय का कार्यक्रम**—विद्यालय का समय चक्र विभाग इस प्रकार से बनाया जाय कि छात्र अध्ययन करते समय थकान का अनुभव न करें। समय विभाग चक्र का निर्माण करते समय उन बातो का ध्यान रखा जाय जो थकान दूर करने म सहायक होती है। अच्छा समय विभाग चक्र छात्रो के स्वास्थ्य व अध्ययन शक्ति म वृद्धि करता है। समय चक्र म खेल कूद को भी स्थान दिया जाय।

(छ) **छात्रो के स्वास्थ्य की परीक्षा**—विद्यालय के अधिकारियो क लिय यह परम आवश्यक है कि वे वष म एक या दो बार छात्रो के स्वास्थ्य की जाच डाक्टर से करायें। डाक्टरी जाच का रिकाड रखना भी आवश्यक है। यथासम्भव छात्रो के स्वास्थ्य की परीक्षा किसी योग्य डाक्टर द्वारा कराई जाय। छात्र के स्वास्थ्य की सबस पहल परीक्षा तो तब ली जाय, जबकि छात्र विद्यालय म प्रवश लेता है। इसके बाद भी तीन या छ मास पश्चात् डाक्टरी जाच कराइ जाय। यदि बालक के स्वास्थ्य म कोई रोग पाया जाता है तो उस रोग की सूचना बालक के अभिभावको को द दी जाय। डाक्टरी निरीक्षण के विषय मे आगे डाक्टरी निरीक्षण के अध्याय म विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

(ज) **दूषित वातावरण पर नियन्त्रण**—विद्यालय के अन्दर किसी भी प्रकार से बाहरी सामाजिक बुराइया न प्रवेश कर सकें। प्रधानाध्यापक तथा अध्यापको का उत्तरदायित्व है कि वे छात्रो को सिगरेट, पान आदि का प्रयोग न करन दें। इसके लिये उ हे स्वय आदश उपस्थित करना होगा। यदि अध्यापक स्वय धूम्रपान करेगे तो उसका प्रभाव छात्रो पर बुरा पडेगा। अत अध्यापको को विद्यालय के अ दर तथा विद्यालय के बाहर सिगरट, बीडी का प्रयोग बिल्कुल नहीं करना चाहिए।

विद्यालय म बहुधा खोमचे वाले, चाट-पकोडो बेचन वाले आ जाया करते है। चटपटी मसालेदार वस्तुए छात्रो के लिए हानिकारक होती हैं अत इस पर रोक लगा देना ही उचित है। फल बेचने की अनुमति प्रदान की जा सकती है परन्तु यह देखना आवश्यक है कि कहीं फल सडे गले तो नही बेचे जात।

विद्यालय म यदि उपयु क समस्त बातो का पूण रूप से पालन किया गया तो निश्चय ही विद्यालय का वातावरण स्वास्थ्यकारी हो सकता है। स्वच्छ पर्यावरण सावजनिक स्वास्थ्य के लिये अत्य त महत्त्वपूण है। अत पूर्वोल्लिखित पर्यावरणीय सुविधाओ का ज्ञान, घर पडौस की स्वच्छता तथा सावजनिक स्वास्थ्य बनाय रखने हेतु किय जान वाल उपायो का ज्ञान होना आवश्यक है।

———

इकाई—10

8 स्वस्थ शरीर से ही मानसिक, सामाजिक एव शैक्षिक विकास सभव है

मनोवैज्ञानिक दृष्टि म शारीरिक स्वास्थ्य का मानसिक, सामाजिक एव शैक्षिक विकास से घनात्मक सह सम्बन्ध (Positive relation) है। अभिवृद्धि एव विकास की विभिन्न अवस्थाओं–शैशवास्था, बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था–– म यह सह सम्बन्ध स्पष्ट परिलक्षित होता है। विकास के निम्नाकित पक्षो मे विकास का आधार स्वस्थ शरीर ही होता है ––

(1) मानसिक विकास––शैशवावस्था मे शारीरिक अभिवद्धि एव मानसिक शक्तिया का तीव्र विकास होता है। प्रथम दो वर्षो मे शिशु का शरीर तीव्र गति से भार और लम्बाई प्राप्त करता रहता है। उसके अगो और ज्ञानेन्द्रिया का आन्तरिक अभिवृद्धि के कारण क्रमिक विकास होता है। शशवावस्था मे मानसिक क्रिया अवधान (ध्यान), सवेदना, प्रत्यक्षीकरण (Peription), कल्पना व स्मृति स आरम्भ होती है जो तीन वर्ष की आयु म विकसित हो जाती है। यह शारीरिक अभिवृद्धि एव विकास के कारण होता है।

बाल्यावस्था मे भी शारीरिक अभिवृद्धि एव विकास की तीव्र गति के समान ही मानसिक विकास होता है। शैशवावस्था की अपेक्षा अब बालक इस अवस्था मे अपने अवधान, प्रत्यक्षीकरण, स्मरण शक्ति, तर्क व विचार करने की शक्ति अधिक प्रयोग करने लगता है क्योकि उसके अग व ज्ञानेन्द्रियाँ अधिक विकसित हो जाती हैं। उसकी सहज प्रवत्तियो (Riflex actions) व मूल प्रवृत्तिया (Instincts) का विकास भी हो जाता है।

किशोरावस्था म शारीरिक परिपक्वता आने के कारण बालक की अवधान, कल्पना, स्मरण, तर्क तथा अमूर्त चिन्तन की शक्तिया विकसित हो जाती हैं।

(2) सामाजिक विकास—शैशवावस्था में प्रारम्भ में बालक की माता उसकी माता होती है क्योंकि शारीरिक दृष्टि से वह माता पर ही निर्भर रहता है। 3–4 मास में उसकी सामाजिकता का विकास होने लगता है। वह परिवार के लोगों को पहिचानने लगता है व घुटनों के बल उनके पास चला जाता है। 2 वर्ष की आयु में वह अपनी आयु के बच्चों के साथ खेलने लगता है। 3 से 6 वर्ष की आयु में वह समूह कार्यों में रुचि लेने लगता है जिससे उसका सामाजीकरण (Socialiazation) होता है। यह विकास उसके शारीरिक विकास के कारण क्रमश सम्भव होता है।

बाल्यावस्था में बच्चों का सामाजीकरण विद्यालय के वातावरण में होता है। बालक बालिकाएँ अलग अलग खेलना पसन्द करते हैं। खेलों में उसमें प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो जाती है और उनमें नेतृत्व के गुण विकसित हो जाते हैं। यह परिवर्तन शारीरिक विकास व स्वास्थ्य में अभिवृद्धि का परिणाम होता है।

किशोरावस्था में स्थायी मित्रता का भाव, दल व साथियों की प्रतिष्ठा के लिये त्याग करने की भावना सामाजिक चेतना तथा यौन भावनाएँ विकसित हो जाती हैं। यह शारीरिक विकास की परिपक्वता प्राप्त होने के कारण होता है।

(3) शैक्षिक विकास—शैक्षिक विकास मानसिक विकास पर निर्भर होता है जो अन्ततः शारीरिक अभिवृद्धि, विकास एवं स्वास्थ्य की दशा का परिणाम होता है। बालक जैसे ही शैशवावस्था से प्रौढावस्था की ओर विकसित होता है उसकी मानसिक शक्तियों का क्रमश विकास हो जाता है जिसके कारण उसके शैक्षिक विकास मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है।

डा एस एम माथुर का कथन है कि—"आयु के बढने के साथ साथ मस्तिष्क और सम्पूर्ण नाडीमण्डल प्रौढता को प्राप्त होता है। बालक को किसी भी विषय की शिक्षा देते समय उसके मानसिक स्तर का ध्यान रखना चाहिए। शारीरिक शिक्षा देते समय शिक्षक को बालक के शारीरिक विकास और अगों की अभिवृद्धि को अधिक महत्त्व देना चाहिए। चूंकि बालक और बालिकाओं के विकास की गति में बहुत अन्तर होता है, अत दोनों के लिये एक ही शैक्षिक कार्यक्रम लाभदायक सिद्ध नहीं हो सकता। किशोरावस्था के समय बालक और बालिकाओं, दोनों में बहुत से महत्त्वपूर्ण शारीरिक परिवर्तन होते हैं जिनके कारण बहुत सी गम्भीर समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। शिक्षक को उन समस्याओं पर गम्भीर रूप से विचार करना चाहिए और बालकों को दोषों से मुक्त रहना चाहिए।'[1] इस कथन से प्रकट होता है कि बालक की अभिवृद्धि एवं विकास की परिपक्वता की ओर बढती हुई गति तथा उसके स्वस्थ शरीर का उसके मानसिक सामाजिक एवं शैक्षिक विकास पर पर्याप्त प्रभाव पडता है।

---

1 पूर्वोद्धृत, पृ 88

इकाई—14

9 पोषक तत्वो की कमी से होने वाले रोगो एव उनके निदानात्मक उपाय

समुचित पोषण तो वही है जो मनुष्य के शारीरिक वद्धन और परिवर्द्धन का यथाथ बनावे, उसके अग प्रत्यगो को सुगठित करे, उसके वजन को ऊँचाई के अनुपात म यथाथ बनाये रक्खे उसम उचित ऊर्जा शक्ति उत्पन्न करे, उसे चुस्त व चपल बनाये रक्खे और उसकी काय-क्षमता को यथोचित बनाये रखे। वह पोषण अभाव के चिन्हो को प्रदर्शित न करें या पोषण अभाव रोगो से पीडित न हो।

पोषण जब समुचित नही होता तो वह या तो

1 अल्प या अपर्याप्त होता है अर्थात् कुपोषण

2 अत्यधिक पोषण होता है

और यह दोनो ही स्थितिया कुपोषण और अधिपोषण की श्रेणी म आती है।

कुपोषण

भारत म आज भी लगभग 75 प्रतिशत लोग अपर्याप्त पोषण की स्थिति म हैं। 1 5 वष के बच्चो म तो यह स्थिति और भी अधिक शोचनीय बनी हुई है। इस उम्र के बच्चो को जबकि उनके सर्वांगीण विकास के लिये अधिक पोषण की आवश्यकता होती है वहा उन्हें पर्याप्त पोषण प्राप्त हो नही पाता। लगभग 30 से 40 प्रतिशत बच्चे प्रोटीन-कलोरीन का अभाव प्रदर्शित करते है, जिससे उनका शारीरिक व मानसिक विकास वांछित स्तर का हो नहीं पाता। आइरन के अभाव मे और विटामिन, फोलासिन व कोबालामिन के अभाव मे लगभग 60 प्रतिशत बच्चे अरक्तता के शिकार बने रहते हैं और विटामिन "ए" के अभाव म हजारो बच्चे प्रतिवष केरेटोमलेशिया से पीडित होकर अन्धे हो जाते है। आई सी एम आर के हाल के सर्वेक्षण से यह विदित हो पाया है कि पश्चिमी बगाल, बिहार, उडीसा आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु और केरल म प्रतिवष लगभग 12,000 से 14,000 बच्चे केरेटोमलेशिया के कारण दृष्टिविहीन होते हैं। सरक्षण पोषक पदार्थों के

अभाव म इनकी शारीरिक अक्षमता पनपने नहीं पाती जिस कारण वह प्रति ग्रशामक रोगो के शिकार होते रहते हैं और लगभग 40 प्रतिशत मृत्यु क बनते हैं, जबकि अन्य विकसित देशो म इन रोगो से मरने वाले बच्चो की वार्षि दर केवल 6 से 8 प्रतिशत ही है।

बडे लोगों म भी अल्प पोषण बना हुआ है क्योकि जहाँ केवल साधार कामकाज करने वाले लोगो को प्रतिदिन 2,400 कैलोरीज की कम स कम आव श्यकता होती है वहा उन्ह अधिकांश 2,017 कैलोरीज ही प्राप्त हो पाती है उत्तम प्रोटीन, विटामिन "ए" "बी" वग "सी" और आइरन व कैल्शियम की कमी हमारे युवावग के लोगो म भी अधिकतर देखने म आता ही है महिलाओ मे तो अनुपात मे और भी अधिक। ऐसी स्थिति म अपर्याप्त पोषण विकट समस्या आज भी हमारे देश मे बनी हुई हैं।

कुपोषण के मुख्य कारण निम्न हैं —

1 खाद्यान्नो का अभाव
2 दैवी प्रकोप
3 भू सरक्षण आदि
4 यातायात व परिवहन
5 स्वकीय कारण
6 गरीबी, बेरोजगारी अ बढती आबादी
7 अज्ञानता
8 खाद्य सामग्री म मिलाव
9 भोजन सम्बन्धी हमारी आदतें
10 मानसिक वेदना व चिन्ता
11 कुछ शारीरिक परिस्थितियां और रोग विशेष के कारण अपर्या पोषण।

कुपोषण के लक्षण

कुपोषण के लक्षण अधिकाश बच्चो म जल्दी ही प्रकट होने लगते हैं क्योंकि इधर तो उनके शरीर का वाछित वर्द्धन और परिवर्धन होता है और उधर शरी की माग के अनुरूप पोषण प्राप्त नही होने पर अल्प पोषण के चिह्न तुरन्त प्रकट होने लगते है।

कुपोषण म शारीरिक गठन म ढीलापन, मांस पेशियो म शिथिलता, उ व ऊँचाई के अनुपात म वजन की कमी दुबला पतला कृश शरीर, सुस्ती, कमजोरी निरुत्साह और निस्तेजता की झलक दिखाई देने लगती है। चमडी सूखी, खु और झुरिया पडी हुई दिखायी देती है। चमडी पर दाग, दाद, खुजली, फोड, फु और एक्जीमा आदि होने लगते है। अत्यधिक अपर्याप्त पोषण की स्थिति म आं सूखी सी, निस्तेज व धँसी हुई दिखाई देने लगती है। नेत्र श्लेष्मला पर द पपडी जमने लगती है, और बीटाट्स दाने उभरने लगते है। कोनिया पर शोथ व्रण पडने लगते है और केरेटोमलेशिया की स्थिति पैदा हो जाती है। यह स विटामिन 'ए" की कमी से होता है। मुँह पर चकत्ते, त्वकशोथ, होठ फटे, हो

पर सफेद दाग मुँह मे छाले, मसूड़े सूजे हुए और उनम से रक्त स्राव, दांत ढील वडौल, दांता म कोचर, हड्डियाँ कमजोर व मुडी हुई, पेट फूला हुआ, पसलियाँ निकली हुई, यकृत बढा हुआ, बाल रूखे व मुर्झाये हुए दिखाई देते है और कघी करने पर अधिक टूटत रहते हैं। रक्तहीनता क कारण पलकें वर्णहीन रक्तचाप की कमी, नाखून सफद व सूखे से, धँसे से (चम्मच की तरह) और दोनो हाथा की ऊँगलिया के नाखना पर सफेद धब्बे या लकीरें पडी दिखाई देंगी और अधिक अपर्याप्तता पर हाथा पर जल जमाव और विस्तृत चकत्ते दिखाई देंग और भुख मरी की स्थिति पैदा हो जावगी।

उपचार

कुपोषण के उपचार म सवप्रथम ता हमे उन कारणा का पता लगाना होगा जिनके कारण अल्प पोषण की स्थिति बनी है और उन कारणों का निवारण करना होगा। यदि बच्चे की शारीरिक बनावट म जन्म ही की कोई त्रुटि रह गई है जैसे कटा होठ या फटा तालु तो उसका तुरन्त शल्य चिकित्सा द्वारा उपचार कराना होगा। अन्य रोग विशेष हो जैसे दात, टान्सिल्स, एडिनोइड्स, आमाशय व आंतो के रोग हृदय, यकृत व गुर्दों के रोग आदि तो उनका उपयुक्त उपचार कराना होगा। भोजन सम्बन्धी आदतो म सुधार लाना होगा। व्यक्ति की दिनचर्या म वाछित परिवर्तन कराना होगा। मानसिक विकार व अवसाद के कारणो का निराकरण करना होगा और व्यय की भ्रान्तिया का मिटाना होगा। पोषण सम्बन्धी शिक्षा और प्रचार का सम्यक प्रबन्ध करना होगा। सस्ते से सस्ते ढग मे सन्तुलित खुराक कैसे तैयार की जाय इस सम्बन्ध मे विस्तृत प्रशिक्षण देना होगा। बच्चो, स्कूलगामी बालको, प्रसूति व धात्री माताओ के लिये विशेष कर गाँवो म सस्ते सन्तुलित आहार सस्थानो की स्थापना करनी होगी और उनम ग्रामीण लोगो को विश्वास म लेकर उनका अधिकाधिक सहयोग प्राप्त करना होगा। स्कूलगामी बच्चो के लिए विस्तृत स्तर पर सन्तुलित मध्याह्न आहार की व्यवस्था करनी होगी। इस दिशा म जो भी प्रगति अब तक हो पाई और जो व्यावहारिक पोषण अभियान प्रस्थापित किया गया है उसम और अधिक प्रगति करनी होगी। खाद्यान्नो का और अधिक उत्पादन बढाना होगा। कीमतो की वृद्धि को रोकना होगा और मिलावट की कुप्रथा पर शासन और समाज की ओर से कडा अकुश लगाना होगा। सक्षिप्त मे उन पोषण अभाव परिस्थितियो के उपचार पर ही विचार कर लेना उपयुक्त होगा जो अल्प पोषण के कारण उत्पन्न हो जाती है।

I **भुखमरी**—यह अवस्था तभी उत्पन्न होती है जब लम्बे समय के लिये पोषण प्राप्त न हो जैसे कि अकाल, दुर्भिक्ष, युद्ध आदि के कारण उत्पन्न हुई अभाव परिस्थितियो आदि म या भूख हडताल आदि की स्थिति मे।

भुखमरी मे पीडित व्यक्ति की पाचन शक्ति अत्यन्त ही क्षीण हो जाता है, वह सहसा पूर्ण आहार पचा नही पाता। उसे प्रारम्भ म केवल फलो का रस, शरबत या ग्लूकोल-जल थोडे थोडे समय के अन्तर पर देना होगा। लगभग 12 घण्टे बाद मलाई निकले दूध का थोडी थोडी मात्रा 2 से 4 औंस सेवन कराना होगा। ताजा दूध न मिले तो स्किम दूध पाउडर का प्रयोग वाछित होगा। जब यह दूध पचन लगे तो सब्जियो का रस, दाल पानी, पतली दाल, दूध मिला पतला दलिया या खिचडी थोडी थोडी मात्रा मे दें। दही, छाछ, मठठा आदि का प्रयोग भी करते रहें। तत्पश्चात् मिर्च मसाले रहित हरी सब्जियाँ, दलिया आदि के साथ दें। उसके बाद यथासमय भोजन देना प्रारम्भ करें। विटामिन "बी" व "सी" की अतिरिक्त मात्रा दवाई के रूप म दें। यदि कोई अन्य रोग या उपद्रव हो तो उसका भी समुचित उपचार कराएँ।

2 **क्याशियोरकोर**—यह परिस्थिति अधिकाश 1 से 5 वर्ष के बच्चो म प्रोटीन की अत्यधिक कमी के कारण होती है। विशेषकर गरीब परिवार के बच्चो मे जिन्ह माता का दूध छुडाने के बाद पर्याप्त मात्रा म प्रोटीनयुक्त आहार प्राप्त नही हो पाता। अफ्रीका के बच्चे इस अवस्था से अधिक पीडित पाये जाते हैं। इस अवस्था के लक्षण अध्याय तीन म वर्णित किय जा चुके हैं।

3 **रिकेट्स**—यह बीमारी इस विटामिन के अभाव मे बहुधा बच्चो मे हो जाया करती है। सिर की हड्डियो का समय पर न जुडने और फाटेनेल का न भरने के कारण बच्चे का सिर बडा सा और ललाट आगे को निकला सा दिखाई देता है। सीना उभरा हुआ, सीने की हड्डी आगे को निकली हुई, पसलियो के जुडने के स्थान पर गुटिका माला का बनना और फलस्वरूप कबूतर का सा सीना दिखाई देने लगता है। पेट फूला सा रहने लगता है। हाथ पाव की हड्डिया कमजोर और मुडी हुई दिखाई देने लगती है। जोडो पर सूजन, घुटनो का या तो अत्यधिक अलगाव या फिर अत्यधिक नजदीक हो जाने से चलते समय टकराव, रीढ की हड्डी म भी टेढापन, दातो का देर से निकलना, दातो म कीचड पडना आदि लक्षण दिखाई देने लगते हैं। बच्चे का शरीर उसकी उम्र के अनुपात मे नाटा सा बना रहता है, उसकी मास पेशिया ढीली ढाली बनी रहती हैं। बच्चा देर से चलना प्रारम्भ करता है। खेल आदि म अधिक रुचि नही दिखाता और चिडचिडा सा बना रहता है।

इस विटामिन की कमी से रक्त म कैल्शियम की कमी होने के कारण टटनी की स्थिति बन जाती है जिसम उगलिया स्वत ही कापती सी रहती हैं और बच्चो म तानें आने लगते है।

4 **ओस्टीयोमलेशिया या अस्थि मृदुता**—यह स्थिति वयस्क लोगो म होती है। इस विटामिन के अभाव म उनमे केलशियम व फास्फोरस की कमी के

कारण हड्डियां मुलायम व कमजोर हो जाती हैं। गर्भवती या धात्री माँ में इसका विशेष प्रभाव पड़ता होता है। महिलाओं में श्रेणी की हड्डियां कमजोर होने के कारण चपटी या तिकोनी हो जाती हैं जिससे प्रसव में बड़ी कठिनाई होती है।

5 बेरीबेरी—यह अवस्था विटामिन "बी" थायमिन की कमी के कारण उत्पन्न होती है। अधिकांश वे लोग जो मिल का साफ किया सफेद चमकदार चावल ही काम में लाते हैं, इस अवस्था के शिकार होते हैं। अधिकतर इस अवस्था का प्रकोप इण्डोचीन, जापान, फिलिपाइन्स, थाइलैण्ड, मलेशिया, इण्डोनेशिया, बर्मा, बंगला देश और भारत के पूर्वी तट के प्रान्तों में देखने को मिलता है।

6 पेलग्रा—यह अवस्था "बी वर्ग" के विटामिन नियासीन की न्यूनता से उत्पन्न होती है पर साथ ही साथ आवश्यक माईनो एसिड ट्रिप्टोफेन की कमी भी इसकी उत्पत्ति का कारण बनती है। बहुधा मक्का खाने वाले लोगों में इसका उपद्रव अधिक देखने को मिलता है। मक्का में हालांकि नियासीन थोडी बहुत मात्रा में अवश्य मिलता है पर उससे प्राप्त होने वाले प्रोटीन जिनमें ट्रिप्टोफेन बिल्कुल नहीं होता अन्त इन दोनों तत्वों के अभाव में ही यह उपद्रव उत्पन्न होता है।

7 स्कर्वी यह अवस्था मुख्यतया विटामिन "सी" की कमी के कारण उत्पन्न होती है। विशेषकर बच्चों व वृद्धों में।

8 आँखों के उपद्रव—इनमें विटामिन "ए" की कमी के कारण उत्पन्न होने वाली अवस्थाएँ विशेष रूप से विचारणीय हैं, क्योंकि इन अवस्थाओं के उत्पन्न होने और उपयुक्त उपचार न होने की स्थिति में अधिकांश व्यक्ति अन्धे हो जाते हैं। इन परिस्थितियों का वर्णन हम इसी अध्याय में पहले ही कर चुके हैं। फिर भी सुविधा के लिये इनकी पुनरावृत्ति कर देना अनुचित न होगा। यह अवस्थाएँ हैं—(1) रतौंधी (2) बीटोटस (3) जीरोसिस (4) केरेटो मलेशिया।

9 रक्तहीनता—रक्तहीनता की अवस्था वैसे तो अनेक कारणों से या बीमारियों से हो जाती है पर हमें तो केवल पोषण सम्बन्धी रक्तहीनता पर ही विचार करना है। हमारे आहार में यदि आइरन, फोलासिन व कोबालामिन की कमी होती है और उन सहायक तत्वों की कमी होती है जो उत्प्रेरक का काम करते हैं, जैसे कोबाल्ट व कॉपर या आइरन के अवशोषण में सहायक होते हैं, जैसे विटामिन "सी"—तो रक्तहीनता की स्थिति, पैदा हो जाती है। महिलाओं को इन तत्वों की अधिक आवश्यकता होती है जिससे मासिक धर्म पर होने वाली रक्त क्षति की पूर्ति होती रहे। गर्भवती व धात्री माता को और अधिक मात्रा में इनकी आवश्यकता होती है। गर्भावस्था में 6 माह तक दूध पिलाने की अवधि तक

इह लगभग 900 मिली आइरन की आवश्यकता होती है क्योंकि 400 मिली आइरन तो बच्चा गर्भ में स्वयं ही लेता है। लगभग 325 मिली आयरन प्रसव के समय रक्तस्राव में निकल जाता है और 175 मिली बच्चे को 6 माह तक दूध पिलाने में खप जाता है। अतः गर्भावस्था में लगभग 2 मिली आइरन की अतिरिक्त आवश्यकता होती है जिसे उसे आइरन प्राप्त कराने वाले खाद्य पदार्थों से ही पूरा करना होता है।

रक्तहीनता के कारण व्यक्ति में अत्यधिक कमजोरी, थकावट व काम करने की अनिच्छा बनी रहती है। थोड़े से परिश्रम से दम फूलने लगता है, हृदय की धड़कन महसूस होने लगती है। उठते बैठते चक्कर आते है, सिर दर्द रहता है, नींद व भूख की कमी हो जाती है, चेहरा पीला पड़ जाता है, आखों के नीचे सूजन आ जाती है और हाथ पावों की ऊगलियों में सुई चुभने की सी शिकायत होने लगती है व पिण्डलियों में दर्द रहने लगता है। रक्तहीनता की स्थिति बनी रहती है तो अनेकानेक अन्य रोग भी आ घिरते है और उपयुक्त उपचार के अभाव में मृत्यु हो जाती है।

अधिपोषण--पोषण जब आवश्यकता से अधिक होता है तो शारीरिक स्थूलता बढती है, मोटापा पैदा होता है जो हमारे स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होता है। विकासशील देशों में जहा अधिकांश जनता अल्प पोषण की शिकार होती है वहा सम्पन्न देशों या सम्पन्न वर्ग के लोगों में अत्यधिक पोषण के कारण मोटापा उनके लिए एक समस्या बन जाती है। अधिक भोजन व भोजन में भी अधिक रसामय पदार्थ-घी मक्खन मलाई, चर्बीयुक्त मांस, मेवे आदि और अधिक कार्बोहाइड्रेट्स जिसने अधिकाधिक मिष्ठानयुक्त खाद्य पदार्थों का निरंतर प्रयोग मोटापा पैदा करते है। साथ ही साथ सम्पन्न वर्ग के लोगों मे शारीरिक परिश्रम की न्यूनता होती है उनका जीवन अधिकांश ऐशो आराम का होता है उन्हें वह सभी सुविधाएँ प्राप्य होती है। उनका जिनसे उन्हें अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता अतः उन्हें ऊर्जा उत्पन्न करने वाला होता है अतः आवश्यक ऊर्जा उत्पत्ति के बाद लाइपिड्स व कार्बोहाइड्रेटस चर्बी के रूप मे संग्रहित होकर मोटापा पैदा करते है। हमारे शारीरिक वजन का लगभग 12 प्रतिशत वसा का होता है जो यदि बढकर 20 प्रतिशत से अधिक हो जाय तो निश्चित ही वह मोटापा प्रकट करता है।

अत्यधिक पोषण से कुछ ऐसे ही कारण बन जाते हैं जिनसे मोटापा बनने लगता है जैसे अंतरिक ग्रंथियों की शिथिलता जिसमे थाइराइड पिट्यूटरी, एड्रिनल व आवरीज मुख्यतया है। यदि यह स्थिति पैदा होती है तो इसका स्वतन्त्र रूप में उपचार करना अनिवार्य हो जाता है।

मोटापा व्यथ म हमारे शरीर का बोझ बनता है। हम में अत्यधिक असुविधा पैदा करता है। उठने, बैठने, चलने, फिरने, दौड़ने या सहसा मुड़ने आदि में कठिनाई होती है। काम धन्धा फुर्ती से कर नहीं पाते। गर्मी के मौसम में पसीने के कारण हाल बेहाल हो जाता है। फुर्ती और चुस्ती के अभाव में बहुधा दुर्घटनाग्रस्त होते हैं, हाथ पैर की हड्डियां तुड़वा बैठते हैं। असमर्थता का अनुभव करते हैं। शरीर की स्थूलता अशोभनीयता के कारण मित्र वर्ग में मखौल का कारण बनते हैं। आन्तरिक अवयवों का कार्यभार बढ़ता है, जिससे हृदय पर व्यर्थ का बोझ बढ़ता है, रक्तचाप बढ़ता है, कोलेस्टेरोल की मात्रा बढ़ती है। रक्त धमनियों की रुग्णता बढ़ती है, मधुमेह, गुर्दे के रोग, पित्त, पथरी, गठिया और हृदय रोग पनपते हैं, अल्प आयु के आसार बढ़ते हैं और परिपक्व उम्र के पूर्व ही मृत्यु के ग्रास बनते हैं।

हृदय रोग— वसा युक्त अत्यधिक मात्रा में आहार लेने पर शरीर की धमनियों व शिराओं में कोलेस्ट्रोल जम जाने की प्रवृत्ति बन जाती है। जिसके कारण हृदय रोग का जन्म होता है। शरीर में जरूरत से अधिक वजन होने पर उसका सीधा असर हृदय पर पड़ता है और वह कमजोर हो जाता है। उच्च रक्त-चाप भी मोटे व्यक्तियों को अधिक होता है।

मधुमेह—मोटापा मधुमेह का रोग भी एक प्रमुख कारण माना जाता है। शरीर में चर्बी अधिक इकट्ठी होने से अग्नाशय की क्रिया शिथिल पड़ जाती है और वह शर्करा को ऊर्जा में परिवर्तित नहीं कर पाता और वह पेशाब के जरिए बाहर निकल जाता है। मधुमेह के निवारण के लिए मोटापा घटाना भी आवश्यक माना जाता है।

जोड़ों के दर्द—शरीर में चर्बी अधिक होने से शरीर के सभी जोड़ों पर अनावश्यक दबाव पड़ता है और इस कारण वहां आमवातीय दर्द शुरू हो जाते हैं। गठिया रोग का कारण भी मोटापा ही होता है।

पित्त, पथरी— जरूरत से अधिक भोजन करने पर आमाशय हाईड्रोक्लोरिक अम्ल अधिक बनाने लगता है। यह अम्ल अग्नाशय के आंतों को नुकसान पहुंचाते हैं। अधिक अम्ल के कारण अल्सर भी हो जाता है।

उम्र लिंग व ऊंचाई के अनुपात में हमारा कम से कम और अधिक से अधिक वजन कितना हो जो मोटापे के क्षेत्र में न आए इसका अनुमान हम पुस्तक के अन्त में तालिका नं 2 में दिए गए सांकेतिक वजन आंकड़ों से लगा पायेंगे।

पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में मोटापा अधिक होता है और वह भी प्रजनन अवधि में। पर कभी कभी महिलाओं का वजन रजोनिवृत्ति के बाद भी अधिकता से बढ़ने लगता है।

आवश्यकता से अधिक कैलोरीज शारीरिक परिश्रम के अभाव में अतिरि चर्बी बढाती है जिसका अनुपात होता है 9 कैलारीज पर 1 ग्राम अतिरिक्त च का बढना। इस अनुपात से यदि हम 100 कैलोरीज प्रतिदिन अधिक खाते सप्ताह मे हम 700—9 = 78 ग्राम अतिरिक्त चर्बी बढायेंगे और साल भर लगभग 9 पौण्ड। लेकिन इसी अनुपात से यदि हम कम कैलोरी वाली खुराक खाय साल भर म 9 पाण्ड वजन कम कर सकते है और यदि प्रतिदिन 1000 कलोरी कम काम मे लायें तो एक सप्ताह मे 7000 कैलोरी कम कर सकेंगे अर्थात् 78 ग्राम या लगभग ¼ पौंड वजन कम कर पायेंगे।

शारीरिक सौष्ठव की मान्यताए एव चयन—

जन्म के पश्चात बालक के विकास पर अनेक बातो का प्रभाव पडता है नीचे हम उन बातो का वणन करेंगे जो जन्म के पश्चात बालक के विकास प प्रभाव डालती हैं—

(क) पौष्टिक भोजन—पौष्टिक भोजन का बालक के विकास पर अ धिक प्रभाव पडता है। यदि उचित रूप से पौष्टिक भोजन बालक को नही मिल तब ऐसी अवस्था में न तो उसका मानसिक विकास ही होना सम्भव है और शारीरिक ही। जन्म लेने के पश्चात से ही बालक अत्यन्त क्रियाशील हो जाता है वह निरन्तर कुछ न कुछ क्रिया करता ही रहता है। अत शारीरिक क्रिया करने जो शक्ति का व्यय होता है, उसको पूरा करने के लिए पौष्टिक भोजन करना पर आवश्यक है। स्वास्थ्यप्रद भोजन से बालक का शारीरिक विकास उचित प्रका से होता है और भार, ऊँचाई तथा शरीर में भी वृद्धि होती है। पौष्टिक भोज लेने वाले वालक के वाल चमकीले, आँखें तेजयुक्त, दात मजबूत तथा शरार ह होता है।

(ख) घर का वातावरण—घर का वातावरण भी बालक के विकास प महत्वपूण प्रभाव डालता है। बालक का अधिकाश समय घर के अन्दर ही बीत है। यदि घर का वातावरण स्वास्थ्यप्रद तथा शुद्ध रहता है तो बालक का शारी रिक तथा मानसिक दोनो प्रकार का विकास उचित ढग से होता रहता है। बालक प्रकाशहीन गन्दे घरो म पलते है, उनका न तो शारीरिक विकास ही ठी हो पाता है और न मानसिक। अत बालक के समुचित विकास के लिए घर के वातावरण की ओर पूण रूप से ध्यान देना चाहिए। यथासम्भव घर को स शुद्ध वायु तथा प्रकाशयुक्त बनाना चाहिए।

(ग) विद्यालय का वातावरण—घर के वातावरण की भाँति विद्यालय वातावरण भी बालक के विकास पर प्रभाव डालता है। जिस कक्षा म बच्च बठता है, यदि उसम उचित रीति से प्रकाश का प्रबन्ध न हो, सीलन तथा

घुटने वाला वातावरण हो, तो बालक के शारीरिक तथा मानसिक विकास पर अत्यन्त बुरा प्रभाव पडेगा। प्रकाश के अभाव के कारण बालक की दृष्टि में अनेक दोष उत्पन्न हो जायेंगे। वायु का अभाव इसे फेफडा का रोगी बना देगा। इसी प्रकार खराब फर्नीचर से छात्रा को उठने-बैठने की अनुचित आदतें पड जाती है, जो उनकी हड्डियों में अनेक रोग उत्पन्न कर देती है। विद्यालयों में बालकों के मनोरंजन के लिए भी उचित प्रबन्ध होना चाहिए, जिससे उनके मानसिक विकास में किसी प्रकार की बाधा न पड़े। वास्तव में विद्यालय का अशुद्ध वातावरण बालक के विकास में बाधा का कार्य करता है।

(घ) अवकाश तथा विश्राम का प्रभाव—बालक को कार्य करने के पश्चात् अवकाश अवश्य मिलना चाहिए। कार्य के पश्चात् अवकाश मिल जाने से शरीर पुन शक्ति प्राप्त कर लेता है तथा नवीन स्फूर्ति आ जाती है। विद्यालय के अन्दर छात्रा को उचित समय के लिए अवकाश प्रदान किया जाय। समय चक्र विभाग का निर्माण इस ढंग से किया जाय कि छात्रों को पर्याप्त अवकाश तथा विश्राम मिल सके।

(च) विषयो की विभिन्नता का प्रभाव—एक प्रकार के नीरस विषय पढाने से भी छात्र के मानसिक विकास में बाधा आती है। जो अध्यापक अपने छात्रा को केवल परम्परागत विषय ही पढाता है, वह छात्रा के मानसिक विकास में बाधा उत्पन्न करने का कार्य करता है। अत परम्परागत विषयो के अतिरिक्त कला, संगीत आदि जैसे सरस विषयों को भी पढाया जाय। समय समय पर छात्रा को बाहर घूमने फिरने के लिए भी ले जाया जाय।

(छ) भौगोलिक स्थिति—जलवायु का बालक के विकास पर अत्यधिक प्रभाव पडता है। गर्म प्रदेशों में अनेक रोग फैला करते है। दूसरे गर्म प्रदेशो में अधिक गर्मी होने के कारण लोग अधिकतर आलसी होते है। ठण्डे प्रदेशों के निवासी गर्म प्रदेशों की अपेक्षा कहीं बलवान तथा परिश्रमी होते है।

(ज) पारिवारिक सख्या का प्रभाव—जिस परिवार मे बालकों की सख्या अत्यधिक होती है, वहा प्रत्येक बालक पर उचित रूप से ध्यान नही दिया जाता। मा बाप के लिए प्रत्येक बालक की आवश्यकताओं की पूर्ति करना कठिन हो जाता है। परिवार के सबसे छोटे बालकों पर विशेष तौर पर ध्यान नही दिया जाता है और न उन्हें विशेष स्नेह मिलता है। अत इस प्रकार बालकों का शारीरिक तथा मानसिक विकास अत्यन्त मन्द गति से होता है। बड़े परिवार की आर्थिक स्थिति भी अच्छी नही होती है।

(झ) माता पिता का आचरण—बालकों पर उनके माता पिता का विशेष प्रभाव पडता है। यदि माता पिता स्वास्थ्य सम्बन्धी आदतों के अभ्यस्त हैं तो बालक भी उनका अनुकरण करेंगे। मा-बाप का सफाई पर विशेष ध्यान देना

चाहिए, क्योंकि स्वच्छता बालकों को स्वस्थ रहने की प्रेरणा देता है। माता पिता को अपना आचरण शुद्ध रखना चाहिए।

वास्तव में बालक के विकास पर वंशानुक्रम और वातावरण—दोनों का प्रभाव पड़ता है। दोनों में से किसको अधिक महत्त्व दिया जाय, यह कहना कठिन है। फिर भी अध्यापक अभिभावक दोनों का कर्त्तव्य है कि वे बालक के लिए शुद्ध तथा पवित्र वातावरण उपस्थित करने का प्रयत्न करें, क्योंकि वातावरण में परिवर्तन लाना मानव के लिए वंशानुक्रम की अपेक्षा सरल है।

भोजन पकाने की विधि जिसमें आवश्यक तत्त्व नष्ट न हों—

खाद्य पदार्थों के बारे में हम यह भी जान लेना आवश्यक है कि विभिन्न तरीकों से पकाये जाने पर या धोने, छिलने, भिगोने आदि की प्रक्रियाओं का इन पर क्या प्रभाव पड़ता है। यह ठीक है कि कुछ खाद्य पदार्थ हम बिना पकाये ही कच्चे काम में ला सकते हैं जैसे फल, सलाद, सब्जियाँ गाजर, मूली, प्याज, टमाटर, चुकन्दर हरी मिर्च, धनिया, पोदीना, आँवला (चटनी के रूप में) फल व मेवे, मूंगफली, अंकुर निकले अनाज आदि। पर अन्य खाद्य सामग्री को किसी न किसी रूप में पकाना ही पड़ता है चाहे उन्हें उबालें, सेकें, तलें या ... में बनाएँ। पकाने की इन विधियों में हम सामान्य ताप का या तो सीधा प्रयोग करते हैं जैसे रोटी, बाटी, आलू, शकरकंदी, मूंगफली, चना आदि का ... या जल के माध्यम से सामान्य स्टीम, प्रेशर स्टीम या फिर खौलते पानी का ... का प्रयोग करते हैं। शुष्क ताप का भाँति भाँति के ओवन के माध्यम से भी प्र... किया जाता है जिसमें खाद्य पदार्थों को बेक किया जाता है। उबलते पानी या उसकी स्टीम में चावल, सब्जियाँ, साबुत, अनाज, दालें आदि पकाने पर ... अधिक समय तक देना पड़ता है जबकि प्रेशर के अधिक ताप पर थोड़े समय में ही यह पदार्थ जल्दी पक जाते हैं अतः प्रेशर ताप पर खाद्य पदार्थों के पोषक तत्वों का अधिक ह्रास नहीं होता है। तलने की विधि में भी घी तेल आदि के ... 350 से 400 एफ डिग्री के ऊँचे ताप पर अत्यन्त ही थोड़े समय में खाद्य पदार्थ को तल दिया जाता है जिससे भी पोषक तत्वों की अधिक क्षति नहीं पहुँचती। भोजन पकाने का कार्य चाहे किसी भी विधि से किया जाय उसमें खाद्य पदार्थों पर अनुकूल व प्रतिकूल प्रभाव पड़ता ही है।

अनुकूल प्रभाव—1 खाद्य पदार्थों की परतों में कोमलता आ जाती है। मांस व सब्जियों के रेशे मुलायम पड़ जाते हैं जिससे इनके चबाने में आसानी हो जाती है। अनाज व दालों के दाने फूल कर नरम पड़ जाते हैं, उनकी झिल्ली ... जाती है और उनमें विद्यमान स्टार्च स्कंदित हो जाता है जिससे उसका पाचन आसानी से हो पाता है। अण्डे का प्रोटीन भी स्कंदित होकर आसानी से पचने योग्य हो जाता है।

2 प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट व बसा के कण एसी स्थिति मे परिवर्तित हो जाते है कि उन पर पाचन रसो व विभिन्न एन्जाइम्स का अच्छा असर हो पाता है और यह आसानी से अंतिम अशो म विभक्त होकर अवशोषण योग्य हो जाते हैं।

3 साधारणतया सामान्य पाक विधि मे पोषक तत्वो का अधिक ह्रास नही होता यदि सामग्री को अधिक काटा, छीला धोया या उबाला न जाय और उबले पानी को फेंका न जाय। अधिक समय तक अधिक ताप विटामिनो का नाश अवश्य करता है। सामान्य पाक विधि म विटामिन 'सी' व कुछ अश तक विटामिन "बी वर्ग" अवश्य नष्ट होते हैं जिन्हे हम सलाद, कच्ची सब्जियाँ व फलो से प्राप्त कर सकते हैं। तलने म चू कि थोडा समय ही लगता है अत इस विधि से भी पोषक तत्वो का अधिक ह्रास नही होता पर खाद्य पदार्थ गरिष्ट अवश्य बन जाते हैं जिनके पाचन म अधिक समय लगता है। सब्जियो म की करोटीन व दूध, कलेजी, अण्डे आदि म विटामिन ए सामान्य पाक विधि से नष्ट नही होत।

4 खाद्य पदार्थ अधिक आकर्षक हो जाते है। रग रूप म निखार आते हैं। स्वादिष्ट व सुगन्धित हो जाते हैं और अधिक रुचिकर व क्षुधावर्धक हो जाते है।

5 हानिकारक जीवाणुओ और परजीवियो का नाश हो जाता है जिसस भोजन के माध्यम स फलने वाले रोग अधिकाश हो नही पाते।

6 कई खाद्य पदार्थों म से एसे विरोधी तत्व होत है जो प्रोटीन व उनके एमाइनो एसिड्स को बाधे रखते है जिससे उनका पोषण म समुचित उपयोग हो नही पाता पर पकाने पर यह विरोधी तत्व नष्ट हो जाते हैं जिसस प्रोटीन मय पोषक तत्वों की उपयोगिता बढ जाती है।

प्रतिकूल प्रभाव—

1 अनाज व दालो के परिस्तर मे जो विटामिन थायमिन, नियासीन पन्टोथेनिक एसिड आदि होते है और जो खनिज पदार्थ मिलते हैं उनका ससाधन प्रक्रियाओ के कारण व्यर्थ म अपव्यय हो जाता है।

2 शाक सब्जियो को आवश्यकता से अधिक छीलने, धोने, काटने या काटने के बाद अधिक देर तक पानी म पडे रखने पर खनिज पदार्थ व विटामिन "बी ग्रुप" व "सी" का ह्रास होता है।

3 तेज आँच पर सब्जियाँ व चावल आदि को खुले म पकाने पर हम विटामिन "बी वर्ग" व सी का नाश करत है और कुछ अशो मे उनके प्रोटीन का भी।

4 अधिक समय तक तेज आँच पर खुले म उबालने या पकाने पर पुष एमाइना एसिडस, कार्बोहाइड्रेट–विशेषकर शकराश्रा की विद्यमानता म, क्लिष्ट यौगिक पदाथ बन जाते हैं। जिन पर एन्जाइम्स का पूरा असर हो नहीं पाता और वह उपयोग के योग्य नही रहते।

5 तलने पर हरी सब्जियो म पाया जाने वाला विटामिन "ए" का पूर्व गामी वी केरोटीन वसा विलय हाने के कारण तेल घी आदि मे घुलकर नष्ट हो जाता है।

पाक विधि मे पोषक तत्वो का अपव्यय अधिकाधिक कसे रोकें

1 हाथ की चक्की का पिसा आटा चाकर सहित काम म लावे।
2 हाथ का कुटा चावल या उसना चावल ही काम म लावें।
3 छिलका सहित दालें काम मे लावें।
4 चावल, दाल व सब्जिया को अधिक न धायें, न अधिक छीलें और न ही अधिक देर तक अधिक पानी म उबालें।
5 अतिरिक्त उबले पानी को न फेकें। रसा या सूप म काम मे लायें
6 दाल, सब्जिया आदि म सोडा या बेकड पाउडर काम मे न लायें इससे थायमिन का नाश होता है।
7 सब्जियो के बडे बडे टुकडे ही काटें और काटने के बाद अधिक देर तक खुले मे न पडा रहने दें जिससे आक्सीकरण द्वारा पोषक तत्वा का ह्रास न हो।
8 सब्जियो को खोलते ही पानी म डालकर उबालना अधिक हितकर होता है।
9 दाल, सब्जिया, मास आदि खुले पात्रो मे न पकावें, ढक्कनदार पात्र ही काम मे लावें। प्रेशर कुकर अधिक लाभदायक होता है।

इकाई—16

10 नागरिक सुरक्षा नियमों की जानकारी, आकस्मिक दुर्घटनाओ मे कमी किये जाने वाले प्रयास और जनसाधारण मे सुरक्षा भावना उत्पन्न करने हेतु प्रयास

(क) नागरिक सुरक्षा

देश मे कभी भी आपातकालीन स्थिति पैदा हो सकती है । ऐसी स्थिति म मुख्य रूप से स्वास्थ्यविज्ञान-अध्यापक तथा सामान्य रूप से सभी अध्यापको का कर्त्तव्य भिन्न हो जाता है । उसको सामान्य पाठ्यक्रम पढ़ाने के अतिरिक्त बालको म कुछ ऐसी भावनाओ को पैदा करना होता है, जिससे वे अपने तथा अपने घर और पास-पडोस के व्यक्तियो की रक्षा नागरिक सुरक्षा किसी भी प्रकार के खतरे से कर सकें । यदि प्रत्येक विद्यालय इस प्रकार की व्यवस्था करे तो उससे पर्याप्त मात्रा म बालको तथा समाज को लाभ हो सकता है ।

जैसा मनोविज्ञान के सिद्धान्तो से स्पष्ट है कि अध्यापक का कर्त्तव्य बालको की अभिवृत्ति (attitudes), मूल्यो (values) तथा चरित्र (character), जो व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं, उनके विकास से होता है । परन्तु आधुनिक युग मे यह केवल सिद्धान्त (theory) रूप मे न रह कर प्रयोगात्मक रूप मे होना अनिवार्य हो गया है । शिक्षा के उद्देश्य तथा विधियो का प्रयोग कक्षा, खेल तथा कक्षा के बाहर सभी स्थानो म होना चाहिए ।

अभिवृत्तिया, स्थायीभाव तथा उपयोगिताए

आगे कुछ अभिवृत्तियाँ, स्थायीभाव (Sentiments) तथा मूल्यो (values) का उल्लेख है, जिन पर विद्यालय को विशेष ध्यान देना चाहिए

(1) अपने देश के प्रति प्रेम भावना--जब समस्त देश पर किसी प्रकार का खतरा हो तो सभी देशवासियों में एक ही भावना जागृत होनी चाहिए। इस द्वारा केवल खतरे का सामना करना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि देश को महत्त्वपूर्ण कार्यों में संगठित भी करना होता है। देश की सेवा करना न केवल त्याग है, बल्कि देश सेवा करना एक महान कार्य है जिसका अवसर प्रत्येक व्यक्ति को नहीं मिलता है। देश के प्रति प्रेम सदैव स्थिर रूप में होना चाहिए। यह एक प्रकार की अस्थायी जागृति नहीं है अपितु सदैव विद्यमान होना चाहिए। बालकों में इस प्रकार की जागृति सदैव रहनी चाहिए जिससे वे अपने दैनिक कार्यों, विचारों तथा भावों में इस स्थायीभाव को अग्र रूप दें। इसको सुन्दर बनाने में इतिहास का अध्ययन सहायक हो सकता है।

(2) जनतन्त्रीय जीवन में विश्वास--बालकों को जनतन्त्रीय जीवन का स्पष्ट तथा सही ज्ञान होना चाहिए। प्रत्येक नागरिक का प्रजातन्त्रीय व्यवस्था के प्रति क्या कर्त्तव्य होना चाहिए जिससे वह स्थायी रह सके। जनतन्त्रीय जीवन से तात्पर्य यह है कि दूसरे के विश्वास तथा विचारों का आदर करना और वार्तालाप द्वारा अपनी बात दूसरे के सम्मुख रखना भी विद्यालय के जीवन से बालकों में पैदा की जा सकती है। इस कार्य में प्रत्येक विद्यालय अपना विशेष योगदान रखता है। अध्यापक को कक्षा, खेल के मैदान तथा विद्यालय के अन्य कार्यों में बालकों में इस प्रकार की भावनाएँ पैदा करना होता है जिनसे वे आपातकालीन स्थिति में घबरा न जायें बल्कि धैर्य से काम करें। इसके लिए अध्यापक को भी स्वयं अपने विचार, अभिवृत्ति तथा भावनाओं को उसी रूप में बनाए रखने चाहिए।

(3) स्पष्ट तथा रचनात्मक ढंग से सोचना--दूसरों को सही ढंग पर सोचने तथा जीवन व्यतीत करने के लिए स्वयं अपने विचार तथा विश्वास को सही ढंग पर रखने चाहिए।

प्रजातन्त्र में प्रत्येक नागरिक को स्पष्ट और तर्क रूप से सोचने की आवश्यकता होती है। तर्क रूप में सोचना लाभप्रद तथा उन्नति की ओर अग्रसर करता है। स्पष्ट तथा ठीक सोचना एक प्रकार का चातुर्य (skill) है जो अभ्यास से आता है। इसको विषयों के सीखने से अलग नहीं किया जा सकता है। अध्यापक को इसकी बालकों में उपयोग करने की क्षमता पैदा करना होना चाहिए जिससे उनमें झूठे प्रचार, भय तथा घृणा आदि पैदा न हो सकें और वे सही ढंग पर किसी भी स्थिति में सोचने, समझने तथा निष्कर्ष निकालने की क्षमता रखें।

(4) नेतृत्व का स्वीकरण--विद्यालयों में हम बालकों में नेतृत्व करने की योग्यता पर विशेष ध्यान नहीं रखते हैं। हमारा दृष्टिकोण अभी भी ऐसा है कि हम बालकों को सक्रिय नहीं होने देते, जिससे उनमें किसी भी प्रकार की राय देने की आदत नहीं पड़ती है। बालकों को ऐसा अवसर देना चाहिए कि वे

किसी भी स्थिति में सक्रिय रहें तथा मौलिकता (originality) दिखा सकें। बालकों को समय-समय पर सुझाव देने, विचार रखने तथा योजनाएं बनाने का मौका मिलता रहना चाहिए। उनको किसी भी काय करने का उत्तरदायित्व देना चाहिए तथा अपने विचार और योजनाओं को काय रूप मे लाने का अवसर भी देना चाहिए।

(5) काम करने की इच्छा—अब वह समय आ गया है जब हमको स्वय सीखने तथा नवीन चातुय (skill) सिखाने तथा ज्ञान देने को तैयार रहना चाहिए। इससे तात्पय यह है कि हमको परिश्रम करते रहना चाहिए। इससे बढकर कोई भी व्यवहार हमारा न हो केवल हमारी परिश्रम करने की आदत पडे।

(6) क्षमता के अनुसार अधिक से अधिक काय करना—हमको चाहिए कि अपनी क्षमता के अनुसार जितना हो सके, उतना काय भली प्रकार करने की आदत बालकों मे पैदा करें। अध्यापक को इसके लिए स्वय अपनी सीमा को ध्यान मे रखना होता है और जितना अधिक से अधिक हो सके अपने समय, शक्ति तथा विचार को उच्चतम काय करने म प्रयोग करना चाहिए।

(7) सहकारिता की भावना रखना—चाहे बालक कितना भी कुशल, कत्त व्य-परायण तथा परिश्रमी हो, वह तभी सफल हो सकता है जब वह मिलजुल कर काय करे। एक सफल सैनिक के लिए सगठन नितात आवश्यक है। उसी प्रकार हमको अपनी आवश्यकता को वग या समूह की आवश्यकता के सम्मुख कम समझना चाहिए। इसमे अपनी आवश्यकता बुरा रूप धारण नहीं कर सकती है। इसके परिणामस्वरूप प्रत्येक नागरिक मे दूसरे को समझने तथा उसके पीछे चलने और कभी भी नेतृत्व करने की क्षमता पैदा होती है।

सहकारिता सम्बन्धी विचार

निम्न बातो पर हम सबको ध्यान देना है —

(1) हम कभी भी उस काय को करने के लिए 'न' नहीं कहेंगे जिसको हम कर सकते हैं।

(2) यदि कोई व्यक्ति अपने विचार रखता है और हमारी त्रुटियो को हमको बतलाता है तो हम इस बात का बुरा नहीं मानेंगे।

(3) हम प्रत्येक स्थिति को अन्य व्यक्तियो के दृष्टिकोण से समझने की कोशिश करेंगे ताकि हमको यह प्रतीत हो जाए कि अमुक व्यक्ति क्या इस प्रकार सोच रहा है।

(4) हम किसी भी व्यक्ति की दूसरे से शिकायत न करके स्वय उसी व्यक्ति को उसकी भूल के बारे म सूचना देंगे।

विद्यालय को सुयोग्य नागरिक निर्माण हेतु निम्न बातो पर विशेष ध्यान देना चाहिए —

(अ) शारीरिक तत्परता (Physical Readiness)

(1) बालको के शारीरिक विकास पर विद्यालय का विशेष ध्यान होना चाहिए। इसके अन्तगत बालको के बैठने, खड़े होने के आसन, कक्षा म प्रकाश तथा हवा की व्यवस्था आदि सम्मिलित हैं।

(2) स्वच्छ रहने तथा स्वच्छ आदतो पर प्रयोगात्मक अध्यापन की व्यवस्था करना।

(3) बालको को कक्षा तथा उसके बाहर स्वच्छ रहने की प्रेरणा देना तथा उसके लिए उपयुक्त व्यवस्था करना।

(4) स्वास्थ्य समस्याओ पर व्यक्तिगत सलाह देना।

(5) बालको को व्यायाम तथा शारीरिक प्रशिक्षण की ओर रुचि जाग्रत करना।

(ब) सामाजिक तत्परता (Social Readiness)

(1) बालको म सामूहिक काय करने की प्रवृत्ति जाग्रत करना।

(2) उनमे सामूहिक कार्यों मे भाग लेने की क्षमता पैदा करना।

(3) बालको को सामाजिक सेवा सम्बन्धी कार्यों मे भाग लेने का अवसर प्रदान करना।

(4) बालको को सुरक्षा सम्बन्धी प्रशिक्षण का आयोजन विद्यालय में करना।

(5) उनको प्राथमिक चिकित्सा (first aid treatment) सम्बन्धी शिक्षा देना।

(स) मानसिक तत्परता (Mental Readiness)

(1) इस प्रकार की सूचनाओ का ब्यौरा तैयार करना जिससे बालक भिन्न भिन्न क्षेत्रो मे आधुनिक विकास को समझ सके।

(2) बालको मे समाचार पत्रो को तक रूप से समझने की शिक्षा पर बल देना।

(3) बालको को समूह मे सामान्य समस्याओ के बारे म विचार विनिमय करने की शिक्षा की व्यवस्था करना।

(द) चातुर्य सम्बन्धी तत्परता (Skill Readiness)

(1) बालको मे वायुमण्डल तथा मानचित्र अध्ययन करने की क्षमता पैदा करना।

(2) बालकों को वस्तुओं की गति (speed), ऊँचाई तथा दिशा (direction) जानने का ज्ञान देना।

(3) उनको साधारण विद्युत के उपकरण बनाने तथा प्रयोग करने का ज्ञान देना।

(4) उनको आग बुझाने के उपकरण, साधारण पम्प, जलने के उपकरणों का उपयोग, आग बुझाने की विधि, भोजन तथा वस्त्र सुरक्षित रखने की विधि का ज्ञान देना।

11 प्राथमिक उपचार

(क) प्राथमिक चिकित्सा

प्राथमिक चिकित्सा के उद्देश्य

अचानक दुघटनाग्रस्त अथवा अचानक बीमार पड जाने वाले रोगी को ऐसी अस्थायी सहायता पहुँचाना है कि डॉक्टर की देख रेख म आने तक अथवा अस्पताल पहुँचने तक उस रोगी का जीवन सुरक्षित रह, रोगमुक्त होने म सहायता मिले, उसकी हालत खराब न हो और उसे अपेक्षाकृत आराम मिले।

फस्ट एड पद्धति को चलाने वाले डॉ इसमार्च थे (सन 1823-1908) वे जमनी की सेना मे सर्वोच्च सर्जन रहे। अपने समय मे डॉ इसमाच को सेना, सम्बन्धी मजरी तथा अस्पताल के प्रबन्ध म रुतबा हासिल था। उनकी चलाई हुई फस्ट एड पद्धति बहुत लोक कल्याणकारी साबित हुई है।

प्राथमिक सेवा का विभाग—प्राथमिक चिकित्सा का एक विभाग विद्यालय मे स्थापित किया जाय जिसके कार्य आदि की देखभाल के लिए एक योग्य अध्यापक की नियुक्ति होनी चाहिए जो प्राथमिक चिकित्सा का पर्याप्त ज्ञान रखता हो। प्राथमिक चिकित्सा म प्रयोग आने वाले निम्न सामान को प्राथमिक चिकित्सा विभाग म मँगवाकर रखा जाय—

प्राथमिक बाक्स को तैयार करना

(1) तिकोन आकार की पट्टिया, इनका प्रयोग घावो तथा हड्डी टूटने पर किया जाता है।

(2) खपच्चिया इनका प्रयोग हड्डी टूटने पर किया जाता ह।

(3) पर्याप्त मात्रा म स्वच्छ रुई।

(4) पैड्स।

(5) आलपिन तथा सेफ्टीपिन।

(6) कैंची।

(7) घाव पर बाँधने की पट्टियाँ या पैडस।

(8) फीता।

(9) टूर्नीकेट।

उपर्युक्त सामान के अतिरिक्त कुछ दवाइयों का होना परम आवश्यक है, जैसे—

(1) टिंचर आयोडीन
(2) लाल दवा
(3) सोडा-बाई कार्ब
(4) स्प्रिट
(5) पीली दवा
(6) नमक
(7) जैतून का तेल
(8) बर्नाल
(9) डिटाल।

(1) मोच

फुटबाल या दौड़ते भागते समय हड्डी के जोड़ा पर अचानक झटका लग जाने से मोच आ जाती है। मोच आने के कारण जोड़ों के चारों ओर के अस्थि-बन्धनों का खिंच जाना या टूट जाना स्वाभाविक है।

मोच के लक्षण—जिस स्थान पर मोच आती है वहाँ पर अत्यधिक पीड़ा होती है। सूजन अत्यधिक आ जाती है।

उपचार—(1) जिस स्थान पर मोच आई हो, उस स्थान पर जल की शीतल पट्टी का उपयोग किया जाय। अफीम का लेप भी लाभ पहुँचाता है।

(2) कड़वे तेल को गर्म करके मालिश करने से विशेष लाभ होता है।

(3) जिस अंग में मोच आई हो, उस अंग को पूर्ण विश्राम दिया जाय।

(4) गर्म पानी से सेंकने से भी लाभ होता है।

(2) अस्थि भंग (हड्डी का टूटना)

किसी गहरे आघात के कारण प्रायः अस्थि भंग हो जाया करती है। अस्थि के पास वाले तन्तुओं की दशा के विचार से अस्थि भंग के निम्न भेद हैं—

(अ)—(1) विषम अस्थि भंग—इसमें अस्थि भंग के साथ-साथ घाव भी हो जाता है। इसमें अस्थि अपने स्थान से हट जाती है।

(2) सामान्य अस्थि भंग—जब अस्थि बिना किसी घाव के टूटती है तो उसे सामान्य अस्थि भंग कहते हैं।

(3) जटिल अस्थि भंग—सामान्य अस्थि भंग लापरवाही के कारण या दुर्घटना से शरीर के किसी कोमल अंग को घायल कर देता है तो उसे हम जटिल अस्थि भंग कहते हैं। उदाहरण के लिए, पसली की अस्थि भंग होकर फेफड़े में घुस जाय। अस्थि की दशा के विचार से अस्थि भंग के निम्न भेद हैं—

(1) कच्ची टूट—छोटे बालकों की अस्थि सरलता से नहीं टूटती, लचक कर या चटक कर रह जाती है। इस प्रकार की टूट को कच्ची टूट कहते हैं।

(2) बहुखण्ड टूट—जब कभी हड्डी टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो जाती है, तो उसे बहुखण्ड टूट कहते हैं।

अस्थि भग के लक्षण—(1) अस्थि भग का प्रमुख लक्षण दद का ताव्र स उठना है।

(2) जिस अग म चाट लगती है उसे हिलाने डुलाने की शक्ति न रहनी है।

(3) टूट हुए स्थान म किरकिरान की आवाज आती है।

(4) वह स्थान सूज जाता है और अस्थि उभर आती है।

(5) घायल अग का वास्तविक स्थिति म न रहना।

अस्थि भग के उपचार के सामान्य नियम—(1) अस्थि भग के साथ-साथ यदि रक्त भी वह रहा है तो सवप्रथम रक्त को वन्द करने का प्रयत्न किया जाय। रक्त को बन्द न करने म शरीर म दुवलता आ जाती है।

(2) चोट लगने के कारण अस्थि भग होने पर उस अग को हिलाया डुलाया न जाय, नहीं तो सामान्य अस्थि भग भी जटिल अस्थि भग में बदल जायगा।

(3) यथासम्भव अस्थि की टूट का उपचार उसी स्थल पर किया जाय जहा पर कि अस्थि टूटी है।

(4) घायल का पूण विश्राम दिया जाय।

(5) टूटी अस्थि को बाधने के लिए स्पिलिन्टस का प्रयोग करते समय इस बात का ध्यान रहे कि पट्टियो म जो गाठ बाधी जाय, वह रीफ-गाठ हो।

(6) शीतकाल म यथासम्भव घायल का गम रखा जाय, नहीं तो सर्दी का सदमा लगने का भय रहता है।

(7) घायल की घबराहट को सात्वना भरे शब्दा से दूर किया जाय।

(8) शीघ्र से शीघ्र डाक्टर को सूचना देनी चाहिए।

अस्थि का उतर जाना कभी कभी जोड पर से अस्थि उतर जाती है परिणामस्वरूप जोडो म तीव्र पीडा का अनुभव होता है। जिस जोड पर की अस्थि उतर जाती है, वह भाग सूज जाता है।

सामान्यत घुटने, टखने कन्धे आदि की अस्थियाँ उतर आती हैं। जिस जगह की अस्थि उतरी हो, उस भली प्रकार सेंकना चाहिए। यदि सेंकने से कोई विशेष लाभ न हो, तो डाक्टर स सलाह ली जाय।

(ब) जाघ की हडडी टूटना—प्राय खेलने से बालको की जाघ की हड्डी टूटने के निम्न लक्षण होते है—

(1) टूट के स्थान पर दद होता है।

(2) सूजन आ जाती है।

(3) टूटे भाग को हिलाने से कर कर या टक टक की आवाज आती है।

(4) जाघ को हिलाने डुलाने मे कष्ट होता है।

(5) अस्थियो म बडौलपन आ जाता है।

उपचार—सुविधानुसार पैर को खीचकर दूसरे पैर तक लाया जाय। यदि पैर खीचने मे दद होता है तो डाक्टर को बुलाया जाय। यदि टूटी जाघ दूसरे पैर की सीध म आ जाय तो पट्टी द्वारा खपच्ची बाध दी जाय। टूटी हड्डी को इधर उधर न हिलाया जाय।

(3) रक्त-स्राव (खून का बहना)—

शरीर मे खरोच व चोट लग जाने से रक्त बहने लगता है। यह रक्त-केशिका, धमनी तथा शिरा नाम की नलिकाओ के कट जाने से बहता है।

(i) धमनी का रक्त स्राव—धमनी का रक्त चमकीला लाल होता है। जिस समय धमनी से रक्त निकलता है, तो वह उछलता हुआ निकलता है, यही इसकी विशेष पहचान है। इस रक्त का बहाव सदा हृदय की विपरीत दिशा मे होता है।

उपचार—धमनी के रक्तस्राव का तुरन्त उपचार करना चाहिए। इसको रोकना अत्यन्त कठिन है। यदि घाव हल्का है तो उस पर मजबूती से कपडा बाध देने स प्राय रक्त बन्द हो जाता है।

यदि रक्त का बहाव अत्यन्त तीव्रता के साथ है और वह कपडा बाधने से भी नही रुकता, तब ऐसी दशा म रक्त बहने वाले स्थान के पास बहने वाले दबाव के स्थल को दबाया जाय। दबाव अँगूठे के द्वारा डाला जा सकता है और आवश्यकता पडने पर टरनीकेट का भी प्रयोग किया जा सकता है। रक्त बहने वाले अग को ऊपर उठा देना चाहिए।

(ii) शिरा का रक्त स्राव—शिरा मे बहता हुआ रक्त नीलापन लिए गहरे लाल रग का होता है। इसका बहाव हृदय की ओर धीरे धीरे होता है। परन्तु यह एक बधी हुई धार मे बहता है।

उपचार—(1) लाल दवा मे या किसी कीटाणु नाशक दवा के घोल म कपडा भिगोकर, रक्त बहते स्थान पर रखकर उस पर कसकर पट्टी बाध देनी चाहिए।

(2) घायल अग पर हृदय की विपरीत दिशा म कसकर टरनीक्वेट बाधने से रक्त स्राव तुरन्त बन्द हो जाता है।

(3) घायल अग को सीधा कर देना चाहिए।

(iii) केशकीय रक्त स्राव—इसम रक्त अत्यन्त मन्द गति से बहता है। इस रक्त स्राव मे किसी प्रकार के भय की आवश्यकता नहीं। जहाँ रक्त बह रहा

है, उस स्थान को दबाकर दबा दिया जाय। स्वच्छ पट्टी को पानी म भिगाकर रख कर बाधने से रक्त का बहना बन्द हो जाता है।

(iv) नाक का रक्त स्राव—गर्मी के कारण या नाक म चोट लगने के कारण प्राय नाक से रक्त बहने लगता है।

उपचार—कमरे की खुली खिड़की के पास कुर्सी पर बालक को बठा दिया जाय। सिर को पीछे की ओर झुका देना चाहिए। हाथों को सिर के ऊपर उठा दिया जाय, जिससे सिर की ओर रक्त प्रवाह की गति अत्यन्त मन्द रहे। नाक पर या गर्दन के पीछे शीतल जल म कपडा भिगोकर रखना चाहिए। पैरों को गर्म पानी म डुबा दिया जाय। गर्दन और छाती पर के कपडों को ढीला कर दिया जाय। बालक को मुख से सांस लेने को कहा जाय। नाक से रक्त बहने की दशा में छींकना नहीं चाहिए, नहीं तो रक्त तीव्रता के साथ बहने लगेगा।

(4) जलना और झुलसना—

सूखी गर्मी से जलने को 'जलना' कहते हैं और नम गर्मी से जलने को 'झुलसना' कहते हैं। दोनों प्रकार के जलने का उपचार एक सा ही है।

उपचार—जलने वाले घायल व्यक्ति का इलाज अत्यन्त सावधानी के साथ किया जाय। जो व्यक्ति जल गया हो, उसके प्रति निम्न बातें ध्यान म अवश्य रखी जायें—

(1) जले अंग पर यदि कोई कपडा चिपक गया हो तो उसे अत्यन्त सावधानी से हटा दिया जाय। यदि कपडा बुरी तरह चिपक गया हो तो आस-पास के कपडे को कैंची से काटकर नारियल का तेल लगा दिया जाय।

(2) यदि शरीर पर फफोले पड गये हो तो उनको भूलकर भी नहीं फोड़ा जाय।

(3) घावों पर पानी नहीं लगने देना चाहिए।

(4) जले घावों पर सोडा बाइकार्बोनेट के घोल मे भीगा कपडा रख जाए। टैनिक, एसिड, जेली, आयोडिक्स मरहम घावों पर लगाये जा सकते हैं।

(5) घावों को गर्द या धूल से बचाने के लिए साफ रूई से ढककर रखा जाय।

(6) जलने से सदमा पहुँचने का अत्यधिक भय रहता है। रोगी का चेहरा पीला पड जाता है, वह शीत का अनुभव करता है, अत घायल को शीत से बचाने के लिए कम्बल से ढक कर रखा जाए। पीने के लिए चाय या कॉफी दी जानी चाहिए।

(5) घाव या चोट—

खेल कूद तथा दौड भाग म प्राय घाव हो जाया करते हैं।

उपचार - शरीर के जिस अंग में घाव लगा हो, उस भाग को पूर्णतया स्वच्छ रखा जाय। यदि घाव पर धूल या गन्दगी जम गई तो उसके विषाक्त होने की सम्भावना रहती है। घाव गहरा है और उससे रक्त तीव्रता के साथ बह रहा है तो सर्वप्रथम बहते हुए रक्त को रोका जाए। घाव को कार्बोलिक ऐसिड के घोल से धोकर उस पर टिंचर आयोडीन लगा देनी चाहिए। टिंचर की जगह स्प्रिट का भी प्रयोग किया जा सकता है।

यदि घाव में कोई वस्तु घुस गई हो तो उस वस्तु को अत्यन्त सावधानी के साथ निकाल दिया जाए।

(6) पानी में डूबने पर -

नदी या तालाब में बालक प्राय डूब जाया करते हैं। आजकल विद्यालयों में तैरने के तालाब होते हैं, जिनमें बालक असावधानी के कारण डूब जाया करते हैं। डूबने की दशा में बालक के पेट में पानी भर जाता है, जिससे श्वास क्रिया में बाधा हो जाती है और व्यक्ति अचेतन हो जाता है।

उपचार—डूबे हुए व्यक्ति के वस्त्र को उतार देने चाहिए। रोगी को पेट के बल लिटाकर पीठ को धीरे धीरे दबाया जाय जिससे पेट का समस्त पानी बाहर निकल जाय।

श्वास चलाने के लिए कृत्रिम श्वास का प्रबन्ध किया जाए। जब श्वास भली प्रकार से चलने लगे तो रोगी को गर्म रखने के लिए कम्बल में लपेट देना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर गर्म पानी की थैलियों का उपयोग किया जाय। गर्म चाय या कॉफी रोगी को देनी चाहिए।

(7) बेहोशी (मूर्छा आना)—

बेहोशी का कारण मस्तिष्क में रक्त का अभाव प्रमुख रूप से होता है। कभी कभी हृदय अपना काम ठीक प्रकार से नहीं करता तो ऐसी दशा में रक्त का प्रवाह कम हो जाता है। अचानक किसी घटना का होना भी बेहोशी का कारण हो सकता है, जैसे असाधारण दुःख तथा असाधारण हर्ष या अत्यधिक भयभीत हो जाना आदि आदि। रक्त का अत्यधिक बह जाना भी बेहोशी का कारण हो जाता है।

लक्षण—(1) बेहोश होने से पूर्व रोगी एक प्रकार की बेचैनी का अनुभव करता है।

(2) चेहरा पीला पड़ जाता है।
(3) माथे पर पसीने की बूँदें झलक आती हैं।
(4) सिर में रक्त का प्रवाह कम हो जाता है।
(5) नाड़ी की गति मन्द पड़ जाती है।
(6) रोगी की साँस धीमे धीमे चलती है।
(7) चेतना लुप्त हो जाती है।

उपचार—सिर में अधिक मात्रा में रक्त पहुँचाने के लिए रोगी को भूमि

पर चित्त लिटाकर उसके पैर ऊपर कर दिए जायँ।

(2) कमरे की समस्त खिड़कियाँ तथा रोशनदान खोल दिए जायँ।

(3) जहाँ तक सम्भव हो, शुद्ध वायु का प्रबन्ध किया जाय।

(4) हाथ तथा पैरों को गर्म रखा जाए।

(5) चुस्त तथा कसे हुए कपड़ों को ढीला कर दिया जाय।

(6) नौसादर तथा चूने को मिलाकर सुँघाना विशेष लाभदायक होता है।

(7) यदि रक्त बह रहा है तो उसे तुरन्त बन्द किया जाय।

(8) रोगी को बेहोशी की दशा में कोई उत्तेजक पदार्थ न पिलायें।

(9) रोगी को अधिक से अधिक आराम दिया जाए।

(10) यदि रक्त अधिक न बहा हो तो उत्तेजक पदार्थ दिए जा सकते हैं।

(11) नमक का घोल बेहोशी की दशा में एक लाभकारी पेय है।

(ख) पट्टियों का उपयोग

किसी भी चोट खाए भाग पर पट्टी इसलिए बांधी जाती है कि –

(क) अगर वहाँ तख्तियां (स्प्लिण्ट) लगाई गई है तो वे यथास्थान रहें।

(ख) अगर जख्म का ड्रेसिंग किया गया है तो रुई और कपड़ा अपनी जगह से न हट सके और जख्म बाहरी धूल गर्द से सुरक्षित बना रहे।

(ग) चोट खाया हुआ भाग हिल डुल न सके।

(घ) चुटीले भाग की पेशियों और रक्त वाहिनियों को सहारा मिले।

(ङ) जख्म से बहता हुआ खून रुक सके। सूजन न बढ़े तथा मौजूदा सूजन घट सके।

(च) रोगी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में आसानी हो।

साधारण रूप से पट्टियाँ दो तरह की होती हैं—

(1) लपेटी जाने वाली पट्टियाँ

(2) किसी अंग को लटकाने वाली पट्टियां।

साधारण तथा चौड़ी पट्टियां—ये पट्टियाँ साफ बारीक और कुछ ढीले बुने हुए कपड़े की होनी चाहिए। बाजार में कैमिस्टों के यहाँ ये पट्टियाँ बनी बनाई मिलती हैं। लेकिन किसी दुर्घटना के समय वहाँ पट्टी मौजूद रहना जरूरी नहीं होता। अलबत्ता अगर उनके मिलने का स्थान समीप हो तो फौरन बनी बनाई पट्टियाँ मंगा लेनी चाहिए, अन्यथा उनके स्थान पर घर की किसी साफ धुली हुई (भले ही पुरानी हो) धोती या सूती साड़ी में से लम्बाई में कपड़ा फाड़कर तुरन्त पट्टी तैयार कर लेनी चाहिए। धोती या साड़ी की किनारी छोड़कर पट्टी हमेशा बीच में से लेनी चाहिए। अगर भुजा या कोहनी पर बाँधनी हो तो आमतौर पर ढाई इन्च चौड़ी और लगभग 5 गज लम्बी पट्टी लें। टांग के लिए ढाई इन्च चौड़ी और 8–10 गज लम्बी। अगर इतनी न हो तो दो पट्टियाँ जोड़कर एक बना लें

चाहिए। जब पट्टी पेट या छाती पर बाधनी हो तो उसकी चौडाई 5 इ च और लम्बाई 10 गज होनी चाहिए लेकिन इस बात का ध्यान रहे, कि ऐसा करने मे रोगी को तक्लीफ न हो। पट्टी लपेटते हुए आगे बढना चाहिए ताकि रुग्ण भाग ढकता चला जाए। पट्टी बाधने की शुरुआत उस अग के एक सिरे से करनी चाहिए। वहां पट्टी को काफी कसके बाधना चाहिए, लेकिन जैसे जैसे पट्टी आगे चोट की तरफ बढती जाए, लपेट अपेक्षाकृत ढील देने चाहिए और अगला लपेट लपट के लगभग 1/3 भाग को ढककर देना चाहिए। यह हमेशा ध्यान म रख कि कोई जगह उघडी न रह जाए अन्यथा वहां सूजन बढकर पट्टी खिसक जाएगी। जब अग की मोटाई शुरू हो जाए तो लपेट कुछ मोड कर देना चाहिए ।

जब सिर पर पट्टी बाधनी हो ता पहले बाला म अच्छी तरह कघी करके उन्हे जमा देना चाहिए ताकि वे एकसार हो जाएँ और पट्टी का दबाव कही कम और कही ज्यादा न पड जब पट्टी सिफ किसी हिस्स क सहारे के लिए इस्तमाल की जा रही हो अथवा वहा सिफ जगह को ढकने भर का काम ही पट्टी से लेना हो तो किसी भी हालत म वहा सख्त लपट नही देनी चाहिए वरना उस जगह का रक्त सचार रुक कर काफी खराबी पदा कर सकता है। मिसाल क तौर पर हड्डी टूट गई है और वहा आपको पट्टी बाधनी है, तो जब तक पट्टी ढिलाई से नही लपटी जाएगी, वह स्थान सूजकर पट्टी उसम गडने लगेगी। साथ ही यदि वह अ ग लटकता रहे तो सूजन और भी जल्दी बढ जाएगी। इसलिए हड्डी टूटने की दशा मे अथवा एसी ही किसी दूसरी गम्भीर चाट म चुटीले स्थान के आस-पास पट्टी ढीली ही रखनी चाहिए। बधी हुई पट्टी सख्त है अथवा उससे रक्त-सचार मे कोई बाधा पड रही है इस बात की भी जाँच कर लेनी चाहिए। इस जाँच के लिए नाखूनो को दबाकर देखिए, यदि व दबाने पर सफेद पड जाते है और दबाव हटाते ही फिर सुख हो जाते है लेकिन यदि दबाव हटने पर सुर्खी बहुत धीरे धीरे वापस आए तो समझना चाहिए कि पट्टी या स्प्लिण्ट सख्त बध गई है। तब उस तुरत ही ढीला कर देना चाहिए। जब पट्टी लपटी जा चुके ता उसका सिरा बीच स पकडकर दोनो सिरो को आपस म गाँठें लगा दनी चाहिए। मगर गाठ ऐसी जगह लगानी चाहिए कि लेटने या करवट लेने पर शरीर के किसी भाग म चुभे नही। गाठ के स्थान पर सेपटीपिन लगाकर भी पट्टी को टिकाया जा सकता है। पट्टी का कपडा कभी मोटा नही होना चाहिए। क्योकि उसका वजन चोट पर प्राय सहन नही होना।

त्रिकोण पटि्टया—ये पट्टियाँ अधिकाश रूप म बाह म चोट आने पर उसे लटकाने के लिए काम म आती हैं। इन पट्टियो म बाह को इसलिए रखा जाता है कि नीचे लटकने पर चोट म सूजन न बढ जाए तथा बाह इधर उधर हिलने स चोट और खराब न हो जाए। खासतौर पर जब हड्डी टूट जाती है तब तो बाह को मोडकर पेट या छाती के सहारे ही लटकाना पडता है। अगर बाँह, हथेली,

अगूठे में कोई जख्म बन गया हो या ये भाग चाहे बहुत अंशों में कट गए हों तो भी नीचे लटकने पर खून ज्यादा बहता है, उस समय भी बांह को मोड़कर पट्टी में लटकाना ही उचित रहता है। इन लटकाने वाली पट्टियों को अंग्रेजी में स्लिंग कहते हैं।

ये पट्टियां त्रिकोणाकार (तिकूंटी) तैयार की जाती हैं। इसके लिए हो सके तो तिकूंटा कपड़ा ही काट लें अथवा चौकोर कपड़ा काट कर उसके पहले और तीसरे को मिलाकर तह कर लेनी चाहिए, इस तरह त्रिकोणाकार पट्टी तैयार हो जाती है। पट्टी जितनी नीची लटकानी हो कपड़ा उस ही अनुमान से काटना चाहिए। बाहर लटकाने वाली पट्टी को फिट बांधने के लिए लम्बाई में पट्टी के एक खूंट गले के चारों तरफ डाल दीजिए। पट्टी की चौड़ाई वाली नोक अथवा शिखा बगल की तरफ रहनी चाहिए। बांह पेट से सटती हुई पट्टी पर हो, फिर लम्बाई वाले दूसरे सिरे को गले वाले सिरे में बांध देना चाहिए। बांह का कोहनी की अपेक्षा कुछ ऊंचा रखना चाहिए। एक बार पट्टी बांधने के बाद बांह के भार से प्राय पट्टी ढीली होकर कुछ नीचे लटक जाती है, यदि ऐसे हो तो गांठ खोल कर उसे कुछ ऊपर कर देना ठीक होता है। गांठ कड़ी लगानी चाहिए ताकि दुबारा ढिलाई न आए। शिखा को मोड़ कर पट्टी के साथ पिन से टांक देना चाहिए। अगर पट्टी की चौड़ाई कम करनी हो तो उसकी दो तीन तह बनाई जा सकती हैं।

खण्ड-'आ'

शारीरिक शिक्षा

इकाई—1

शारीरिक शिक्षा की परिभाषा, महत्त्व एवं उद्देश्य 1

शारीरिक शिक्षा की परिभाषा

शारीरिक शिक्षा की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नांकित हैं —

शमन (Sharman)—"गत्यात्मक क्रियाओं (Motor Activity) और तत्सम्बन्धी अनुभवों के माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा ही शारीरिक शिक्षा है। इसकी मुख्य विषय-वस्तु है मानवीय व्यवहार के तरीके।"[1]

एच सी बक (H C Buck)—"शारीरिक शिक्षा सामान्य शिक्षा से सम्बन्धित वह कार्यक्रम है जिसके अनुसार वृहद् मांसपेशी से सम्बन्धित क्रियाओं के माध्यम से बालक को शिक्षित, विकसित और उन्नत किया जाता है। शारीरिक क्रियाओं से दी जाने वाली यह शिक्षा सम्पूर्ण बालक की शिक्षा है। शारीरिक क्रियाएँ साधन हैं। इन क्रियाओं को इस तरह चुना व उनका संचालन किया जाता है कि बालक के जीवन के शारीरिक, मानसिक, भावात्मक और नैतिक आदि प्रत्येक पहलू पर प्रभाव पड़े।"

जान एच जनी (John H Jenny)— 'शारीरिक शिक्षा सामान्य शिक्षा का वह क्षेत्र है जहां शारीरिक क्रियाओं को विशेष महत्त्व दिया जाता है जिन्हें यदि अच्छी तरह से संगठित व संचालित किया जाये तो इन्हें सामान्य शिक्षा के अस्त्र व तकनीक के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।"

अब्दुल जब्बार तँवर —"शारीरिक क्रियाओं के माध्यम से व्यक्तित्व के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास को सम्भव बनाने वाली तथा छात्रों के निमित्त इन क्रियाओं को शिक्षा की प्रक्रिया में सम्मिलित करने वाली तथा

---

1 Sharman, Jackson R Modern Principles of Education

इनके करने म रुचि और निर्देशन का विशेष ध्यान रखने वाली शिक्षा ही शारीरिक शिक्षा है।"[1]

उपर्युक्त परिभाषाओ से यह स्पष्ट होता है कि सामान्य शिक्षा का आधार शारीरिक शिक्षा ही हैं। *बक का यह कथन सर्वथा उपयुक्त है कि—"शारीरिक क्रियाओ से दी जाने वाली यह शिक्षा सम्पूर्ण बालक की शिक्षा है। शारीरिक क्रियाएँ साधन है।'* कुछ प्रमुख भारत के शिक्षा आयोगो द्वारा दी गई परिभाषाएँ भी इस स दर्भ मे उल्लेखनीय है तथा **राष्ट्रीय शिक्षा नीति** (1986) की यह अवधारणा भी दृष्टव्य है कि —"खेल और शारीरिक शिक्षा सीखने की प्रक्रिया के अभिन्न अग हैं और इन्हे विद्यार्थियो की कार्य सिद्धि के मूल्याकन मे शामिल किया जायेगा। शरीर और मन के समेकित विकास के साधन के रूप मे योग शिक्षा पर विशेष बल दिया जायेगा।"

कोठारी शिक्षा आयोग तथा मुदालियर माध्यमिक शिक्षा आयोग ने शारीरिक शिक्षा को इस प्रकार परिभाषित किया है —

कोठारी शिक्षा आयोग (1966) के शब्दो मे—"शारीरिक शिक्षा शारीरिक दक्षता, मानसिक सतर्कता, अध्यवसाय, समूह भावना, नेतृत्व, आज्ञाकारिता, सयम, सतुलन एव विनम्रता आदि व्यक्तित्व के श्रेष्ठ गुणो को विकसित करने वाला विषय क्षेत्र है।'

मुदालियर माध्यमिक शिक्षा आयोग (1953) ने भी स्वास्थ्य शिक्षा का महत्त्व बतलाते हुए कहा है—"*जब तक शारीरिक शिक्षा का अभिन्न अग स्वीकार नही कर* लिया जाता तथा शैक्षिक अधिकारी विद्यालयो मे इसकी आवश्यकता नही मान लेते तब तक देश के युवक, जो देश की सर्वाधिक मूल्यवान उपयोगी वस्तु है, राष्ट्रीय कल्याण कार्यों मे पूर्ण योगदान करने के योग्य नही बन सकेंगे। अब तक केवल शैक्षिक प्रकार की शिक्षा पर, बिना शारीरिक विकास पर ध्यान दिये तथा छात्रो के स्वास्थ्य के उचित स्तर को बनाये रखकर, बल दिया जाता रहा है। प्रत्येक छात्र को विद्यालय तथा घर दोनो जगह उत्तम स्वास्थ्य सम्बन्धी आदतो का प्रशिक्षण दिया जाना आवश्यक है। " यह केवल शारीरिक कारणो से ही महत्त्वपूर्ण नही है बल्कि इसीलिए कि अच्छे शारीरिक स्वास्थ्य पर ही *उत्तम मानसिक स्वास्थ्य भी निर्भर रहता है।'*

दोनो आयोगों के उपर्युक्त उद्धरणो से स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा का विद्यालयो म महत्त्व प्रकट होता है। यह शिक्षा न केवल शारीरिक विकास के लिये ही आवश्यक है बल्कि मानसिक स्वास्थ्य के लिये भी वाछनीय है। इसके

---

1 'नया शिक्षक' (शारीरिक शिक्षा अक), अप्रेल 1967, पृ 67

व्यक्तित्व के अनेक गुणों का विकास होता है। स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा के बिना शिक्षा व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास नहीं कर सकती। अत प्रत्येक विद्यालय मे स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा सम्बन्धी प्रशिक्षण देना एव क्रियाकलापो का आयोजन करना विद्यालय कार्यक्रम का अभिन्न अग होना चाहिए।

स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा की क्रियायें तथा कार्यक्रम

(Activities and Programmes of Health and Physical Education)

कोठारी शिक्षा आयोग द्वारा प्रस्तावित स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा की क्रियाओ एव कार्यक्रमो का निर्धारण करने हेतु निम्नांकित सिद्धान्त ध्यान म रखना अपेक्षित होगा —

(1) बालको के आयु वग के अनुकूल उनके विकास क्रम, अभिरुचियो एव क्षमता के आधार पर कार्यक्रम व क्रियाएँ निर्धारित की जायें।

(2) उनके विकास हेतु पूर्व निर्धारित उद्देश्यो की पूर्ति मे सहायक क्रियाएँ चुनी जायें।

(3) ये क्रियाएँ व कार्यक्रम शैक्षिक कार्यक्रमो के पूरक होने चाहिए।

(4) ये छात्रो म जनतान्त्रिक भावना, उत्तरदायित्व व नेतृत्व की प्रवृत्ति म सहायक होनी चाहिए।

(5) विशेष प्रतिभा सम्पन्न एव अन्य वैयक्तिक विभिन्नताओ के बालको हेतु उनके अनुकूल क्रियाओ का आयोजन किया जाये।

(6) कार्यक्रम विद्यालय के मानवीय एव भौतिक ससाधनो की उपलब्धता को दृष्टिगत रखते हुए चुने जायें।

(7) शारीरिक कार्यक्रम विभिन्न शारीरिक प्रक्रियाओ के विकास हेतु अवसर प्रदान करने के लिए विविधतापूर्ण होने चाहिए।

इन सिद्धान्तो के आधार पर आयु-वग के अनुरूप निम्नांकित क्रियाएँ एव कार्यक्रम आयोजित करना उपयोगी रहेगा।

(क) 5 से 8 वय के विद्यार्थियो के लिए

(1) लयात्मक गतिविधियाँ जिनम मूलभूत कौशलो की क्रियाए, सगीतात्मक खेल तथा लोकनृत्य प्रमुख है।

(2) पशु पक्षियो के हाव भाव, बोली आदि की नकल सम्बन्धी खेल।

(3) कथा लेख जिनम श्रम की महत्ता, कत्तव्यनिष्ठा, समाज सेवा आदि स सम्बन्धित कहानियो का अभिनय।

(4) सरल नियम वाले खेल जैस खो खो, कबड्डी आदि।

(5) व्यक्तिगत खेल

शारीरिक शिक्षा म व्यायाम व खेलकूद का विशिष्ट स्थान है। शरीर को दुरुस्त रखने के लिए व्यायाम करना उतना ही आवश्यक है जितना सन्तुलित न। व्यायाम व खेलकूद से शरीर की माँसपेशियाँ लचीली व क्रियाशील रहती जिससे रक्त सचार के अलावा मस्तिष्क व अन्य शारीरिक क्रियायें समुचित रूप अपना काम करती है। इस तरह व्यायाम व खेलकूद स शारीरिक व मानसिक ो प्रकार का विकास होता है। खेलकूद से विकासात्मक तथा सुधारात्मक दोनो ह क लाभ होते हैं। इसे हम शारीरिक लाभ के अन्तर्गत ले सकते है। अनु- सन, सहयोग, सहनशीलता, सयम, आत्मनिभरता आदि गुणा के विकास के मे बालको को शैक्षणिक लाभ मिलता है। शारीरिक शिक्षा का स्वरूप ऐसा ना चाहिए कि उसम शरीर का स्वस्थ रखने पर बल तो दिया ही जाय साथ- थ शैक्षिक मूल्य का भी समावेश हाना चाहिय। ऐसा होने पर शारीरिक क्षमता साथ साथ मानसिक चुस्ती, परिश्रम, सेवा भाव, नेतृत्व, आत्मानुशासन आदि ए विकसित होत है। शारीरिक शिक्षा ही विजय और पराजय म समभाव बनाये रने जैसी प्रेरणा देता है। खेलकूद से मस्तिष्क स्वस्थ रहता है तथा स्वस्थ शरीर स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है।

व्यायाम व खेलकूद का महत्व

(1) नियमित व्यायाम व खेलकूद स शरीर के सभी अग पुष्ट होते हैं योंकि शरीर म रक्त सचार अच्छा होता है।

(2) इनसे फेफड़े, हृदय, आमाशय, गुर्दे व शरीर के अन्य महत्त्वपूर्ण अग शक्तिशाली बनत है। शरीर की सभी मासपेशियाँ मजबूत होती है।

(3) खेलकूद व व्यायाम स साँस तेज हो जाती है, तेज सास लेने व छोडने ा शरीर अधिक आक्सीजन प्राप्त करता है तथा ज्यादा कार्बनडाइआक्साइड छोड़ता है जिससे शरीर फुर्तिला बना रहता है।

(4) खेलकूद व व्यायाम से पाचन क्रिया मजबूत रहती है, इससे भोजन अच्छा पचता है तथा मासपेशियाँ भोजन के पौष्टिक तत्त्वा को अधिक मात्रा म ग्रहण करने म सक्षम हो जाती हैं।

(5) खेलकूद व व्यायाम से शरीर के उत्सर्जन तन्त्र सक्रिय रहते है जिससे शरीर म विकार नही ठहर पाते। मानसिक थकान तथा ऊब कम होती है।

(6) बालको के चलने बैठने व अन्य आसनो म सुधार होता है अर्थात् शरीर सुगठित रहता है।

(7) खेलकूद व व्यायाम से स्नायु तन्त्र सक्रिय रहते है। इससे मस्तिष्क व शरीर के अन्य अगो म सामजस्य बना रहता है।

(8) खेलकूद व व्यायाम से आत्मानुशासन की भावना विकसित होती है। इससे समाजोपयोगी गुणों का विकास होता है।

(9) दिन भर पढते रहने से बच्चे मानसिक तनाव से पीडित रहने लगते है, खेलकूद मनोरजन का अच्छा साधन है जो तनाव मुक्त करने म सहायक है।

(10) खेलकूद से व्यायाम करने की रुचि बनी रहती है तथा व्यायाम खेलकूद की क्षमता विकसित होती है। जो बालको के सर्वागीण विकास म सहायक है।

(11) खेलकूद व व्यायाम से बालको म चारित्रिक गुणो का विकास होता है तथा बालक सयमी बनता है।

(12) खेलकूद व व्यायाम से रोग प्रतिरोधक क्षमता बढती है। जिससे मौसमी रोग बालको के पास तक नही फटक पाते।

(13) खेलकूद व व्यायाम बालको को भविष्य का सुनागरिक बनाने मे मदद पहुँचाते है।

स्वास्थ्य एव शारीरिक क्रियाओ व कार्यक्रमो की व्यवस्था

इन क्रियाओ व कार्यक्रमो के उपयुक्त चुनाव के साथ साथ उनकी प्रभावी व्यवस्था एव सगठन भी आवश्यक है। इस दृष्टि स निम्नाकित बिन्दुओ पर ध्यान दिया जाना चाहिये—

(1) **समयावधि**—विभिन्न क्रियाओ एव छात्रो की क्षमता के अनुरूप इनकी समयावधि निधारित की जानी चाहिय।

(2) **समय विभाग चक्र**—विद्यालय के सभी छात्रो का इन क्रियाओ मे उनकी रुचि क अनुकूल सहभागत्व (Participation) हो तथा व नियमित एव व्यवस्थित हो, इसके लिए उपयुक्त समय विभाग चक्र बनाना चाहिय।

(3) **उपलब्ध भौतिक ससाधन**—खेल के मैदान या स्थान, विभिन्न उपकरण तथा साज सज्जा की वस्तुएँ जो विद्यालय मे उपलब्ध हो, उन्हे दृष्टिगत रखते हुए इसका आयोजन किया जाना चाहिए।

(4) **प्रभारी अध्यापक**—विभिन्न कायक्रमो एव क्रियाओ म दक्ष अध्यापक ही छात्रो के मागदशन एव प्रशिक्षण हेतु प्रभारी बनाय जाने चाहिए।

(5) **परिवीक्षण एव मूल्याकन**—इन क्रियाओ के नियमित, व्यवस्थित एव प्रभावी रूप से सचालन हेतु प्रधानाध्यापक या अन्य वरिष्ठ अध्यापक द्वारा शारीरिक शिक्षा अध्यापक द्वारा परिवीक्षण (Supervision) तथा मूल्याकन (Evaluation) भी किया जाना चाहिए जिसस इनम सुधार व परिष्कार लाया जा सके और उन्हे छात्रो क लिये अधिक उपयोगी बनाया जा सके।

शारीरिक शिक्षा के उद्देश्य

घनश्याम सुखवाल के अनुसार शारीरिक शिक्षा के उद्देश्य निम्नांकित है—

"(1) सु-स्वास्थ्य के महत्त्व एव मूल्यो के प्रति रुचि एव चेतना का विकास करना।

(2) सु-स्वास्थ्य से होने वाले लाभो से अवगत होकर, स्वस्थ एव पूर्ण आदतो का विकास करना।

(3) शारीरिक क्षमताओ का विकास करना।

(4) पारस्परिक सहयोग, ब धुत्व, नतृत्व एव श्रमनिष्ठा आदि के सामुदायिक एव प्रजातात्रिक गुणो का विकास करना।

(5) अवकाश के समय के सदुपयोग से आदतो के निर्माण द्वारा चारित्रिक एव नैतिक मूल्यो का विकास करना।

(6) समग्र रूप म शारीरिक, मानसिक, सवगात्मक एव सामाजिकता का विकास करना।

स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा के उद्देश्यो को राष्ट्रीय शिक्षा नीति म निर्धारित लक्ष्यो के परिप्रेक्ष्य म देखें तो स्पष्ट है कि दोनो का मूल केन्द्र, बालक की सीखने की प्रक्रिया म सहज आन दपूर्ण वातावरण का निर्माण कर, उसक अनुभवो को विकसित होने म सहायता प्रदान करना है, जिसस कि वह अपना सम्पूर्ण विकास सहजतया कर सके और फलस्वरूप वह भविष्य म सद्नागरिक के दायित्वो का श्रेष्ठतया वहन कर सके।"[1]

शारीरिक शिक्षा और सामान्य शिक्षा का घनिष्ठ सम्ब ध स्थापित करते हुए श्री तँवर ने सामान्य शिक्षा तथा शारीरिक शिक्षा के प्रयोजनो तथा उद्देश्यो म समानता प्रकट की है। उनके अनुसार शारीरिक शिक्षा के निम्नांकित उद्देश्य है[2] —

(1) *स्वास्थ्य का विकास*—'शारीरिक अभ्यास व्यक्ति के स्वास्थ्य को विकसित करत है। स्वास्थ्य मानव जीवन का आधार है। शारीरिक क्रियायें मनुष्य के मस्तिष्क को दु खो और चिंताओ से मुक्त करती है, दबाव व तनाव को कम करती हैं और अतिभारान्वित स्नायविक सस्थान को आराम देती है।" शारीरिक अभ्यास निद्रा व भूख म वृद्धि कर स्वास्थ्य का विकास करता है तथा शारीरिक क्रियाओ मे श्वास प्रश्वास द्वारा व्यक्ति ओषजन अधिक लेता है व

---

1 *घनश्याम सुखवाल स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा*, पृ 2–3

2 'नया शिक्षक' (शारीरिक शिक्षा विशेषाक), पृ 69–73

कार्बनडाईआक्साइड के रूप में शारीरिक गंदगी को बाहर फेंक देता है जो स्वास्थ्य वर्धक होता है। इसके अतिरिक्त शारीरिक शिक्षा मनोरंजन प्रदान कर चित्त को प्रसन्न व शरीर को स्फूर्तिमय बनाता है।

(2) **मस्तिष्क का विकास**—शरीर और मस्तिष्क दो पृथक वस्तुएं नहीं है। उनका एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है। शारीरिक शिक्षा, खेल एवं खेलकूद प्रतियोगिताएँ शरीर व मस्तिष्क दोनों का विकास करती हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) पर आधारित राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में भी कहा गया है कि—"इसका (शारीरिक व स्वास्थ्य शिक्षा) का लक्ष्य बालकों को यह अवबोध कराना है कि शरीर व मस्तिष्क का सन्तुलित विकास अच्छे स्वास्थ्य के लिये अपरिहार्य है।"

(3) **अवकाश का सदुपयोग**—आधुनिक मशीनी युग में अवकाश के सदुपयोग की नितान्त आवश्यकता है अन्यथा 'खाली दिमाग शैतान का कारखाना बन जाता है'। अवकाश के सदुपयोग का सर्वोत्तम तरीका शारीरिक क्रियाओं, खेल एवं व्यायाम द्वारा मनोरंजन के साथ साथ स्वास्थ्यवर्धक रुचिकार्यों (Hobies) में व्यस्त रहना है।

(4) **आर्थिक कुशलता**—मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य कार्यकुशलता में अभिवृद्धि करता है जिससे व्यक्ति अपने कार्य एवं व्यवसाय को शीघ्र, सरलता से तथा कार्यकुशलता से कर सकता है जो व्यक्ति के आर्थिक विकास में सहायक होता है।

(5) **नागरिकता**—शारीरिक शिक्षा व्यायाम व खेल बालकों में कुशल नागरिकों के लिये आवश्यक चारित्रिक गुणों तथा कर्त्तव्यों व अधिकारों के प्रति जागरुकता विकसित करते है।

(6) **चरित्र एवं व्यक्तित्व का विकास**—शारीरिक शिक्षा से बालक की मूल प्रवृत्तियों का परिष्कार होता है तथा उसमें अनुशासन, सहयोग, सहकारिता, साहस स्वस्थ प्रतिद्वंद्विता, कर्त्तव्यपालन, खेल भावना आदि अनेक चारित्रिक गुणों का प्रादुर्भाव होकर उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। ये गुण उसके वर्तमान एवं भावी जीवन को सुखी सफल एवं सार्थक बनाते हैं।

(7) **देश भक्ति**—शारीरिक शिक्षा व खेलों के माध्यम से बालक में अपनी टोली (Team) के लिये त्याग, प्रेम व सम्मान की भावना उत्पन्न करता है जो बाद में देश प्रेम व उसके प्रति निष्ठा, त्याग एवं बलिदान की अभिवृत्ति में विकसित हो जाती है।

शारीरिक शिक्षा शिक्षण के उपर्युक्त उद्देश्यों के कारण ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के अनुकूल निर्मित राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में कहा गया है कि—"शारीरिक शिक्षा का लक्ष्य शरीर के स्वास्थ्य शक्ति एवं क्षमता (Fitness) का विकास होना चाहिए।"

शारीरिक शिक्षा एव नई शिक्षा नीति, 1986

नई शिक्षा नीति (1986) के अनुसार—"खेल और शारीरिक शिक्षा सीखने की प्रक्रिया के अभिन्न अग हैं और इन्हे विद्यार्थियो की कायसिद्धि के मूल्याकन म शामिल किया जायगा। शारीरिक शिक्षा और खेलकूद को राष्ट्रव्यापी अधोरचना (Infrastructure) को शिक्षा व्यवस्था का अग बनाया जायेगा।

इस अधोरचना के तहत खेल के मैदानो और उपकरणो की व्यवस्था की जायगी। शारीरिक शिक्षा के अध्यापको की नियुक्ति होगी। शहरो म उपलब्ध खुले क्षेत्र खेल के मैदानो के लिय आरक्षित किय जायेंगे और यदि आवश्यक हुआ तो इसके लिय वैधानिक कायवाही की जायेगी। ऐसी खेल सस्थाए और छात्रावास स्थापित किय जायेंगे जहाँ आम शिक्षा के साथ साथ खेलो की गतिविधियों और उनमे सम्बद्ध अध्ययन पर विशेष ध्यान दिया जायगा। खेल-कूद म प्रतिभाशाली खिलाडियो को उपयुक्त प्रोत्साहन दिया जायगा। भारत के पारम्परिक खेलो पर उचित बल दिया जायेगा। शरीर और मन के समेकित विकास के साधन के रूप म योग शिक्षा पर विशेष बल दिया जायेगा। सभी विद्यालयो म योग की शिक्षा की व्यवस्था के लिये प्रयास किये जायेंगे और इस दृष्टि से शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमो म योग की शिक्षा भी सम्मिलित की जायेगी।"

उपयुक्त नीति के अनुसार अब खेल व शारीरिक शिक्षा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानकर उसे प्राथमिकता दी जायेगी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर आधारित 'राष्ट्रीय पाठ्यक्रम' म प्राथमिक, उच्च प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर 'स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा' को 'केन्द्रीय पाठ्यक्रम' का एक अभिन्न अग बनाकर उसे अनिवाय विषय का महत्त्व दिया गया है। इस राष्ट्रीय पाठ्यक्रम म स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा के उद्देश्यो एव क्रियाकलापो के विषय मे कहा गया है कि—"इसका लक्ष्य बालक को यह समझने म सहायता देना है कि शरीर व मस्तिष्क का समन्वित विकास अच्छे स्वास्थ्य के लिये अपरिहाय होता है। बालक को वाछित पोषण, स्वास्थ्य व स्वच्छता की आदतो के विकास म सहायता देना चाहिए जिससे कि परिवार व समुदाय का स्वास्थ्य स्तर सुधर सके। शारीरिक शिक्षा का लक्ष्य शरीर के स्वास्थ्य, शक्ति तथा क्षमता का विकास होना चाहिए।

शिक्षा के प्रथम दस वर्षों म स्वास्थ्य शिक्षा की अध्ययन सामग्री मे उन क्षेत्रो को सम्मिलित किया जाना चाहिए जो स्वस्थ जीवन की सामान्य प्रगति हेतु आवश्यक है तथा जो देश की प्रमुख स्वास्थ्य समस्याओ से सम्बन्धित हैं।

प्राथमिक स्तर के कायक्रम म इस प्रकार की क्रियाए होनी चाहिए जैसे मुक्त अगसचालन, लयबद्ध व्यायाम (Rhythmics), अनुकरण नाटक, छोटे क्षेत्र के खेल, जिमनास्टिक, खेल कूद (Athlitics), ड्रिल तथा अभियान (Marching)। उच्च प्राथमिक स्तर तथा माध्यमिक स्तर पर प्रमुख क्रियाकलापो मे जिमनास्टिक, व्यायाम, खेल कूद, खेल, ड्रिल व मार्चिंग, स्काउटिंग तथा कैंपिंग (Camping) होने चाहिए।"

---

2 राष्ट्रीय शिक्षा के उद्देश्य की पूर्ति मे स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा का योगदान

राष्ट्रीय शिक्षा के उददेश्य

राष्ट्रीय शिक्षा के उद्देश्यो के परिप्रेक्ष्य म स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा योगदान का उल्लेख पिछले अध्याय म प्रासगिक रूप से हो चुका है। नई राष्ट्र शिक्षा नीति (1986) द्वारा निर्धारित शिक्षा के उद्देश्यो के स दभ म अब स्वास्थ एव शारीरिक शिक्षा के योगदान पर कुछ विस्तार स विचार करने की आवश्य कता है।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के आधार पत्रक के रूप म प्रकाशित दस्तावेज- "शिक्षा की चुनौती नीति सम्ब धी परिप्रेक्ष्य"—के अध्याय 4 (शिक्षा पुनर्निर्धा रण की एक दृष्टि) म यह कहा गया है —'तो आइये, शिक्षा योजना के लिए उद्देश्यो की अभिमुखता पर विचार करें। प्रथम तो हम शिक्षा प्रणाली की सम्पूर्ण भूमिका का ही परिभाषित करना होगा क्योकि इसका अपने आप म एक सस्था गत चरित्र है और छात्रो को शिक्षित करन के काम स कही अधिक इसका अपना विस्तार क्षेत्र है। सभी क्षेत्रो म सर्वांगीण ज्ञान दने के साथ साथ उस ज्ञान का सामाजिक प्रासगिकता की रचना करना भी इसी का काम है। यह विद्यार्थियो म भौतिक सामाजिक परिवेश की समझ एव दृष्टि के विकास का भी सचार करती है।

दूसरा प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति की सामाजिक आर्थिक सम्पन्नता, क्षमता एव सृजनात्मकता के विकास का है। इसके अ तगत—(1) व्यक्ति का शारीरिक, बौद्धिक एव सास्कृतिक विकास, (2) वैज्ञानिक मन स्थिति का प्रादुर्भाव, (3) अपरि चित स्थितियो म नय कार्यों को करने म आत्मविश्वास, प्रजाताँत्रिक, नैतिक एव मूल्यगत सस्थितियो क प्रति रुझान, (4) भौतिक सामाजिक, तकनीकी एव आर्थिक परिवश के प्रति जागरुकता, (5) श्रम के प्रति निष्ठा (6) धर्मनिरपेक्षता

एव सामाजिक न्याय की प्रतिबद्धता, (7) राष्ट्र की एकता एव सम्मान के प्रति आस्था तथा (8) अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव की परिणिति आदि सभी बिन्दु आ जाते है।'

उपर्युक्त आधार-पत्रक पर काफी विचार विमर्श के उपरान्त जो नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 मे निर्मित होकर स्वीकृत की गई, उसमे शिक्षा के उद्देश्य के रूप मे राष्ट्रीय मूल्यो का उल्लेख इस प्रकार किया गया है —

"सामान्य केन्द्रक (Core Curriculum) मे भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास सवैधानिक जिम्मेदारिया तथा राष्ट्रीय अस्मिता से सम्बन्धित अनिवार्य तत्त्व शामिल होग। ये मुद्दे किसी एक विषय का हिस्सा न होकर लगभग सभी विषयो मे पिरोये जायेंगे। इनके द्वारा राष्ट्रीय मूल्यो को हर इन्सान की सोच और जिन्दगी का हिस्सा बनाने की कोशिश की जायगी। इन राष्ट्रीय मूल्यो मे ये बातें शामिल हैं —हमारी समान सास्कृतिक धरोहर, लोकतन्त्र, धर्मनिरपेक्षता, स्त्री पुरुषो के बीच समानता पर्यावरण का सरक्षण, सामाजिक समता सीमित परिवार का महत्त्व और वैज्ञानिक तरीके के अमल की जरूरत। यह सुनिश्चित किया जाएगा कि सभी शैक्षिक कार्यक्रम धर्मनिरपेक्षता के मूल्यो के अनुरूप ही आयोजित हो।"

राष्ट्रीय शिक्षा नीति मे वर्णित उपर्युक्त उद्देश्यो के आधार पर निर्मित 'राष्ट्रीय शिक्षा पाठ्यक्रम' मे भी इस पाठ्यक्रम की आधारिक विशेषताओ का उल्लेख इस प्रकार किया गया है —

'(i) वैयक्तिक व सामाजिक लक्ष्यो की उपलब्धि एव सविधान मे निर्धारित मूल्यो के विकास पर बल (ii) राष्ट्रीय विकास के लक्ष्यो की प्राप्ति हेतु मानव ससाधनो का विकास, (iii) प्राथमिक व माध्यमिक स्तरो पर सभी अधिगमकर्ताओ के लिये सवसुलभ सामान्य शिक्षा की उपलब्धि, (iv) शिक्षण की बालकेन्द्रित विधि (v) वाछित उद्देश्यो की पूर्ति हेतु पाठ्यवस्तु तथा अधिगम अनुभवो के चुनाव मे लचीलापन, (vi) सभी विद्यार्थियो के लिये एक सामान्य पाठ्यक्रम का प्रावधान, (vii) सभी विद्यालयो मे आवश्यक न्यूनतम ससाधनो की व्यवस्था।"

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम मे विद्यालयी शिक्षा के सभी स्तरो पर 'स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा' को एक अनिवार्य विषय बनाया गया है जो इस बात का प्रमाण है कि यह विषय उपर्युक्त सभी निर्धारित उद्देश्यो की प्राप्ति मे सहायक होता है।

राष्ट्रीय शिक्षा के उद्देश्यो की पूर्ति मे स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा का योगदान

पूर्व वर्णित राष्ट्रीय मूल्यो एव शिक्षा के उद्देश्यो की उपलब्धि मे स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा का योगदान सर्वाधिक है। इस विषय के शिक्षण से बालको

2 राष्ट्रीय शिक्षा के उद्देश्य की पूर्ति मे स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा का योगदान

राष्ट्रीय शिक्षा के उददेश्य

राष्ट्रीय शिक्षा के उद्देश्यो के परिप्रेक्ष्य म स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा के योगदान का उल्लेख पिछले अध्याय म प्रासगिक रूप से हो चुका है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) द्वारा निर्धारित शिक्षा के उद्देश्या के सन्दभ म अब स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा के योगदान पर कुछ विस्तार से विचार करने की आवश्यकता है।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के आधार पत्रक के रूप म प्रकाशित दस्तावेज–"शिक्षा की चुनौती नीति सम्बन्धी परिप्रेक्ष्य"—के अध्याय 4 (शिक्षा पुनर्निर्धारण की एक दृष्टि) म यह कहा गया है —"तो आइये, शिक्षा योजना के लिये उद्देश्या की अभिमुखता पर विचार करें। प्रथम तो हमे शिक्षा प्रणाली की सम्पूर्ण भूमिका को ही परिभाषित करना होगा क्योकि इसका अपने आप म एक संस्थागत चरित्र है और छात्रा को शिक्षित करने के काम से कही अधिक इसका अपना विस्तार क्षेत्र है। सभी क्षेत्रा म सर्वांगीण ज्ञान देने के साथ साथ उस ज्ञान की सामाजिक प्रासगिकता की रचना करना भी इसी का काम है। यह विद्यार्थियो म भौतिक सामाजिक परिवेश की समझ एव दृष्टि के विकास का भी सचार करती है।

दूसरा प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति की सामाजिक आर्थिक सम्पन्नता, क्षमता एव सृजनात्मकता के विकास का है। इसके अ तर्गत—(1) व्यक्ति का शारीरिक, बौद्धिक एव सास्कृतिक विकास, (2) वैज्ञानिक मन स्थिति का प्रादुभाव, (3) अपरिचित स्थितिया म नय कार्यों का करने म आत्मविश्वास, प्रजातान्त्रिक, नतिक एव मूल्यगत मन्यितिया के प्रति रुझान (4) भौतिक, सामाजिक, तकनीकी एव आर्थिक परिवेश क प्रति जागरुकता, (5) श्रम के प्रति निष्ठा, (6) धर्मनिरपेक्षता

एव सामाजिक न्याय की प्रतिबद्धता, (7) राष्ट्र की एकता एव सम्मान के प्रति आस्था तथा (8) अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव की परिणिति आदि सभी बिन्दु आ जाते हैं।'

उपर्युक्त आधार पत्रक पर काफी विचार विमर्श के उपरान्त जो नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में निर्मित होकर स्वीकृत की गई, उसमे शिक्षा के उद्देश्य के रूप मे राष्ट्रीय मूल्यो का उल्लेख इस प्रकार किया गया है —

"सामान्य केन्द्रिक (Core Curriculum) मे भारतीय स्वतन्त्रता आदोलन का इतिहास सवैधानिक जिम्मेदारियो तथा राष्ट्रीय अस्मिता से सम्बन्धित अनिवार्य तत्व शामिल होगे। ये मुद्दे किसी एक विषय का हिस्सा न होकर लगभग सभी विषयो मे पिरोये जायेगे। इनके द्वारा राष्ट्रीय मूल्यो को हर इन्सान की सोच और जिन्दगी का हिस्सा बनाने की कोशिश की जायगी। इन राष्ट्रीय मूल्यो मे ये बातें शामिल हैं —हमारी समान सास्कृतिक धरोहर, लोकतन्त्र, धर्मनिरपेक्षता, स्त्री पुरुषो के बीच समानता पर्यावरण का सरक्षण सामाजिक समता सीमित परिवार का महत्व और वैज्ञानिक तरीके के अमल की जरूरत। यह सुनिश्चित किया जाएगा कि सभी शैक्षिक कार्यक्रम धर्मनिरपेक्षता के मूल्यो के अनुरूप ही आयोजित हो।"

राष्ट्रीय शिक्षा नीति मे वर्णित उपर्युक्त उद्देश्यों के आधार पर निर्मित 'राष्ट्रीय शिक्षा पाठ्यक्रम' मे भी इस पाठ्यक्रम की आधारिक विशेषताओ का उल्लेख इस प्रकार किया गया है —

"(i) वैयक्तिक व सामाजिक लक्ष्यो की उपलब्धि एव सविधान मे निर्धारित मूल्यो के विकास पर बल (ii) राष्ट्रीय विकास के लक्ष्यो की प्राप्ति हेतु मानव-ससाधनो का विकास (iii) प्राथमिक व माध्यमिक स्तरो पर सभी अधिगमकर्ताओ के लिये सवसुलभ सामान्य शिक्षा की उपलब्धि, (iv) शिक्षण की बालकेन्द्रित विधि (v) वाछित उद्देश्यो की पूर्ति हेतु पाठ्यवस्तु तथा अधिगम अनुभवो के चुनाव मे लचीलापन (vi) सभी विद्यार्थियो के लिये एक सामान्य पाठ्यक्रम का प्रावधान (vii) सभी विद्यालयो मे आवश्यक न्यूनतम ससाधनो की व्यवस्था।"

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम मे विद्यालयी शिक्षा के सभी स्तरो पर 'स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा' को एक अनिवार्य विषय बनाया गया है जो इस बात का प्रमाण है कि यह विषय उपर्युक्त सभी निर्धारित उद्देश्यो की प्राप्ति मे सहायक होता है।

राष्ट्रीय शिक्षा के उद्देश्यो की पूर्ति मे स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा का योगदान

पूर्व वर्णित राष्ट्रीय मूल्यो एव शिक्षा के उद्देश्यो की उपलब्धि मे स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा का योगदान सर्वाधिक है। इस विषय के शिक्षण से

इकाई–2

2 राष्ट्रीय शिक्षा के उद्देश्य की पूर्ति मे स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा का योगदान

राष्ट्रीय शिक्षा के उद्देश्य

राष्ट्रीय शिक्षा के उद्देश्यो के परिप्रेक्ष्य म स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा के योगदान का उल्लेख पिछले अध्याय म प्रासगिक रूप से हो चुका है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) द्वारा निर्धारित शिक्षा के उद्देश्यो क स दभ म अब स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा के योगदान पर कुछ विस्तार से विचार करने की आवश्यकता है।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के आधार पत्रक के रूप म प्रकाशित दस्तावेज–"शिक्षा की चुनौती नीति सम्ब धी परिप्रेक्ष्य"—के अध्याय 4 (शिक्षा पुनर्निर्धारण की एक दृष्टि) म यह कहा गया है —"तो आइय, शिक्षा योजना के लिये उद्देश्यो की अभिमुखता पर विचार करें। प्रथम तो हम शिक्षा प्रणाली की सम्पूर्ण भूमिका को ही परिभाषित करना होगा क्योकि इसका अपने आप म एक संस्थागत चरित्र है और छात्रो को शिक्षित करने के काम से कही अधिक इसका अपना विस्तार क्षेत्र है। सभी क्षेत्रो म सर्वागीण ज्ञान दने के साथ-साथ उस ज्ञान की सामाजिक प्रासगिकता की रचना करना भी इसी का काम है। यह विद्यार्थियों म भौतिक सामाजिक परिवेश की समझ एव दृष्टि के विकास का भी सचार करती है।

दूसरा प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति की सामाजिक आर्थिक सम्पन्नता, क्षमता एव सृजनात्मकता क विकास का है। इसके अ तगत—(1) व्यक्ति का शारीरिक, बौद्धिक एव सास्कृतिक विकास, (2) वैज्ञानिक मन स्थिति का प्रादुर्भाव, (3) अपरिचित स्थितिया म नय कार्यों को करने म आत्मविश्वास, प्रजातान्त्रिक, नतिक एव मूल्यगत मस्थितिया के प्रति रुझान, (4) भौतिक, सामाजिक, तकनीकी एव आर्थिक परिवश के प्रति जागरुकता, (5) श्रम के प्रति निष्ठा (6) धर्मनिरपेक्षता

का शारीरिक विकास ही नही होता अपितु उसका मानसिक, सामाजिक, सवेगात्मक एव आत्मिक विकास भी होता है। इस प्रकार बालक का सर्वांगीण विकास कर यह विषय उसे एक योग्य भावी नागरिक बनाने म सहायक होता है।

स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा द्वारा विद्यार्थियो म जनतात्रिक, नागरिक, धमनिरपेक्षता, समानता, सामाजिक याय, राष्टीय एव अ तर्राष्ट्रीय भावना का विकास होता है। स्वास्थ्य शिक्षा द्वारा उनम अच्छी आदतो का निर्माण होता है जिससे उनम अनेक चारित्रिक गुण स्वच्छता, पर्यावरणीय चेतना, निरोगता, पौष्टिक व स तुलित भोजन की जानकारी द्वारा अपनी वृद्धि एव विकास के प्रति जागरुकता, रोगो से बचाव के तरीके, प्राथमिक उपचार का ज्ञान, उपभोक्ता शिक्षण स स्वास्थ्य-प्रद खाद्य व पेय वस्तुओ के उपयोग की जानकारी आदि प्राप्त होती है। शारीरिक शिक्षा द्वारा उनमे शरीर की स्वच्छता, पोषण व क्षमता की वृद्धि करने की आदतो का विकास होता है। खेल कूद एव उनकी प्रतियोगिताओ म भाग लेकर उनमे सहयोग, स्वस्थ प्रतिद्व द्विता टीम के प्रति निष्ठा, उत्कृष्ट प्रदशन की उत्प्रेरणा, समता, कत्त व्यपालन, नियमो के पालन द्वारा खेल भावना धमनिरपेक्षता, राष्ट्रीय एव अ तर्राष्ट्रीय भावात्मक एकता क गुण विकसित होते है।

स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा द्वारा पूर्वोल्लिखित शिक्षा के सभी सामान्य उद्देश्यो की पूर्ति हो जाती है जो इन उद्देश्यो की पूर्ति म उसके महत्वपूर्ण योगदान को प्रकट करता है। इसीलिए इस विषय को शिक्षा के सभी स्तरो पर पाठ्यक्रम का अभि न अ ग बनाया गया है।

इकाई—3

व्यायाम, थकान, विश्राम, निद्रा एवं अनुरजनात्मक क्रिया का शरीर पर प्रभाव

3

शारीरिक शिक्षा के सदभ म यह समझना अत्य त आवश्यक है कि व्यायाम, थकान, विश्राम, निद्रा एव अनुरजनात्मक क्रिया का शरार पर क्या प्रभाव पडता है। अत प्रस्तुत अध्याय म इसका विवचन किया जा रहा है।

(क) व्यायाम का शरीर पर प्रभाव

व्यायाम' का अथ—शरीर को स्वस्थ रखने के लिए व्यायाम करना उतना ही आवश्यक है, जितना सन्तुलित भोजन। व्यायाम करने से मासपेशियाँ सुचारु रूप से क्रिया करती हैं जिसस रक्त सचार, मस्तिष्क की क्रिया आदि शारीरिक क्रियाएँ सभी उचित रूप से अपना अपना काय करती है। व्यायाम करने स शारीरिक तथा मानसिक दोनो प्रकार का विकास होता है। चूँकि शरीर का एक भाग मस्तिष्क भी है, इसलिए शरीर को स्वस्थ रखने म मस्तिष्क भी स्वस्थ रहता है। मानसिक कार्य करने से शरीर पर प्रभाव नही पडता है। परन्तु शारीरिक क्रिया म मस्तिष्क भी प्रभावित होता है। एक स्वस्थ शरीर म एक स्वस्थ मस्तिष्क हो सकता है परन्तु एक स्वस्थ मस्तिष्क म युक्त स्वस्थ शरीर का होना आवश्यक नहा है।

व्यायाम के प्रभाव—इसके प्रभावो को दो भागा म बाँटा जा सकता है—

(1) शारीरिक लाभ (Physical Utility),

(2) शैक्षिक लाभ (Educational Utility)।

(1) शारीरिक लाभ—इसे गुणो क आधार पर तीन छोटे भागो म बाँटा जा सकता है—

(अ) बालक में सामूहिक व्यायाम करने से सहयोग की भावना पैदा होती है।

(ब) बालक में तुरंत निर्णय करने की शक्ति का विकास होता है।

(स) बालक में संयम, आत्मनिर्भरता, अनुशासन, वृढ़ता आदि गुणों का प्रादुर्भाव होता है।

(द) परोपकार की भावना का भी उदय होता है।

व्यायाम के नियम—(1) व्यायाम क्रमशः सरल से कठिन की ओर के सिद्धांत पर आधारित होना चाहिए। थकान का अनुभव करने पर व्यायाम नहीं करना चाहिए।

(2) व्यायाम सदा खुले हुए स्थान में करना चाहिए जिससे फेफड़ों को स्वच्छ वायु मिल सके। स्कूल में व्यायाम के कमरे की खिड़कियाँ तथा दरवाजे खुले होने चाहिए।

(3) व्यायाम निश्चित समय तथा नियमित रूप से करना चाहिए।

(4) व्यायाम बालक की अवस्था के अनुकूल होना चाहिए वरना इसका स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। छोटे बच्चों से अधिक समय तक तथा कठिन व्यायाम न कराना चाहिए।

(5) शरीर की बनावट पर भी व्यायाम का प्रभाव पड़ सकता है। कमजोर शरीर वाले बच्चों से सरल तथा कम समय तक व्यायाम कराना चाहिए। मानसिक कार्य करने वालों को भी कठिन व्यायाम से बचना चाहिए।

(6) खाली पेट या भोजन के पश्चात् तुरंत व्यायाम करने से हानि होने की सम्भावना होती है।

(7) छोटे बच्चों को ड्रिल नहीं करानी चाहिए। उनको केवल खेल-कूद करवाने से पर्याप्त व्यायाम हो जाता है।

(8) व्यायाम के बाद पौष्टिक भोजन कराना चाहिए। स्कूल में बच्चों को व्यायाम के बाद दूध दिया जा सकता है।

(ख) थकान का शरीर पर प्रभाव

थकान (Fatigue)—किसी भी कार्य को करने में एक ऐसी स्थिति आती है जब उस कार्य को और करने की बिल्कुल भी इच्छा नहीं होती है। कार्य न करने की इस अनिच्छा को ही थकान कहते हैं। इसका प्रभाव मस्तिष्क तथा शरीर का वह अंग होता है, जिससे कोई कार्य किया जाता है। थकान एक शिथिलता की भावना उत्पन्न करती है जिससे काम करने की इच्छा मर जाती है।

थकान के लक्षण—(1) कार्य करने की अनिच्छा होती है।

(2) थका बालक अपने कूल्हे लटकाए खड़ा रहता है।

(अ) पोषक लाभ (Nutritive value)

(ब) विकासात्मक लाभ (Developmental Value)

(स) सुधारात्मक लाभ (Corrective value)

(अ) पोषक लाभ—व्यायाम करने से शरीर के भिन्न भिन्न अगो पर प्रभाव पडता है। व्यायाम से शरीर मे गर्मी उत्पन्न होती है, जिसका कारण हृदय की गति का तीव्र होना होता है। इस तरह रक्त प्रवाह मे वेग आ जाता है और शरीर के प्रत्येक कोष को आक्सीजन और ग्लाइकोजन (Glycogen) की अधिक मात्रा जाती है। इसके फलस्वरूप दूषित पदार्थ, जो कार्बन डाइ-आक्साइड के रूप मे शरीर मे बनती है वह बाहर आ जाती है।

व्यायाम से श्वास गति तीव्र हो जाती है। इससे श्वास क्रिया मे ऑक्सीजन अन्दर तथा कार्बन डाइ आक्साइड बाहर निकलती है। इससे फेफडो मे वायु ग्रहण करने तथा वक्ष की पेशियो की कार्य करने की शक्ति बढ जाती है। इसके अतिरिक्त गुर्दे मे रक्त की अधिक मात्रा पहुँचने से विषाक्त पदार्थ मूत्र के साथ शरीर से बाहर निकल जाता है। मस्तिष्क भी रुधिर के कारण स्वस्थ रहता है।

व्यायाम करने से पाचन शक्ति भी पूर्ण रूप से कार्य करने लगती है, जिससे भूख अधिक लगती है। रात को नींद भी अच्छी तरह आती है जिससे शरीर की थकान दूर होती है। नियमित रूप से व्यायाम करने से शरीर सुडौल, लोचदार, स्वस्थ तथा सुन्दर हो जाता है।

(ब) विकासात्मक लाभ (Developmental value)—प्रतिदिन नियमित रूप से व्यायाम करने से मासपेशियो के आकार मे वृद्धि होती है। उनकी शक्ति मे भी विकास होता है। व्यायाम से इच्छा शक्ति का नियन्त्रण बढ जाता है, जिससे मस्तिष्क तथा मासपेशियो मे सहयोग (Coordination) का गुण बढ जाता है।

(स) सुधारात्मक लाभ (Corrective value)—दिन भर मे बालक को इस तरह कार्य करने पडते है। जिनसे शारीरिक आसन अनुचित रूप धारण करते रहते है। इनकी विकृतियो के सुधार के लिए व्यायाम करना बडा ही लाभप्रद होता है। इन आसनो मे रीढ की हड्डी, कन्धो का झुकाव पैर का चपटा होना आदि व्यायाम से सुधारे जा सकते हैं। साथ ही साथ व्यायाम से मस्तिष्क की शक्ति बढ जाती है जिससे वह शरीर के सभी कार्यों को सुचारु रूप से चला सकता है।

(2) शैक्षिक लाभ (Educational Utility)—शिक्षा मे भी व्यायाम द्वारा अनेको लाभ होते है। वे अग्राकित हैं—

(अ) बालक म सामूहिक व्यायाम करने से सहयोग की भावना पैदा होती है।

(ब) बालक मे तुर त निणय करने की शक्ति का विकास होता है।

(स) बालक म सयम, आत्मनिभरता, अनुशासन, दृढ़ता आदि गुणों का प्रादुर्भाव होता है।

(द) परोपकार की भावना का भी उदय होता है।

व्यायाम के नियम – (1) व्यायाम क्रमश सरल स कठिन की ओर के सिद्धा त पर आधारित होना चाहिए। थकान का अनुभव करने पर व्यायाम नहीं करना चाहिए।

(2) व्यायाम सदा खुले हुए स्थान म करना चाहिए जिसस फेफड़ा का स्वच्छ वायु मिल सके। स्कूल म व्यायाम के कमर को खिड़कियाँ तथा दरवाजे खुले होने चाहिए।

(3) व्यायाम निश्चित समय तथा नियमित रूप स करना चाहिए।

(4) व्यायाम बालक की अवस्था क अनुकूल होना चाहिए वरना इसका स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड सकता है। छोटे बच्चो स अधिक समय तक तथा कठिन व्यायाम न कराना चाहिए।

(5) शरीर की बनावट पर भी व्यायाम का प्रभाव पड़ सकता है। कमजोर शरीर वाले बच्चा स सरल तथा कम समय तक व्यायाम कराना चाहिए। मानसिक काय करने वालो को भी कठिन व्यायाम से बचना चाहिए।

(6) खाली पट या भोजन के पश्चात् तुर त व्यायाम करने स हानि हान की सम्भावना होती है।

(7) छोटे बच्चो को ड्रिल नही करानी चाहिए। उनको केवल खेल कूद करवाने से पर्याप्त व्यायाम हो जाता है।

(8) व्यायाम के बाद पौष्टिक भाजन कराना चाहिए। स्कूल म बच्चा को व्यायाम के बाद दूध दिया जा सकता है।

(ख) थकान का शरीर पर प्रभाव

थकान (Fatigue) – किसी भी काय को करने मे एक ऐसी स्थिति आती है जब उस काय को और करन की बिल्कुल भी इच्छा नहीं होता ह। काम न करन की इस अनिच्छा को ही थकान कहते है। इसका प्रभाव मस्तिष्क तथा शरीर का वह अग हाता है, जिससे कोई काय किया जाता है। थकान एक शिथिलता की भावना उत्पन्न करती है जिसस काम करने की इच्छा मर जाती है।

थकान के लक्षण– (1) कार्य करने की अनिच्छा होती है।

(2) थका बालक अपने कूल्हे लटकाए खडा रहता है।

(3) थके हुए बालक के हाथ शिथिलता म लटके हुए, कधे झुके हुए, पिडलिया झुकी हुइ और पैर भीतर को ओर फिरे हागे।

(4) आखो से सुस्ती और निर्जीवकता टपकेगी। चेहरा प्राय पीला हागा और मुद्रा शूय होगी।

(5) बालक माथे पर हाथ रखेगा, जम्हाई लगा तथा उस झपकी और थकावट आएगी।

(6) बालक मे एकाग्रता की कमी तथा काय म गलती होगी।

(7) थकान अधिक होने पर बालक रात को ठीक स न सो सकेगा।

थकान के दो मुख्य कारण होते हैं—मानसिक (Mental), (2) शारीरिक (Physical)।

(1) **मानसिक थकान** —यह मासपेशियो अर्थात शारीरिक थकान स अधिक शीघ्रता मे होती है। कोई भी शारीरिक काय करने म मस्तिष्क स्वय काय करता है जिसमे मानसिक थकान उत्पन्न होती है। मस्तिष्क पर प्रभाव शरीर की अपेक्षा शीघ्र और अधिक हाना है जिससे वह अपनी निय त्रण शक्ति खो बठता है और व्यक्ति थकान का अनुभव करने लगता है। इस तरह की थकान के निम्न कारण होते हैं—

(1) जब शरीर का सभी ग्लाइकोजन (Glycogen), जिससे शक्ति प्राप्त होती है समाप्त हो जाता है तो थकान पैदा होती है। ग्लाइकोजन उसी अनुपात मे तैयार नही हो पाता है जितना शरीर को चाहिए।

(2) शरीर के विभिन्न अवयवो के सक्रिय होने पर उसम एक रासायनिक परिवतन होता है जिसके कारण लैक्टिक एसिड (Lactic acid) तथा कार्बन डाइ आक्साइड आदि विषाक्त पदार्थों की उत्पत्ति होन के कारण थकान हो जाती है।

(3) शरीर के काय करने की शक्ति कम हो जाती है, जिसक तीन निम्न कारण होत है —

(अ) मस्तिष्क तथा सुषुम्ना की प्रेरणा उत्पन्न करने की शक्ति कम हो जाती है।

(ब) नाडिया मासपेशियो म सूचना भेजन म असमथ हो जाती हैं।

(स) मासपेशियो म स्वय दूषित पदाथ के कारण काय करने की क्षमता कम हो जाती है।

कभी-कभी मनुष्य असाधारण थकान का अनुभव करता है। यह स्थिति शारीरिक तथा मानसिक अव्यवस्था क कारण उत्पन्न हो सकती है। इ कारण पूर्वनिश्चित है—

(1) पौष्टिक भोजन की कमी के कारण मासपेशियो की निबलता तथा उनका अनुचित उपयोग ।

(2) गठिया तथा गले सम्बन्धी रोग ।

(3) रक्त म आक्सीजन की कमी का होना जिससे स्नायुओ को स्वस्थ रहने के लिए पर्याप्त आक्सीजन न मिलना ।

(2) शारीरिक थकान—(1) पौष्टिक भाजन की कमी के कारण मासपेशिया की निबलता तथा उनका अनुचित उपयोग ।

(2) गठिया तथा गले सम्बन्धी राग ।

(3) रक्त म आक्सीजन की कमी का होना जिसस स्नायुओ का स्वस्थ रहने के लिए पर्याप्ति आक्सीजन न मिलना ।

(4) शारीरिक काय के बाद उसी समय मानसिक काय करना ।

(5) असफलता के कारण मानसिक व्यग्रता ।

(6) अत्यधिक जागरण, मनोरजन तथा कालाहल ।

(7) स्वच्छ वायु एव प्रकाश का अभाव ।

(8) अनुचित आसन ।

(9) भोजन के पश्चात् काय तथा निरन्तर देर तक पढना ।

असाधारण थकान के कारण बच्चे अस्वस्थ, बेचैन, सुस्त, अधिक थकान से श्वास ठीक न लेना, चम राग, सिर म पीडा आदि से पीडित रहते हैं ।

थकान के लक्षण तथा दूर करने के नियम—(1) प्रत्येक मानसिक तथा शारीरिक कार्य के बाद आराम करना चाहिए ।

(2) स्कूल म प्रत्येक घण्टे के पश्चात् कुछ समय के लिए आराम देने से शरीर म बने दूषित पदार्थों का नाश हो जाता है ।

(3) बडे पाठ न पढा कर छोटे और विभिन्न प्रकार के पाठो का परिणाम भी उत्तम होता है । इसलिए पाठ आधा घण्टे से अधिक का न होना चाहिए ।

(4) बच्चो के बैठने का प्रबन्ध अच्छा होना चाहिए तथा कमरे म वायु की पर्याप्त मात्रा आनी आवश्यक है ।

(5) स्कूल ऐस स्थान पर होना चाहिए जिसस किसी प्रकार का कोलाहल न हो ।

(6) अध्यापक को प्रत्येक बच्चे को ध्यान से देखना चाहिए जिससे बालक के कक्षा म ध्यान न रखने के कारण का पता चल जाए ।

(7) माता पिता को अपने बच्चो से अनावश्यक अधिक काय न कराना चाहिए । बच्चो को पूर्ण विश्राम तथा आराम देते रहना चाहिए । मानसिक थकान के निवारण हेतु नींद आवश्यक है ।

(8) थकान दूर करने के लिए स्वच्छ जल व स्नान का प्रबन्ध होना चाहिए।

(ग) विश्राम (Rest) का शरीर पर प्रभाव

(1) एक कार्य से थक जाने पर काम बन्द या नया कार्य प्रारम्भ करने से आराम (विश्राम) मिलता है।

(2) शारीरिक कार्य के बाद कुछ आराम करके मानसिक कार्य करना चाहिए।

(3) आराम से थकावट के बुरे प्रभाव का अन्त हो जाता है।

(4) बालक को दिन के खाने के बाद आराम मिलना अति आवश्यक है।

(5) आराम से मानसिक थकान कम होती है। इसमें बालक को सो जाना चाहिए।

(6) दिन में आराम करते समय चित्त सीधे होकर सोना उपयुक्त है। इससे मांसपेशियों को पूर्ण आराम मिलता है तथा हृदय की धड़कन कम होने से उसको भी आराम मिलता है।

(घ) निद्रा (नींद) का शरीर पर प्रभाव

बच्चों के लिए नींद बड़ी आवश्यक है। वास्तविक आराम नींद में ही मिलता है। नींद की अवस्था में जो आराम मिलता है, उसी हालत में शरीर में नवीन तन्तुओं का निर्माण होता है।

सोने के कमरे में कम से कम रोशनी, वायु प्रसरण अच्छा तथा वह न अधिक गरम व ठण्डा होना चाहिए। अधिक गर्मी में नींद नहीं आती है जिसके कारण शरीर अस्वस्थ हो जाता है। सोने के लिए अधिक मुलायम बिछौना नहीं होना चाहिए। भूमि पर सोना हानिकारक होता है। सोने का बिस्तर स्वच्छ होना चाहिए। सोने के बाद बिछौने को स्वच्छ हवा तथा सूर्य का प्रकाश मिलना चाहिए। सोने के कुछ और आवश्यक नियम निम्न हैं—

(1) सोते समय सिर शरीर की अपेक्षा कुछ ऊपर उठा होना चाहिए तथा सिर ढक कर न सोना चाहिए।

(2) दो व्यक्तियों को एक चारपाई पर नहीं सोना चाहिए।

(3) सोने के कमरे में कोई जानवर नहीं होना चाहिए।

(4) इसके अतिरिक्त सोते समय कोई चिराग, लैम्प या आग कमरे में न जलनी चाहिए।

(5) सोने के कमरे में अधिक फर्नीचर न हो क्योंकि वह हवा के स्थान को रोकता है।

(6) खाली पेट कभी न सोना चाहिए क्योंकि नींद में भी शरीर के अंग अपना कार्य करने के लिए खुराक चाहते हैं।

(7) भारी या अधिक भोजन करने के पश्चात् कुछ रुक कर सोना लाभप्रद होता है।

(8) सोने में दाँयी करवट सोना चाहिए जिसमें हृदय अपना कार्य सुचारु रूप से कर सके।

(9) जब तक डाक्टर सलाह न दें सोने हेतु सोने की दवाई न खानी चाहिए।

(10) सोने का समय नियमित रूप से निश्चित होना चाहिये।

निद्रा की मात्रा (Duration of Sleep)—

2 वर्ष तक के बच्चों को 16 घण्टे सोना चाहिए।

2 वर्ष से 4 वर्ष तक के बच्चों को 12 घण्टे सोना चाहिए।

4 वर्ष के बच्चों को 12 घण्टे सोना चाहिए।

8 वर्ष के बच्चों को 11 घण्टे सोना चाहिए।

12 वर्ष के बच्चों को 10 घंटे सोना चाहिए।

16 वर्ष के बच्चों को 9 घंटे सोना चाहिए।

16 वर्ष से ऊपर के बच्चों व मनुष्यों को 7 घंटे तथा स्त्रियों को 8 घंटे सोना चाहिए।

अनिद्रा के उपचार—

(1) सोने से पूर्व गरम विश्रामदायक वस्तु देना।

(2) सोने से पूर्व कुछ काम न करना।

(3) दिन में व्यायाम करना।

(4) खुला हवादार तथा स्वच्छ विश्रामदायक बिस्तर का होना।

(5) कार्यभार अधिक न होना।

अनुरंजनात्मक क्रिया
(Recreational Activity)

अनुरंजनात्मक क्रियाओं का अर्थ एवं क्षेत्र—

अर्थ—'अनुरंजन' अंग्रेजी शब्द 'Recreation' या Entertainment' शब्द का पर्यायवाची शब्द माना जा सकता है जिसका अर्थ होता है मनोरंजन या मनोविनोद। 'मन + अनुरंजन' मिलकर 'मनोरंजन' अर्थात् मन को प्रसन्न करना या आनन्द देना कहलाता है। मनोरंजन प्राय हम अपने अवकाश या फुर्सत के समय करते हैं जब हम अपने दैनिक कार्य से मुक्त होकर अपनी रुचि और

म आनन्ददायक कार्यों मे प्रवृत्त होते हैं। इसमे हम कोई बाहरी दबाव या आग्रह नहीं होता। इस प्रकार किये गये काय ही अनुरंजनात्मक क्रियाए होती हैं।

मनोवैज्ञानिक शीवस (Shivers) के अनुसार, "अनुरजन (Recreation) व्यक्ति म तनाव को दूर करके सतुलन उत्पन्न करने वाली प्रक्रिया या प्रक्रि परिणाम है।" अत व्यक्ति को अनुरजन की आवश्यकता उस समय होता है ज वह अपनी ऊब (Boredom) को दूर करना चाहता है। यह ऊब प्राय मानसि या शारीरिक थकान (Fatigue) क कारण होती है अथवा किसी काय नीरसता, एकरसता व निरतरता स भी उत्पन्न होती है। इस ऊब को दूर कर का उपाय अनुरजनात्मक काय करना है। इस प्रकार अनुरजनात्मक क्रियाए ऊब निवारण करने हेतु की जान वाली क्रियाए भी है।

अत "अनुरजनात्मक क्रियाए व क्रियाए है जो व्यक्ति की अत प्रेरणा की जाती हो और जिनके सम्पादन म उन खेल से प्राप्त होने वाले आनन्द की अनुभूति होती है।"[1]

क्षेत्र—अनुरजनात्मक क्रियाओ का क्षेत्र निरतर विस्तृत होता जा रहा है अब ये क्रियाए विद्यालयो म खेल या पाठयक्रम सहगामी प्रवृत्तियो तक ही सीमि न रहकर उसके अतगत विद्यार्थियो की आयु रुचि, आर्थिक स्थिति, ससाधनो की उपलब्धता, सामाजिक परिवेश आदि के आधार पर अन्य अनेक क्रियाकलापो का समावेश हो गया है। वैज्ञानिक और तकनीकी विकास ने अनुरजनात्मक प्रवृत्ति की विविधता मे अभिवृद्धि की है।

शिक्षा मे अनुरजनात्मक प्रवृत्तियो की आवश्यकता एव महत्त्व

शिक्षा मे अनुरजनात्मक प्रवृत्तियो की आवश्यकता और महत्त्व निम्नांकित बिदुओ से स्पष्ट होता है —

(1) आधुनिक युग मे वैज्ञानिक विकास क कारण अवकाश (Leisure) का समय अधिक उपलब्ध होता है जिसक सदुपयोग की आवश्यकता है।

(2) बालक की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही अनुरजनात्मक प्रवृत्ति या खेल की ओर होती है जिसका शैक्षिक उपयोग वांछनीय है।

(3) शिशु, बालक, किशोर, प्रौढ तथा वृद्ध सभी आयु के व्यक्तियो क लिए अनुरजनात्मक क्रियाओ के प्रति स्वस्थ अभिवृत्ति विकसित करना शिक्षा का काय है।

---

1 पत्राचार पाठयक्रम—पाठ सख्या 128 (राज शैक्षिक अनुसधान एव प्रशिक्षण सस्थान उदयपुर), पेज 54

(4) वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के कारण विशेषीकरण (Speciali sation) जीवन के प्रत्येक क्षेत्र म व्याप्त हो गया है। इसमे एक ही प्रकार के काय करने स उत्पन्न नीरसता (Monotonousness) का निवारण वाछनीय है।

(5) व्यक्ति की ऊब (Boredom) को मनोरंजन द्वारा दूर करना अपेक्षित है।

(6) लोकतांत्रिक व्यवस्था म समाज द्वारा मान्य स्वस्थ मनोरंजन की प्रवृत्तियो म भाग लने का प्रशिक्षण देना शिक्षा का एक उद्देश्य है।

(7) औद्योगीकरण एव शहरीकरण के कारण आधुनिक अनुरजनात्मक प्रवृत्तिया म लोगा की रुचि अधिकाधिक होती जा रही है।

(8) आज के व्यस्त सघपमय जीवन म मानसिक तनावो (Mental Tensions) को अनुरजन द्वारा दूर करना स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

(9) अनुरजन क्रियाओ द्वारा बालक की अ तर्निहित क्षमताओं व योग्यताओ का विकास होता है।

(10) बालक की मूल प्रवृत्तिया (Instincts) का शोधन व मार्गान्तीकरण (Sub limation) अनुरजनात्मक प्रवृत्तियो से करना सरल होता है।

विविध अनुरजनात्मक प्रवृत्तिया

विद्यालया म आयोजनीय अनुरजनात्मक प्रवृत्तिया को निम्नांकित रूप से वर्गीकृत किया जा सकता है

(1) बाल प्रवत्तियाँ—छोटी आयु के बालका के शारीरिक और मानसिक विकास क अनुकूल उनकी सृजनात्मकता को प्रोत्साहित करन हेतु ऐसी सरल एव अनुरजनात्मक प्रवृत्तिया का आयोजन किया जाना चाहिए जिन्हे बालक स्वेच्छा स कर सकें तथा जो उनम आन दानुभूति उत्पन्न करे। जैसे—विभिन्न खल, रुचि कार्य, उद्योग कार्यानुभव की वे प्रवृत्तियाँ जो पूव उल्लखित अनुरजनात्मक प्रवत्तिया की मकल्पना के अनुकूल हो।

(2) रुचि काय और अनुरजन (Hobies) रुचि कार्य का आधार व्यक्ति की स्वेच्छा से उद्भूत रुचि है। यह रुचि काय विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियो के प्रति हो सकती है जैसे—सगीत, नत्य, चित्रकला, साहित्यिक खेल, फोटोग्राफी, तरना, पवतारोपण आदि। रुचि काय अवकाश के समय के सदुपयोग और स्वस्थ मनोरजन के उत्तम साधन है।

(3) सगीत और अनुरजन—सगीत नृत्य, अभिनय, मूर्तिकला व चित्रकला की भाति ललित कलाओ के अन्तगत माना जाता है। अन्य ललित कलाओ की भाति सगीत भी बालक के लिए विभिन्न अनुरजनात्मक प्रवृत्तियो के अवसर प्रदान करता है। सगीत को छोटी कक्षाओ म पाठ्यक्रम म स्थान दिया गया है। सगीत सम्बन्धी प्रवत्तियो म बाल गीत, समूह गीत, अभियान गीत, देशभक्तिपूण गीत,

प्रार्थना व राष्ट्रगान, पर्वोत्सव पर गाये जाने वाले गीत सम्मिलित किये जाते हैं। संगीत के अन्तर्गत कण्ठ एवं वाद्य दोनों प्रकार की संगीत सम्बन्धी प्रवृत्ति हो सकती है।

(4) नृत्य और अनुरंजन—नृत्य व संगीत का घनिष्ट सम्बन्ध होता है। आयु वर्ग की क्षमता एवं रुचि के अनुसार लोक-नृत्य या शास्त्रीय नृत्य की प्रवृत्ति बालकों के लिए आयोजित की जा सकती है।

(5) अभिनय एवं अनुरंजन—अभिनय ललित कला का अंग है तथा अभिव्यक्ति का अनुरंजनात्मक साधन है। अभिनय इतिहास, भाषा आदि विषयों की रोचक शिक्षण विधि हो सकती है। विद्यालयों में कभी कभी एकांकी, नाटक, मूकाभिनय, छायाभिनय, विचित्र वेशभूषा प्रदर्शन, छद्म संसद (Mock Parliament) आदि अभिनय सम्बन्धी प्रवृत्तियाँ अनुरंजन एवं शिक्षा दोनों ही दृष्टियों से आयोजनीय हैं।

(6) चित्रकला एवं अनुरंजन—चित्रकला भी आत्माभिव्यक्ति का साधन है। अतः वह शिक्षा एवं अनुरंजन की दृष्टि से उपयोगी है। विभिन्न आयु स्तर व उनकी रुचि के अनुसार रेखांकन, प्राकृतिक चित्रण, पेंटिंग, पेस्टल कलर चित्रण, कार्टून अंकन आदि चित्रकला की अनुरंजनात्मक प्रवृत्तियाँ आयोजित करके अनुरंजन के उद्देश्य की पूर्ति करती हैं। विद्यालय स्तर पर प्रतियोगिताएँ आयोजित कर बालकों को इसके लिए प्रेरणा दी जा सकती है।

(7) साहित्यिक प्रवृत्तियाँ और अनुरंजन—अध्याय आठ में पाठ्येतर सहगामी क्रियाकलापों में ऐसी साहित्यिक प्रवृत्तियों का उल्लेख किया जा चुका है जिनसे विद्यार्थियों का पर्याप्त अनुरंजन होता है। विभिन्न पर्वोत्सव कविता पाठ, कविदरबार, वाद विवाद, भाषण प्रतियोगिता, बाल सभा, अन्त्याक्षरी, कवि सम्मेलन आदि साहित्यिक प्रवृत्तियों में प्रस्तुतकर्त्ता तथा श्रोता व दर्शक दोनों को आनन्द आता है। कक्षा-स्तर के अनुसार इनका आयोजन किया जा सकता है।

(8) उद्योग एवं अनुरंजन—उद्योग सम्बन्धी क्रियाकलाप यद्यपि किसी उद्योग के विधिवत प्रशिक्षण से सम्बन्धित होते हैं किन्तु उनमें भी अनुरंजन करने की क्षमता होती है। यदि पर्याप्त सूझ बूझ से ये प्रवृत्तियाँ आयोजित की जाती हैं तो इनमें बालक काफी रुचि लेते हैं और उन्हें आत्म सन्तोष व मनोरंजन की अनुभूति होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि व कुटीर उद्योग के क्रियाकलापों में बालक रुचि से भाग लेते हैं।

(9) कार्यानुभव तथा अनुरंजन—कार्यानुभव का उद्देश्य समाजोपयोगी उत्पादक कार्य में भाग लेना है। यह रुचि कार्य से भिन्न है, रुचि कार्य में आनन्दानुभूति होती है जबकि उत्पादकता से जुड़ा होने के कारण कार्यानुभव में ऐसा होना आवश्यक नहीं है। किन्तु वास्तविक स्थितियों में कार्यानुभव को रुचि से किये जाने

पर उसम भी आत्म-सन्तोष मिलता है। अत कार्यानुभव से भी अनुरजन कुछ सीमा तक होता है।

(10) समाज सेवा काय और अनुरजन—यदि निस्वाथ भाव से सेवा किया जाये तो आनन्ददायक होता है। श्रमदान, स्काउटस द्वारा मेला म सहायता काय, प्रौढ़ शिक्षा आदि काय समाज सेवा तथा अनुरजन दोनो उद्देश्यो की पूर्ति करते हैं। ऐसे काय विद्यालय म आयोजित किय जाने चाहिए।

उपर्युक्त अनुरजन के स्वरूपो के अतिरिक्त विषयवार पाठ्यक्रम सहगामी प्रवृत्तियो के आधार पर भी अनुरजनात्मक क्रियाओ का वर्गीकरण किया जा सकता है।

अनुरजनात्मक प्रवृत्तियो की व्यवस्था—

शिक्षा म अनुरजन का विशेष महत्त्व है क्य कि अनुरजन शिक्षा का एक रोचक माध्यम होने के साथ साथ विद्यार्थियो क अवकाश क क्षणो म उन्हे स्वस्थ मनोरजन के अवसर भी प्रस्तुत करता है। किन्तु यह जब ही सम्भव होता है जबकि अनुरजनात्मक क्रियाओ का सुनियोजन हो तथा उनका प्रभावी सचालन हो। विद्यार्थियो के लिए इन प्रवृत्तियो म भाग लेने के लिय उत्प्रेरण भी दिया जाना आवश्यक है। बालको की रुचि का भी ध्यान रखना चाहिए ताकि उनसे आनन्दानुभूति हो सके। विद्यार्थियो की क्षमता योग्यता तथा विद्यालय म उपलब्ध साधन सुविधाओ के अनुसार इन प्रवृत्तियो का चुनाव किया जा सकता है। शिक्षक का मार्गदशन, उत्प्रेरण व प्रोत्साहन इनकी सफल क्रियान्विति म सहायक होता है। इनकी व्यवस्था म यह भी सावधानी रखनी है कि सभी छात्रो को इनम नियमित रूप से भाग लेने का अवसर मिले।

इकाई—4

4 स्वास्थ्य एव शारीरिक क्रियाओ द्वारा अच्छी आदतो का निर्माण

इस पुस्तक के खण्ड 'अ' (स्वास्थ्य शिक्षा) के अध्याय—2 म 'अच्छे व्यक्तिगत स्वास्थ्य क लिये स्वस्थ आदतो का अनुसरण/अनुकरण' शीर्षक अ तगत स्वास्थ्य प्रद अच्छी आदतो का विस्तार से विवेचन किया जा चुका है। अत उनकी पुनरावृत्ति करना यहाँ अनुपयुक्त होगा। प्रस्तुत अध्याय मे पूर्वोल्लिखित इन आदतो की स्वास्थ्य एव शारीरिक क्रियाओ द्वारा निर्माण की प्रक्रिया प विचार किया जायगा।

आदतो या अभ्यस्तताओ (Habits) का अर्थ

आदतो की मनोवैज्ञानिक परिभाषाएँ निम्नाकित उल्लेखनीय हैं —

मागन एव गिलिलण्ड (Morgan and Gilliland)—"अनुभव द्वारा प्राप्त व्यवहार के सभी परिवतन आदत कहलाते है। सीखना इन परिवतनो को ग्रहण करने की प्रक्रिया है।"

गरेट (Garrett)—"आदत उस व्यवहार का नाम है जो इतनी बार दोहराया गया है कि वह य त्रवत् हो गया है।"

उपयु क्त परिभाषाओ से स्पष्ट होता है कि आदतो का निर्माण किसी व्यवहार को बार बार दुहराने से होता है जिसम शारीरिक क्रियाओ का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। व्यवहार शारीरिक क्रियाओ द्वारा ही प्रकट होता है जिनकी पुनरावृत्ति उन्ह आदत म परिणित कर देती है। शारीरिक क्रियाए अच्छी भी होती हैं तो कुछ बुरी तथा अवाछनीय होती है। यदि बुरी आदतो पर नियत्रण न किया जाये और उन्ह न सुधारा जाये तो व व्यक्ति के स्वास्थ्य को खराब कर देती हैं तथा उसे असामाजिक भी बना देती हैं। अत शैशवकाल से ही बालको म अच्छी आदतो का निर्माण वाछित शारीरिक क्रियाओ के अभ्यास अर्थात् बार-बार दुहराने या उन्ह नियमित करने के द्वारा किया जा सकता है। जिन अच्छे स्वास्थ्यप्रद एव सामाजिक आदतो का विवेचन पूव म किया जा चुका है वे शारीरिक क्रियाओ को वाछित दिशा म निर्देशित करने स ही निर्मित होती हैं।

शारीरिक क्रियाओ द्वारा अच्छी आदतो के निर्माण के उपाय

शारीरिक क्रियाओ द्वारा अच्छी आदतो के निर्माण के उपाय निम्नांकित हो सकते है —

(1) दृढ़ सकल्प—जब हम किसी शारीरिक क्रिया की उपयोगिता और महत्त्व समझ लेते है तो उसे हम जीवन म अगीकार करना चाहते है। उदाहरणार्थ प्रात उठकर व्यायाम करने व पढने की शारीरिक क्रिया वाछनीय है और यदि यह क्रिया दृढ सकल्प के साथ प्रतिदिन दुहराई जाय तो वह एक अच्छी आदत मे बदल जाती है।

(2) सतत प्रयत्न—किसी अच्छी आदत के निर्माण हेतु केवल सकल्प कर लेने से ही काम नही चलता, बल्कि उस आदत स सम्बद्ध शारीरिक क्रियाओ को अविलम्ब आरम्भ कर उसका सतत अभ्यास भी करना आवश्यक होता है। सतत प्रयत्न मे ही वह क्रिया अच्छी आदत के रूप मे परिणित हो जाती है।

(3) सलग्नता या निरतरता—किसी भी अच्छी आदत को स्थायी बनाने हेतु उसस सम्बद्ध शारीरिक क्रियाओ म सलग्नता या निरन्तरता से काम लेना चाहिए अर्थात् उन क्रियाओ के दुहराने म कोई अनियमितता या उल्लघनता नही होनी चाहिए अन्यथा वे आदत के रूप म स्थायी नही बन पाती।

(4) अभ्यास—वाछनीय शारीरिक क्रियाओ के अभ्यास के अभाव म अच्छी आदतें लुप्त हो सकती है। अत ऐसी क्रियाओ का अभ्यास अवश्य करते रहना चाहिए।

(5) अच्छी आदतो का महत्त्व समझाना—बालको म अच्छी आदतो के निर्माण हेतु उनस सम्बद्ध शारीरिक क्रियाओं का महत्त्व एव जीवन म उपयोगिता बालको को समझानी चाहिए तथा कुछ अनुकरणीय महापुरुषो के उदाहरण भी प्रस्तुत करने चाहिए।

(6) पुरस्कार व दण्ड का उपयोग—अच्छी आदतो व सम्बद्ध क्रियाओ के करने हेतु बालको को पुरस्कृत करना चाहिए तथा अवाछनीय आदतो के लिये उन्हे दण्डित भी किया जा सकता है।

अच्छी आदतो क निर्माण के अतिरिक्त शिक्षक का कर्त्तव्य यह भी है कि वह बालको म बुरी आदतो का भी दूर करें। बुरी आदतें जैसे झूठ बोलना, निन्दा करना, भय करना, झगडा करना, धूम्रपान, सुरापान या अन्य नशे का व्यसन आदि का निर्माण सवेगात्मक अथवा बुरी सगत अर्थात् बुरे वातावरण के कारण होता है। कारण समझकर इन बुरी आदतो का निराकरण करना चाहिए।

बुरी आदतो के निराकरण के उपाय निम्नांकित है —

(1) दृढ सकल्प, (2) आत्म सकेत का दोहराना जैसे 'चोरी करना पाप है', (3) स्थानापन्न आदतो का विकास जैसे नशे की आदत छुडाने हेतु किसी

नवीन पथ की आदत डालना, (4) वातावरण म परिवतन, (5) मानसिक स्वास्थ्य द्वारा सुधार, (6) दण्ड व पुरस्कार का प्रयोग, (7) शारीरिक क्रियाओ म परिवतन का अभ्यास, (8) बुरी आदतो के कारणो का अभाव उत्पन्न कर, (9) अप्रत्य विधि का प्रयोग, (10) बुरी आदतो पर अधिक ध्यान देकर।

प्राय कहा जाता है कि 'चरित्र आदतो का पु ज होता है' (Character is a Bundle of Habits)। यह उक्ति सही है। अच्छी आदतो के निर्माण व बुरी आदतो के निराकरण द्वारा अच्छे चरित्र का विकास किया जा सकता है। इसके लिये आदतो की आधार शारीरिक क्रियाओ म सुधार कर ही चरित्र निर्माण किया जा सकता है। स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा शिक्षण म इस तथ्य को सदा ध्यान म रखना चाहिए।

——

इकाई–5

शारीरिक क्रियाओं द्वारा आंगिक क्षमता का विकास एवं स्नायु मॉसपेशीय समन्वय

5

आंगिक क्षमता का विकास अथवा गामक विकास
(Development of Organic Competency or Motor Development)

अर्थ

गामक विकास अथवा आंगिक क्षमता का विकास का अर्थ "बालक की शक्ति, गति और मांसपेशियों के विकास से तथा पैरों के उचित उपयोग की क्षमता आ जाना है।"[1] गामक विकास से हमारा अभिप्राय सम्पूर्ण शरीर और उसके विभिन्न अवयवों द्वारा की जाने वाली क्रियाओं में सामंजस्य स्थापित होने से है। क्रो एवं क्रो (Crow and Crow) के अनुसार—"गामक विकास से तात्पर्य उन शारीरिक क्रियाओं से है जो नाड़ियों (स्नायुओं) एवं मांसपेशियों की क्रियाओं के समन्वय द्वारा सम्भव होती हैं। इन दोनों के सम्बन्ध से बालक की क्रियाओं में और अधिक स्थिरता तथा स्पष्टता आ जाती है।" दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि बालक में शारीरिक क्रियाएँ करने की क्षमता के विकास को ही गामक विकास कहते हैं। के. एल. शर्मा का यह कथन उपयुक्त है कि—"गामक विकास से हमारा अभिप्राय सम्पूर्ण शरीर और उसके विभिन्न अवयवों द्वारा की जाने वाली क्रियाओं में सामंजस्य होने से है।"[2]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि शारीरिक क्रियाओं द्वारा आंगिक क्षमता अथवा गामक विकास स्नायु मांसपेशीय समन्वय के कारण होता है। बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं के अध्ययन से यह तथ्य भली भांति समझ में आ सकता है।

---

1 डा. एस. एस. माथुर : शिक्षा मनोविज्ञान, पृ. 81

2 के. एल. शर्मा व पारसनाथ राय : शिक्षा मनोविज्ञान, पृ. 221

शारीरिक क्रियाओ द्वारा आगिक क्षमता का विकास एव स्नायु मांसपेशीय समन्वय का विकास-क्रम

शारीरिक क्रियाओ द्वारा गामक अथवा आगिक क्षमता के विकास का एक निश्चित क्रम होता है जो निम्नांकित प्रकार से होता है —

(1) सिर (Head) के क्षेत्र की आगिक क्षमता का विकास– सिर के क्षेत्र से सम्बद्ध तीन क्रियाएँ प्रमुख हैं — (i) सिर का उठना, (ii) नेत्रो का सचालन, (iii) मुस्कराना । नवजात शिशु जन्म के 20 मिनट बाद अपना सिर क्षण भर को उठा लेता है। चार माह का बच्चा सहारे से बिठाने पर सिर सीधा कर सकता है। 6 माह का शिशु बिना सहारे के सिर सीधा कर लेता है तथा गर्दन का उसकी मांसपेशियो के विकसित होने पर इधर-उधर घुमा लेता है। एक सप्ताह का बालक आन्तरिक उत्तेजना होने पर मुस्कराने लगता है और तीन माह में दूसरो को हँसते देख मुस्कराने लगता है।

(2) भुजाओ और हाथो की आगिक क्षमता का विकास—नवजात शिशु में जन्म से ही भुजाओ व हाथो की गति होने लगती है। वह हाथो को इधर उधर फेंकता व पंजे को खोलता बन्द करता है। दूसरे सप्ताह से वह हाथो से वस्तु पकडने का प्रयास करता है किन्तु असमर्थ रहता है। 6 माह के बाद उसके हाथों के स्नायु मांसपेशीय समन्वय हो जाने के कारण वह वस्तु को पकडकर मुह तक ले जाता है तथा एक से अधिक वस्तुओ को पकडने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। एक, दो, तीन व पाँच वर्ष की आयु में वह क्रमश प्याले से दूध पीने, कपडे उतारने, बटन खोलने तथा रेखाएँ खींचने लगता है। चार वर्ष की आयु में वह वस्तुओ को उठाकर रखने व खिलौने सम्भाल कर रखने लगता है।

(3) शरीर के धड (Trunk) की आगिक क्षमता का विकास– जन्म के बाद दो माह का शिशु शरीर को कुछ घुमाने लगता है छ माह में वह करवट बदल सकता है तथा पीठ की मांसपेशियो के विकसित होते ही वह सहारे से बैठने भी लगता है। 9–10 माह में वह स्वय बैठने लगता है।

(4) पैरो (Legs) की आगिक क्षमता का विकास—भ्रूणावस्था में ही गर्भस्थ शिशु पैरो का सचालन करना आरम्भ कर देता है। जन्म के कुछ माह तक वह पैरो को उछालकर मांसपेशियो पर नियन्त्रण करना सीख लेता है। 9 से 15 माह की अवधि मे उसकी अस्थियाँ, टाँगे, धड व अन्य मांसपेशियाँ इतनी विकसित हो जाती हैं कि वह चलने का प्रयास करने लगता है। पहले वह पैरो व हाथो की सहायता से खिसकना व घुटनो के बल रेंगना आरम्भ करता है। 10 माह की आयु में वह डगमगाते हुए खडा होता है। दो वर्ष की आयु में वह चलने व दौडने की क्षमता विकसित कर लेता है। पाँच वर्ष में वह कूदने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है।

उपरोक्त विकास क्रम को देखते हुए यह स्पष्ट होता है कि बालक की शारीरिक क्रियाओं द्वारा गामक क्षमता का विकास स्नायु मांसपेशीय समन्वय के कारण बने ही होता है। डा एस एस माथुर का कथन है कि—"गामक कौशल (गामिक क्षमता) का विकास बालक में सामान्य से विशिष्ट कार्य की तरफ होता है। पहले बालक सामान्य सरल और साधारण कार्यों को करना सीखता है फिर विशिष्ट कार्यों को। यह भी देखा गया है कि फिर वह उन कार्यों को सीखना चाहता है जो सामान्य और विशेष कार्यों का मिश्रण हो। इस प्रकार के कार्य करने में शरीर की विभिन्न मांसपेशियों, हाथ पैर और नेत्रों के समन्वय की आवश्यकता होती है।"

शारीरिक क्रियाओं द्वारा गामिक क्षमता के विकास की उपर्युक्त प्रक्रिया शैशवावस्था, बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था में क्रमश उत्तरोत्तर विकसित होती जाती है। किशोरावस्था में यह विकास बालक की खेल-कूद व प्रतियोगिताओं में रुचि तो व कौशल में दक्षता प्राप्त करने की ओर उन्मुख हो जाती है।

शारीरिक क्रियाओं द्वारा गामिक क्षमता के विकास में लिंग भेद के अनुसार कुछ अन्तर भी होता है। एक बालक बालिका से शक्ति, गति और गामक नैपुण्य (कुशलता) की परीक्षाओं में अधिक उत्कृष्ट सिद्ध होता है। यह भेद दो कारणों से होता है—(i) जन्मजात कारण जो लिंग भेद के आधार पर होते हैं, और (ii) सांस्कृतिक जो समाज में बालिकाओं का कार्य क्षेत्र घर तक ही सीमित कर देते हैं।

गामिक क्षमता के विकास एवं स्नायु मांसपेशीय समन्वय का शैक्षिक महत्त्व

डा रामपालसिंह वर्मा का मत है कि, 'शारीरिक क्रियाओं का बालक के व्यक्तित्व के सन्तुलित विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। गामक क्रियाएँ शरीर के विभिन्न अवयवों के सुडौल विकास में सहायक होती हैं। गामक क्रियाओं के द्वारा विभिन्न इन्द्रियों में समन्वय (Coordination) बढ़ता है जिसके कारण बालक विभिन्न कौशलों में दक्षता प्राप्त कर लेता है। अतएव यह आवश्यक हो जाता है कि विद्यालयों में मानसिक विषयों को सिखाने के साथ साथ ऐसी क्रियाओं का आयोजन भी किया जाय जो बालक के गामक विकास में सहायता करें। गामक क्रियाएँ बालक में हस्तकौशल को बढ़ाती हैं जो बालकों को जीविकोपार्जन का आधार प्रस्तुत करते हैं।" इसके अतिरिक्त डा एस एस माथुर के अनुसार, 'बालक अत्यन्त छोटी उम्र में ही उन नैपुण्यों को सीखने का प्रयास करता है, जिनसे उनमें आत्म साहाय्य और आत्म निर्भरता की भावना का विकास होता है। बालकों को आत्मनिर्भर बनाने वाले कार्य करते समय डाँटना नहीं चाहिए। चूँकि सामान्य गामक योग्यता का कोई महत्त्व नहीं है, इसलिये

शिक्षका को चाहिए कि शैक्षिक कार्यक्रम बनाते समय वे सामान्य गामक योग्यता के ऊपर बल न दें वरन् अपने कार्यक्रमों का आधार गामक योग्यताओं को ही बनायें।"

उपयुक्त कथन शारीरिक क्रियाओं द्वारा आंगिक क्षमता के विकास एवं स्नायु मांसपेशीय समन्वय का शैक्षिक महत्व प्रकट करते हैं। स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा के लिये इस प्रकार के विकास का अत्यधिक महत्व है जिसे शारीरिक शिक्षा प्रशिक्षकों को सदैव ध्यान में रखना चाहिए।

गामक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

(1) लिंग-भेद, (2) अभ्यास का प्रभाव, (3) वातावरण का प्रभाव, (4) शारीरिक वृद्धि का प्रभाव, (5) आयु का प्रभाव, (6) अभिवृत्तियों का प्रभाव, (7) पोषण और सीखने के अवसर, (8) स्वास्थ्य की दशा, (9) मानसिक विकास का प्रभाव, तथा (10) गति योग्यता का विकास, गामक विकास को प्रभावित करने वाले कारक (Factors) है। इनको दृष्टिगत रखते हुए आंगिक क्षमता के विकास का शैक्षिक अनुप्रयोग स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा शिक्षण में किया जाना चाहिए।

शारीरिक शिक्षा की शिक्षण-विधियाँ 6

[(1) अनुकरण विधि, (2) प्रदर्शन विधि, (3) सम्पूर्ण विधि, (4) भाग विधि, (5) सम्पूर्ण-भाग-सम्पूर्ण विधि (Whole-Part-Whole Method), (6) कहानी कथन विधि, (7) कथन विधि ।]

शारीरिक शिक्षा की शिक्षण विधियाँ निम्नांकित हैं—

(1) अनुकरण विधि (Immitation Method)

अर्थ—अनुकरण का अर्थ नकल करना या अवलोकित क्रिया का अनुसरण करना होता है। अनुकरण विधि द्वारा शारीरिक शिक्षा देने का अभिप्राय यह है कि सर्वप्रथम शारीरिक शिक्षा प्रशिक्षक किसी शारीरिक क्रिया, व्यायाम या खेल में अपना प्रदर्शन करते हुए साथ साथ प्रशिक्षणार्थियों को भी अपनी क्रियाओं का अनुकरण करने को कहता है। प्रशिक्षणार्थी प्रशिक्षक की क्रियाओं का ध्यानपूर्वक अवलोकन कर उसका अनुकरण करते हैं।

विधि के सोपान (Steps) निम्नांकित है—

(i) प्रशिक्षक द्वारा सम्पूर्ण क्रिया या उसके किसी भाग का क्रमश क्रियान्वयन—उदाहरणार्थ यदि प्रशिक्षक छात्रों को यौगिक आसन–धनुरासन का प्रशिक्षण देना चाहता है तो वह इस आसन की सम्पूर्ण क्रियाओं को अथवा इस आसन की आंशिक क्रियाओं को क्रमश सम्पन्न कर धनुरासन की स्थिति में आयेगा तथा साथ ही प्रशिक्षणार्थियों को भी अपना अनुकरण करते रहने का निर्देश देगा।

(ii) प्रशिक्षार्थियों द्वारा अनुकरण क्रिया – प्रशिक्षणार्थी प्रशिक्षक को इस आसन की प्रत्येक क्रिया को करते देखकर क्रमश उसके साथ साथ उन क्रियाओं को सम्पन्न करेगा।

(iii) प्रशिक्षक द्वारा त्रुटियों का निराकरण–प्रशिक्षक अपने सामने उसका अनुकरण करते छात्रों की क्रियाओं में यदि कहीं त्रुटि होती है तो वह पुन उसी क्रिया को दुहराकर उन्हें ठीक अनुकरण करने का निर्देश देगा।

(iv) अभ्यास - जब प्रशिक्षणार्थी अनुकरण अथवा अन्य किसी क्रिया का अनुकरण ठीक विधि से कर लेते हैं तो प्रशिक्षक बारबार अपनी क्रियाओं के अनुकरण करने का अभ्यास प्रशिक्षणार्थियों को कराता है जिससे वे उस क्रिया में निष्णात या कुशल हो जायें।

(v) मूल्यांकन प्रशिक्षणार्थियों से अनुकरण द्वारा सीखी क्रियाओं को बिना प्रशिक्षक की क्रियाओं को देख करने को कहेगा व उनका मूल्यांकन करेगा। त्रुटिपूर्ण क्रिया करने वालों का पुन प्रशिक्षण (Re Training) अनुकरण द्वारा ही देगा।

गुण दोष

अनुकरण विधि के गुण यह है कि बालक स्वभाव से ही अनुकरण प्रिय होते हैं और वे अनुकरण द्वारा दूसरों की क्रियाओं को सीख लेते हैं, अतः यह मनोवैज्ञानिक विधि है। त्रुटियों का निवारण भी अनुकरण द्वारा बार-बार अभ्यास कराने से हो जाता है। इसके अतिरिक्त समय की भी बचत होती है क्योंकि प्रशिक्षक प्रशिक्षणार्थियों को व्यक्तिगत प्रशिक्षण देने की अपेक्षा एक साथ अनेक प्रशिक्षार्थियों को प्रशिक्षण दे सकता है।

इस विधि के दोष यह है कि इसके द्वारा व्यक्तिगत विभिन्नताओं के आधार पर प्रशिक्षणार्थियों पर व्यक्तिगत ध्यान नहीं दिया जा सकता। प्रशिक्षणार्थी प्रशिक्षक का अंधानुकरण कर प्रत्येक क्रिया व उसके अंशों को विवेकपूर्ण ढंग से समझने में असमर्थ रहता है।

(2) प्रदर्शन विधि (Demonstration Method)

अर्थ—प्रदर्शन का अर्थ किसी शारीरिक क्रिया का प्रशिक्षक द्वारा प्रदर्शन हेतु सम्पन्न कराना होता है जिसमें प्रशिक्षणार्थी प्रदर्शन का अवलोकन सीखने हेतु करते है। इस विधि का उद्देश्य किसी क्रिया अथवा उसकी सहयोगी क्रियाओं की विधिवत् क्रियान्विति कर प्रशिक्षणार्थियों को उससे सम्बन्धित कौशल का प्रदर्शन करना होता है।

विधि के सोपान—निम्नांकित है—

(1) **प्रदर्शन पूर्व तैयारी**—क्रिया शारीरिक क्रिया, व्यायाम या खेल के प्रदर्शन के पूर्व प्रशिक्षक उस क्रिया से सम्बन्धित उपयुक्त स्थल सम्बन्धित उपकरण साज सामान, प्रशिक्षणार्थियों व स्वयं के प्रदर्शन हेतु बैठने या खड़े होने की व्यवस्था करता है ताकि प्रदर्शन निर्बाध गति से निर्धारित समय पर सम्पन्न हो सके।

(2) **प्रशिक्षणार्थियों का अभिप्रेरण (Motivation)**—प्रशिक्षणार्थी अभिप्रेरण द्वारा किसी क्रिया को सीखने हेतु जिज्ञासु उत्सुक व अभिरुचि एवं अवधान

सहित तैयार होते हैं। बिना अभिप्रेरण के कोई भी प्रदर्शन सार्थक व प्रभावी नहीं हो पाता। अतः प्रदर्शन के पूर्व छात्रों को प्रदर्शनीय क्रिया का अर्थ, महत्त्व एवं उद्देश्य तथा जीवन से उसका सम्बन्ध बतलाकर उन्हें प्रदर्शन के अवलोकन हेतु अभिप्रेरित करना चाहिए। जैसे किसी यौगिक आसन के शारीरिक व मानसिक लाभों से अवगत करा कर छात्रों में उसके सीखने के प्रति जिज्ञासा जाग्रत की जा सकती है।

(3) क्रिया का प्रदर्शन – इस सोपान में शनैः शनैः तथा क्रमशः प्रशिक्षक किसी क्रिया की सहक्रियाओं को इस प्रकार सम्पन्न करता है कि प्रशिक्षणार्थी उन्हें सूक्ष्मता से देख सकें व उससे सम्बद्ध शारीरिक कौशल की विधि को भी समझ सकें। प्रदर्शन के मध्य प्रशिक्षक प्रत्येक सह क्रिया की व्याख्या भी करता है।

(4) प्रशिक्षणार्थियों द्वारा शंका-समाधान—प्रदर्शनोपरान्त प्रशिक्षणार्थी अपनी शंकाओं व कठिनाइयों को प्रशिक्षक के समक्ष प्रस्तुत कर उनका समाधान प्राप्त करते हैं।

(5) मूल्यांकन—अन्त में प्रदर्शन से सम्बद्ध प्रमुख प्रश्न पूछकर प्रशिक्षणार्थियों के उत्तरों से उनका मूल्यांकन किया जाता है।

गुण दोष—प्रदर्शन विधि के गुणों में इस विधि की बोधगम्यता, सरलता तथा रोचकता प्रमुख होती है। प्रशिक्षणार्थी शारीरिक क्रिया, व्यायाम या खेल को उत्सुकता से अवलोकन कर स्वयं भी उसे करने को उत्प्रेरित होते है। उनकी शंकाओं का समाधान भी तत्काल हो जाता है।

इस विधि के दोषों में सर्वप्रमुख यह है कि प्रदर्शन के समय प्रशिक्षक ही क्रियाशील रहता है और प्रशिक्षक मात्र दर्शक बने रहते हैं। प्रदर्शन स्थल से दूर खड़े या बैठे हुए तथा सकोची प्रवृत्ति के प्रशिक्षणार्थी प्रदर्शित क्रिया को ठीक से नहीं देख पाते।

(3) सम्पूर्ण विधि (Whole Method)

सम्पूर्ण विधि में किसी शारीरिक क्रिया, व्यायाम या खेल की सभी क्रियाओं व सह क्रियाओं अथवा खेल के नियमों का अनुसरण आद्योपान्त करके दिखाया जाता है जिसमें शिक्षक व शिक्षार्थी दोनों साथ साथ भाग लेते हैं। उदाहरण के रूप में फुटबाल के खेल का प्रशिक्षण देते समय प्रशिक्षक व प्रशिक्षणार्थी खेल के मैदान में पूरे समय खेल कर इस खेल की सम्पूर्ण क्रियाओं-टॉस करना, किक लगाने, गेंद को रोकने, पास देने, फाउल न करने, नियमों का पालन करने, गोल करने, थ्रो इन, कार्नर किक, फ्री किक, पेनल्टी किक, आफ साइड आदि—का अभ्यास करते हैं।

सम्पूण विधि से सभी सहायक क्रियाश्रा व खेल के नियमा का सामजस्य एव उनका सह सम्ब ध समझ म श्रा जाता है कि तु एक साथ सभी नियमा का समझना भी कठिन हो जाता है तथा उनका अभ्यास भी ठीक प्रकार स नही हो पाता।

(4) भाग विधि (Part Method)

इस विधि म किसी खेल या व्यायाम के विभिन्न भागा या सह क्रियाश्रो का पृथकत अभ्यास कराया जाता है। जैसे उपयु क उदाहरण म फुटबाल खलत समय किसी एक क्रिया गोल करने या पास देने या किक लगाने श्रादि का पृथक रूप स अभ्यास कराया जाता है ताकि टीम म विभिन्न स्थानो पर खेलने वाला का अपने स्थान के अनुसार खेलने का कौशल प्राप्त हो जाय।

भाग विधि यद्यपि सीखने म सुविधाजनक होती है कि तु इस विधि से विभि न सहायक क्रियाश्रो म सम्ब ध व उनका सम्मिलित प्रयाग करने क कौशल का प्रशिक्षण ठीक प्रकार से नही हो पाता।

(5) सम्पूर्ण भाग-सम्पूर्ण भाग विधि (Whole Part Whole Method)

इस विधि म उपयु क्त दोनो प्रकार की विधियो का चक्रवत (Cyclic Order) प्रयोग किया जाता है अर्थात पहले सम्पूण विधि द्वारा किसी शारीरिक क्रिया, व्यायाम या खेल की सम्पूण क्रियाश्रो को एक साथ सम्पन्न करने के बाद पृथक्त एक एक क्रिया या सोपान का अभ्यास कराया जाता है तथा इसके पश्चात पुन सम्पूण क्रिया को दुहराया जाता है। इस प्रकार इस विधि मे चक्रवत् सम्पूर्ण, भाग एव पुन सम्पूण भाग विधि का प्रयोग कर सम्पूण व भाग विधि को पृथक पृथक करने के दोषा स बच कर उनके गुणा का सामजस्य किया जाता है।

यह विधि ही सर्वोत्तम ह कि तु इसम प्रदशन विधि का सयाग भी श्रावश्यक है। इसमे उन सभी विधिया का समन्वय हो जाता है तथा बालक 'करके सीखने (Learning by Doing) के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार किसी व्यायाम या खेल कूद का कौशल अर्जित कर लेते हैं। अभ्यास द्वारा इस कौशल का श्रौर परिमार्जित बना लिया जाता है।

(6) कहानी कथन विधि

यह विधि छोटे बालका के लिए उपयुक्त है क्याकि प्राथमिक या पूव प्राथमिक कक्षाश्रा के छात्र छात्राएँ कहानी के माध्यम म सरल शारीरिक व्यायाम या खेल सीख सकते हैं। यदि शिक्षक कहानी कथन शैली का रोचक विधि स प्रयोग करे श्रौर स्वय प्रदशन कर बालका द्वारा उनका अनुकरण कराये तो यह विधि

अत्यन्त प्रभावी बन सकती है। बाल-गीतों (Rhymes) व संगीत-व्यायाम (Rhythmic Exercises) को किसी कहानी मे पिरो कर उसे रोचक व प्रभावी बनाया जा सकता है।

(7) कथन विधि

इस विधि म प्रशिक्षक किसी व्यायाम या खल के नियम मौखिक रूप से कथन कर प्रशिक्षणार्थियो को समझा कर उन्ह उन क्रियाओ को करन का निर्देश दता है। प्रदशन, अनुकरण तथा अभ्यास के अभाव म यह विधि नीरस व प्रभाव हीन हो जाती है। अत इसे उपर्युक्त विधियो की अपक्षा निकृष्ट कोटि म माना जाता है।

शारीरिक शिक्षा के अन्तगत शारीरिक नियाओ, व्यायाम, खेल कूद आदि क प्रशिक्षण म शारीरिक कौशल (Skill) का विकास करना प्रमुख होता है। अत शारीरिक प्रशिक्षक को प्रशिक्षणार्थियो की आयु, शारीरिक व मानसिक अभिवृद्धि एव विकास के स्तर, अभिरुचि, उपलब्ध साधनो आदि का दृष्टिगत रखत हुए प्रशिक्षण विधियो का प्रयोग करना चाहिए।

---

7 | पाठ-योजना

नवीन राष्ट्रीय शिक्षा याजना के आधार पर निर्मित दस वर्षीय सामान्य विद्यालयी 'राष्ट्रीय पाठ्यक्रम' म 'स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा' विषय को कन्द्रीय शिक्षा क्रम' मे एक अनिवाय विषय के रूप म स्थान दिया गया है। इस पाठ्यक्रम को प्राय सभी राज्यो मे अपना लिया गया है। शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालयो म भी इस विषय के शिक्षण को अनिवाय बना दिया गया है। अन्य विषयो की भाति इस विषय के शिक्षण हेतु प्रशिक्षणार्थियो को अध्यापनाभ्यास क अतगत पाठ योजना का निमाण करना आवश्यक है तथा प्रशिक्षणोपरान्त भी शिक्षण हेतु सक्षिप्त पाठ योजनाएँ बनाकर शिक्षण करना वाछनीय है।

शारीरिक शिक्षा एक प्रायोगिक विषय है जिसम बालको के शारीरिक कौशलो (Skills) का विकास करना प्रमुख शिक्षण उद्देश्य रहता है। कौशल-पाठो (Skill Lessons) का विकास प्राय पूव अध्याय म वर्णित प्रदशन विधि' द्वारा किया जाना अपेक्षित होता है। शारीरिक शिक्षा के अतगत किसी शारीरिक क्रिया व्यायाम तथा खेल कूद का अभ्यास कराया जाता है जो कौशल प्रधान काय होता है कि तु जहा इन क्रियाओ के सैद्धान्तिक पक्ष को यदि प्रकट करना हो तो कहानी कथन या कथन विधि का प्रयोग करना ही उचित रहता है। सम्पूण तथा आश विधिया अथवा उनके सयुक्त रूप की विधि अनुकरण एव प्रदशन विधियो के ही रूपान्तर है जिनके द्वारा कौशलो का प्रशिक्षण देना ही प्रमुख लक्ष्य होता है।

पाठ योजना का अर्थ

पाठ योजना दैनिक पाठो के पढान की शिक्षण योजना होती है जो किसी विषय की वार्षिक योजना के आधार पर निर्मित इकाई योजना का अ श मात्र होती है। शारीरिक शिक्षा के लिए निधारित किसी कक्षा क पाठ्यक्रम का पूर्ण हेतु पहले वार्षिक शिक्षण योजना बनाई जाती है जिसका आधार सत्र म उपलब्ध शिक्षण दिवसा की सख्या होती है। इस वार्षिक योजना को विभिन्न शिक्षण इकाइया (Teaching Units) म विभक्त कर प्रत्यक इकाइ की शिक्षण योजना बनाई जाती है। इसक उपरान्त प्रत्यक इकाई को पाठ योजनाओ म विभक्त कर प्रत्येक पाठ की शिक्षण योजना बनाई जाती है।

पाठ योजना के सोपान (Steps) निम्नांकित हैं—

(1) परिचयात्मक सूचना—

(i) दिनांक, (ii) कालांश, (iii) कक्षा, (iv) विषय, (v) इकाई, (vi) प्रकरण।

(2) उद्देश्य—

(i) ज्ञान, (ii) अवबोध, (iii) ज्ञानोपयोग, (iv) कौशल, (v) अभिरुचि, (vi) अभिवृत्ति।

(3) सहायक शिक्षण-सामग्री।

(4) पूर्व ज्ञान।

(5) पाठोपस्थापन व पाठाभिसूचन (प्रस्तावना)।

(6) पाठ का विकास।

शिक्षण उद्देश्य	शिक्षण बिंदु	अध्ययनाध्यापन सक्रियाएँ	
		शिक्षक-क्रियाएँ	शिक्षार्थी क्रियाएँ

(7) पुनरावृत्ति।

(8) श्यामपट्ट सार।

(9) मूल्यांकन।

(10) नियत कार्य (Assignment)।

पाठ योजना का नमूना

(प्रदर्शन विधि पर आधारित)

(1) परिचयात्मक सूचना—

(i) दिनांक 1 3 90 (ii) कालांश VIII

(ii) कक्षा X (iv) विषय शारीरिक शिक्षा

(v) इकाई 'यौगिक आसन''

(vi) प्रकरण ''हलासन''

(2) उद्देश्य—

(i) ज्ञान—छात्र हलासन की क्रिया विधि एव उसके लाभो का प्रत्या स्मरण कर उन्हे पुन प्रस्तुत कर सकेंगे।

(ii) अवबोध—छात्र हलासन की अन्य आसनो की क्रिया विधि एव लाभों से तुलना कर सकेंगे।

(iii) ज्ञानोपयोग—छात्र हलासन के अभ्यास द्वारा अपनी रीढ की हड्डी, कमर व उदर सबधी रोगो से रक्षा कर सकेंगे।

(iv) कौशल—छात्र हलासन की क्रिया विधि का कौशल प्रदर्शित कर सकेंगे।

(v) अभिरुचि—छात्रो की यौगिक आसनो म अभिरुचि का विकास होगा।

(vi) अभिवृत्ति—छात्रो म यौगिक आसनो को नियमित रूप स करने की अभिवृत्ति उत्पन्न होगी।

(3) सहायक शिक्षण सामग्री—

(i) जमीन (फर्श) या टेबल पर आसन करने हेतु दरी या बिछावन, (ii) हलासन का चार्ट, (iii) आसनोपयोगी वेश भूषा, (iv) श्यामपट्ट व रौल अप बोर्ड।

(4) पूर्व ज्ञान छात्र कक्षा-9 म निर्धारित आसनो का प्रयोग कर चुके है व उनके लाभो स भी परिचित है।

(5) पाठोपस्थापन व पाठ्याभिसूचन—(आसनो का चार्ट दिखाकर छात्रों से प्रश्न पूछे जायेंगे जिनसे उनके द्वारा पूर्व म सीखे आसनो के ज्ञान का मूल्यांकन कर हलासन के चित्र द्वारा उन्हे इस आसन के प्रति उत्प्रेरित किया जायेगा।)

(6) पाठ का विकास —

शिक्षण उद्देश्य (1)	शिक्षण बिन्दु (2)	अध्यापना-यापन सस्थितियाँ	
		शिक्षक क्रियाएँ 3)	शिक्षार्थी-क्रियाएँ (4)
प्रत्यक शिक्षण विदु के अनुरूप उद्देश्य-सख्या को अंकित किया जाएगा। पूर्वत	हलासन की क्रिया विधि (1) पीठ के बल लेटकर हाथो को शरीर की बगल म रखना। (ii) दोनो पैरो को उठाकर 30° व *0° के कोण मे रुककर 90° तक ले जाना। (iii) पेट की मांस पेशियो का संकोचन कर कटि भाग को जमीन से ऊपर उठाना। (iv) पैरो को सिर के पीछे जमीन पर लगाना। (v) इसी स्थिति मे पैरो को और पीछे ले जाना। (vi) दोनो हाथों की अगुलियो को परस्पर फसाकर सिर के पीछे रखना। (vii) सिर के पीछे हाथो को हटाकर पहले की तरह फैलाना।	क्रिया विधि के अनु सार शिक्षक प्रत्यक क्रिया को को प्रदर्शित करेगा तथा साथ साथ क्रियाओ सबधी प्रश्न छात्रा स करेगा तथा छात्रा की शकाओ का समाधान करेगा।	छात्र प्रत्यक क्रिया का ध्यान पूवक अवलोकन करेंगे तथा शिक्षक द्वारा पूछे गए प्रश्नो के उत्तर देंगे व शका होने पर शिक्षक से प्रश्न पूछेंगे।

(7) पुनरावृत्ति—हलासन सम्बन्धी 4 5 ज्ञानात्मक व कौशलात्मक प्रश्न पूछे जाएंगे।

(8) श्यामपट्ट-सार—छात्रों के सहयोग से मुख्य बिन्दु लिखे जायेंगे।

(9) मूल्यांकन—कुछ वस्तुनिष्ठ प्रश्नों द्वारा छात्रों का मूल्यांकन किया जायगा।

(10) नियत कार्य—छात्रों को रोगों में व घर पर अभ्यास करने हेतु कहा जायगा।

इकाई-8

प्रतियोगिताएँ आयोजन सम्बन्धी ज्ञान | 8

(1) नोक आउट प्रतियोगिताएँ

(2) प्रतियोगिता मे विभिन्न समितियो का कार्य एव सहयोग

खेल-प्रतियोगिता—अर्थ एव महत्त्व

'खेल' की परिभाषा देते हुए हरलाक (Hurlock) का कथन है कि—"अन्तिम परिणाम का विचार किये बिना, कोई भी क्रिया जो उससे प्राप्त होने वाले आनन्द के लिये की जाती है, खेल कहलाती है।"[1] क्रो तथा क्रो के अनुसार—"खेल की परिभाषा उस क्रिया के रूप मे की जा सकती है, जिसमे व्यक्ति उस समय लगता है जबकि वह उस काय को करने के लिए स्वप्रेरित और स्वतन्त्र होता है।"[2] रास का मत है कि—"खेल प्रकृति द्वारा प्रशिक्षित करने का एक साधन है।"[3]

उपयु क्त परिभाषाएँ खेल प्रवृत्ति की निम्नांकित विशेषताओ से अवगत कराती है :—

(i) खेल क्रिया स्वच्छन्दता, स्वतन्त्रता और आनन्द स युक्त होती है।

(ii) व्यक्तियो के लिय खेल ज मजात सप्रयोजन क्रिया है जिससे शरीर विकसित व परिपक्व होता है।

(iii) यद्यपि खेल क्रिया स्वच्छन्द एव स्वतन्त्र होती है तथापि यह नियन्त्रण-रहित नही होती। खेल नियमो के कारण शिक्षक, कप्तान या रैफरी का खिलाडिया पर बाह्य नियन्त्रण होता है। इसके साथ ही खिलाडियो का आत्म नियन्त्रण भी होता है जो खल की भावना, मर्यादा व नियमो के अनुसार उन्हे खेलने को प्रेरित करता है।

---

1 Hurlock Child Development, P 321

2 Crow & Crow Child Psychology, P 118

3 Ross Ground work of Educational Psychology, P 103

(iv) खेल खिलाड़ियों में सामाजिक व चारित्रिक गुणों का विकास करता है तथा उनका मनोरंजन भी।

खेल की उपर्युक्त अवधारणा के अनुसार खेलों की स्वस्थ प्रतियोगिताएं आयोजित करना भी आवश्यक होता है जिससे खिलाड़ियों में खेल की भावना, दल (टीम) या नायक के प्रतिनिष्ठा, कौशल में वृद्धि, सर्वोत्कृष्ट प्रदर्शन करने की उत्कण्ठा, सामाजिक गुणों का विकास, राष्ट्रीय भावात्मक एकता आदि का विकास होता है व उन्हें प्रशिक्षण मिलता है। प्रतियोगिताओं में विभिन्न दलों की आक्रामक प्रवृत्ति, अभद्रतापूर्ण व्यवहार, प्रतिशोध की भावना, अवांछनीय एवं हिंसक कार्यवाही नियमों का उल्लंघन आदि अशोभनीय माने जाने चाहिए। खेल की भावना (Sportsman spirit) का अच्छा प्रदर्शन ही खेल प्रतियोगिताओं सफलता का मापदण्ड होना चाहिए।

प्रतियोगिताएं आयोजन सम्बन्धी ज्ञान

खेल प्रतियोगिताओं का आयोजन विद्यालय, ग्राम, विकास-खण्ड या तहसील जिला, राज्य, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर किया जाता है। निम्न स्तर से उच्च स्तरीय प्रतियोगिताओं में क्रमशः जीतने वाले दल (Teams) ही भाग लेते हैं। खेल एवं मेल प्रतियोगिता की स्वस्थ भावना के अनुकूल ही इन प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाना चाहिए। इनके आयोजन सम्बन्धी नियम अन्तर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय स्तर की खेल-परिषदों द्वारा निर्धारित होते हैं।

प्रतियोगिताएं तीन प्रकार की होती हैं —

(1) नाक आउट (Knock out)

(2) लीग कम नॉक आउट (League Cum Knock out)

(3) लीग कम लीग (League Cum League)।

क्योंकि हम उच्च प्राथमिक विद्यालय स्तर के बालक बालिकाओं की खेल प्रतियोगिताओं पर विचार कर रहे हैं, अतः उपर्युक्त प्रथम व द्वितीय दो प्रकार की प्रतियोगिताएं ही विचारणीय हैं क्योंकि नगर, तहसील, जिला स्तर पर नॉक आउट तथा राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर 'लीग कम नॉक आउट' पद्धति में प्रतियोगिताएं होती हैं।

(1) नॉक आउट प्रतियोगिताएं

नॉक आउट प्रतियोगिताओं की पद्धति में एक टीम के हार जाने पर उसे दूसरी बार खेलने का अवसर प्राप्त नहीं होता जबकि विजेता टीम आगे बढ़ती रहती है। इस पद्धति से प्रतियोगिता आयोजित करने हेतु हमें द्विघात (Power of two) संख्या जैसे 4, 8, 16, 32, 64 आदि का ध्यान में रखना होगा। ऐसा करने पर ही हम यह पता लगा सकेंगे कि —

(1) प्रथम दौर (Round) के मैच कौनसे दलों के बीच होंगे।

(2) कितने दलो को आरक्षण (Bye) देनी है ?

प्रतियोगिता मे प्रविष्ठ दलो की सख्या अगर द्विघात मे है (जैसा कि पूव मे वर्णित है) तो प्रथम दौर मे सभी मैच होंगे और किसी आरक्षण (Bye) नही मिलेगी।

प्रतियोगिता म प्रविष्ठ दलो की सख्या अगर द्विघात म नही है जैसे 3, 5, 7, 9, 11, 13, 15 आदि तो ऐसी स्थिति म कुल दलो की सख्या मे आरक्षण (Bye) जोड कर द्विघात (Power of two) सख्या मे लाना होगा।

प्रतियोगिता म कितने आरक्षण दिये जायें, उसके लिये नीचे लिखे सूत्र (Formula) से ज्ञात किया जायेगा—

प्रतियोगिता म भाग लने वाले दलो की सख्या	प्रतियोगिता म प्रविष्ठ दलो की सख्या	प्रतियोगिता मे कुल दलो को दी जाने वाली आरक्षण सख्या
जैसे 8	6	2

आरक्षण के नियम—

(1) सम सख्या (Even Number) मे प्रविष्ठ दलो की सख्या है जैसे— 6 10, 12, 14 लेकिन द्विघात (Power of two) सख्या 4, 8, 16 न हो तो आरक्षण भी सम सख्या क्रमश 2, 6, 4, 2 आदि होगी।

(2) विषम सख्या (Odd Number) म प्रविष्ठ दलो की सख्या है जैसे— 3, 5, 7, 9, 11 आदि तो आरक्षण (Byes) की सख्या भी विषम सख्या 1, 3, 1, 7, 5, 3, 1 होगी।

(3) कुल प्रविष्ठ दलो की सख्या द्विघात सख्या है जैसे 4, 8, 16, 32 तो आरक्षण किसी भी दल का नहीं मिलेगा।

(4) आरक्षण (Byes) दोना ही भागो मे एक-एक कर क्रमश पूर्वार्द्ध एव उत्तराध म दिय जाने चाहिए।

(5) आरक्षण देने म सबसे पहले गत वष के विजेता एव उपविजेता को आरक्षण का लाभ देना चाहिए। ऐसा उपलब्ध नही होने पर श्रेष्ठ दलो को आरक्षण का लाभ देना चाहिए।

प्रतियोगिता हेतु दलों की सारणी (Draw) निकालने से पूर्व निम्नांकित बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए—

(1) प्रतियोगी दलों में से श्रेष्ठ दलों को ऊपर और नीचे के भाग में बांटने चाहिए।

(2) गत वर्षों के निर्णय उपलब्ध हों तो उसके आधार पर ऊपर और नीचे के भाग (Round) में विजेता और उपविजेता को रखना चाहिये।

(3) अलग अलग रखने से प्रतियोगिता के प्रथम या द्वितीय दौर में ही अच्छी टीमों को खेलने का अवसर न मिले।

(2) प्रतियोगिता में विभिन्न समितियों का कार्य एवं सहयोग

प्रतियोगिताओं को सफल बनाने हेतु निम्नांकित समितियों का गठन किया जाना चाहिए—

(1) **प्रतियोगिता संचालन समिति**—यह समिति सबसे प्रमुख होती है और दूसरी सभी समितियों के संयोजक इस समिति के सदस्य होते हैं। इस समिति के निम्नांकित पदाधिकारी होने चाहिए—

(1) प्रधान संरक्षक, (2) संरक्षक, (3) उप संरक्षक, (4) अध्यक्ष, (5) उपाध्यक्ष, (6) संगठन मन्त्री (प्रतियोगिता मन्त्री), (7) मुख्य निर्णायक, (8) सदस्यगण (सभी समितियों के संयोजक)।

(2) **स्वागत समिति**—इस समिति का कार्य विभिन्न दलों एवं आमन्त्रित अतिथियों का स्वागत करना होता है। संयोजक पूर्व प्रतियोगिता का प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जाता है तथा वर्तमान प्रतियोगिता में प्रविष्ठ दलों का स्वागत किया जाता है।

(3) **निमन्त्रण समिति**—जैसा नाम से ही स्पष्ट है इस समिति का कार्य दलों एवं अतिथियों को निमन्त्रण पत्र भेजना होता है।

(4) **भोजन एवं जलपान समिति**—यह समिति भोजन व जलपान का प्रबन्ध करती है।

(5) **निवास समिति**—यह समिति सभी दलों के खिलाड़ियों व अधिकारियों के आवास की सुविधा प्रदान करती है।

(6) **विद्युत एवं माइक समिति**—उद्घाटन, आवास, प्रतियोगिता के अन्तर्गत व समापन समारोह में विद्युत व माइक की व्यवस्था करना इस समिति का काम होता है।

(7) **स्वयंसेवक समिति**—यह समिति स्वयंसेवकों (Volunteers) की

(18) स्वास्थ्य समिति—यह समिति खेल प्रागण, मैदान, आवास गृह, मूत्रालय, शौचालय आदि की स्वच्छता तथा खिलाडियो या अतिथियो के बीमार होने अथवा खेल के समय दुर्घटनाग्रस्त होने पर तत्काल उपयुक्त चिकित्सा व परिचर्या उपलब्ध कराती है। इस समिति मे यथासम्भव कोई डाक्टर हो तो उपयुक्त होता है।

उपयु क्त सभी समितियो म परस्पर सहयोग व समन्वय का काय 'प्रतियोगिता सचालन समिति' करती है। इन समितिया का परस्पर सामजस्य प्रतियोगिता को सफल व प्रभावी बनाता है।

इकाई—9

खेल–मैदान एव धावक–पथ तैयार करने का ज्ञान | 9

खेल-मैदान तैयार करने की विधि

अगल अध्याय–10 म 'खेल सम्ब धी साधारण नियमो की जानकारी' के अ तगत विभिन्न प्रकार के खेलो (बेडमि टन, बॉस्केट बाल, क्रिकेट, फुटबाल, हाकी, कबड्डी, खो-खो, वालीवाल आदि) की सामा य जानकारी व उनके लिय प्रयुक्त मैदानो की निर्धारित मापजोख दी गई है। यहाँ हम किसी एक फुटबाल (जो प्राय सभी उच्च प्राथमिक विद्यालयो तक खेला जाता है) के मैदान की तैयारी की विधि प्रदर्शित रेखा चित्र के आधार पर समझा रहे हैं —

खेल मैदान यह एक आयताकार मैदान 100 से 130 गज लम्बा तथा 50 से 100 गज चौडा होता है। दोनो ओर 20′ लम्बे और 8′ ऊ चे गोल बने होते हैं। चित्र पृष्ठ 146 पर दिया गया है।

रेखाचित्र (पृष्ठ 147) म एक एसा धावक-पथ प्रदर्शित किया गया है जिसके अ दर एक फुटबॉल फील्ड भी निकल सकता है (70 मी × 105 मी माप का) तथा रेखाचित्र मे दर्शाये गये अनुसार ऊँची कूद (High Jump), भाला फेंक (Javelin Throw), गोला फेंक (Shot Put), हैमर थ्रो (Hammer Throw) तथा तश्तरी फेंक (Discuss Throw) के स्थल भी बनाये जा सकते है। धावक पथ के बाहर बगल मे रेखाचित्र म दर्शाये अनुसार लम्बी कूद (Long Jump) का स्थल भी बनाया जा सकता है। धावक पथ पर विभि न प्रकार की दौडो के चि ह अकित हैं।

उपयु क्त धावक पथ चारो ओर से 400 मीटर लम्बाई का (पथ के अ दर के भाग से माप कर) बन सकेगा। इस पथ (Track) की सीधी लम्बाई दोनो ओर से 38 20 मीटर अर्ध व्यास के दो अर्धवृत्त (Semi Circles) मिलकर 242 मीटर लम्बाई का पथ बनाते हैं। इस प्रकार कुल 400 मीटर लम्बाई क सम्पूर्ण
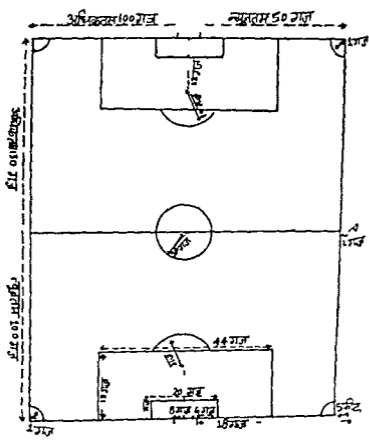
धावक-पथ तैयार करने की विधि
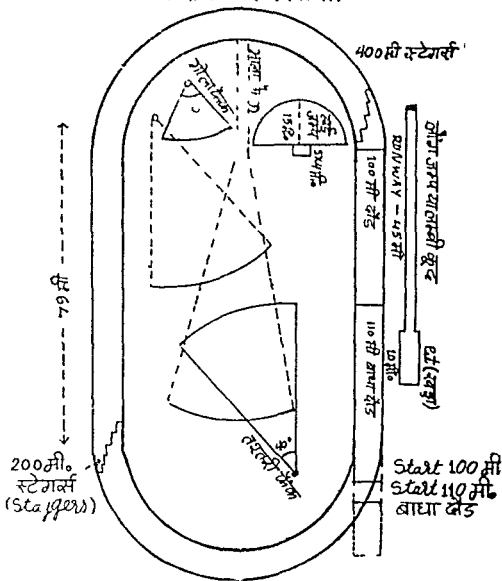
धावक-पथ तैयार हो जाता है। धावक पथ (Track) की चौडाई कम से कम 7 32 मीटर की होनी चाहिए। जिससे कि उसम धावका के लिय छ गलियाँ (Lanes) बनाई जा सकती है। गलियो का विभाजन चून से अकित किया जाता है।

धावक पथ लचीला, कम कठोर तथा रपटने या फिसलने म धावक की सुरक्षा करन म सहायक होना चाहिए। इस पथ की मुख्यत दो सतहे (Layers) हाती है जो नीचे से ऊपर तक क्रमश कठोर स अत्यन्त बारीक निर्माण वस्तु की बनी होती हैं। निचली सतह रोडी व ई ट क टुकडो या टूटी हुई कान्क्रीट से बनाइ जाती है जिसकी मोटाई 15–20 सेंटीमीटर होनी चाहिए जिस वजनी रोलर (Roller) से समतल बनाया जाना चाहिए। बीच की सतह की रोडी व ई ट बारीक होती हैं जिसकी मोटाई 15 सें मी होती है जा धावक-पथ को लचीला बनाती है तथा पानी पडने पर सूखने से बचाती है। सबस ऊपरी सतह धावको क दौडने से प्राय टूटती, फूटती व उखडती रहती है, अत उस फिसलन स बचान हेतु उसका निर्माण आधे जले कायल, कुचली हुई ई टा, लाल बजरी तथा ई टा क चूरे के मिश्रण स बनाया जाता है जिसके ऊपर उस मिश्रण का स्थायी बनाने हेतु पिसी हुई मिट्टी बिछा दी जाती है। इस प्रकार धावक पथ धावको क दौडन हेतु निर्मित किया जाना चाहिए।

———

इकाई–10

खेल सम्बन्धी साधारण नियमो की जानकारी

10

खेलकूद के प्रकार एव पद्धतियाँ

(क) एथलेटिक्स--इसके अ तगत दौड, वाधा दौड, ऊँची कूद, लम्बी कूद, पाल वाल्ट, जैवलिन, चक्का तुश्तरी, गोला फेंक, रस्साकशी, रिले दौड आदि शामिल हैं। य स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का प्रात्साहित करते है। इसक लिय उपयुक्त ट्रैक, स्थान तथा खेल सामग्रिया की आवश्यकता हाती है।

(ख) जिमनेस्टिक्स--शरीर लचीला बनाने वाला व्यायाम जिमनेस्टिक्स कहलाता है। इसके लिए विशेष व्यायामशाला की जरूरत होती है जिसम पैरेलल बार, हॉरीजॉन्टलबार, रिंग आदि लग हाते है। प्रशिक्षित जिमनास्टिक अनुदेशक की देख रेख म छात्र विभिन्न जिमनेस्टिक के हुनर सीखत हैं।

(ग) पी टी (ड्रिल)—ड्रिल स्कूला म शारीरिक शिक्षा की लोकप्रिय प्रचलित प्रणाली है। जिसम एक शारीरिक शिक्षक की देखरेख म शारीरिक व्यायाम किय जाते हैं।

एथलेटिक्स--एथलेटिक्स मुकावलो को दो वर्गों म बाँटा जा सकता है—(1) ट्रैक (2) फील्ड (मैदान)। ट्रैक मुकावला ने मध्यम दूरी की दौड़ें, रिले दौड़ें, बाधा दौडे तथा चलने की प्रतियोगिताएँ शामिल है, जबकि मैदानी प्रतियोगिताओ म गाला चक्का फेंकने के मुकाबले व कुदानें होती हैं।

ट्रैक प्रतिस्पर्धाओ म 100 मीटर, 200 मीटर, 400 मीटर की दौड़ें तथा 800 मीटर व 1500 मीटर की लम्बी दौड़ें शामिल है। इसके अलावा रिल व हुडल दौड भी ट्रैक प्रतियोगिता के अ तगत आती है। फील्ड मुकाबला म भाला, गोला, चक्का व हुअर फेंक तथा ऊँची कूद, पोल वाल्ट, लम्बी कूद, त्रिकूद, डिकेथलान व हैप्थलन आदि शामिल है।

100 मीटर, 400 मीटर, 800 मीटर की दौडो के लिए एक रैफरी की जरूरत होती है। अधिक प्रतियागी हान पर चार या इसस अधिक रैफरियो की

जरूरत होती है । दो टाइम कीपर व एक स्टाटर की जरूरत होती है। ट्रैक फील्ड तथा स्टेडियम के बाहर के मुकाबला क लिय अलग अलग रैफरी नियुक्त किए जात है । जब जज कोई निणय नही कर पाये तब रैफरी फैसला करता है । वही अलग अलग मुकाबलो के लिए जज नियुक्त करते हैं । स्पर्धा म कितने चांस लने हैं यह घोषणा रैफरी जजा के सामने करता है रैफरी ही दूरियो और समय के माप आदि की देखभाल करता है वह किमी प्रतियोगी को गलत आचरण के कारण स्पर्धा से हटने का आदश दे सकता है । रैफरी मुकाबले का रद्द कर उस दुबारा करवाने का भी आदश दे सकता है । मुकाबला खत्म हान पर रैफरी परिणाम पत्र पर हस्ता क्षर करके रिकाडर को दता है ।

दौड प्रतियोगिता म प्रतियोगी नगे पैरा अथवा जूते पहनकर भाग ल सकता है । जूता की एडी की मोटाई तलव की तुलना म 25 मिलीमीटर से अधिक नही होनी चाहिये । जो दौड लेन म होती है उनम अपनी निर्धारित लेन म ही प्रति योगी को रहना पडता है । यदि कोई प्रतियोगी अपनी मरजी स ट्रैक स हट जाता ह तो उस दुबारा दौड जारी रखने की अनुमति नही दी जाती । सडक दौडो म जज की अनुमति से प्रतियोगी माग छाड सकता है, मगर शत यह है कि ऐसा करने से उसक कुल तय किय जाने वाल माग की दूरी म कमी न हो । फील्ड मुकाबला म प्रतियोगी एक दौर म केवल एक प्रयास के परिणाम ही अकित करवा सकता ह । फील्ड मुकाबलो के लिए अधिकारी सकेत से प्रतियोगी को बताता है कि सब कुछ तैयार है तब प्रतियोगी प्रयास शुरू कर सकता है । यदि प्रतियोगी ज्यादा देरी लगाय तो रैफरी उचित समझने पर प्रतियोगी के प्रयास का रद्द कर फाल्ट दे सकता है । निरूद लम्बी कूद, तस्तरी व गोला फेक के लिए दो मिनिट का समय उचित माना जा सकता है । पोल वाल्ट म 3 मिनिट का समय उचित समझा जा सकता है ।

दौड मुकाबले

दौड समाप्ति रेखा से आरम्भ रेखा क सबस परे के किनारे तक दूरी मापी जाती है । सम्मानित रखा के उस किनार से माप लिया जाता है जो शुरुआत रेखा म सबस निकट होता है ।

प्रस्थान--जिन दूरियो पर धावका को घुमावदार दौड पट्टी पर दौडना होता है उनम एथलीट एक सीधी रखा म खडे न होकर बिखर कर खडे होते हैं । ताकि सभी खिलाडियो को बराबर दूरी पार करनी पडे । दौड शुरू करवाने वाला बोलता है, 'आन यूअर माक' । अगर एथलीट सकेत मिलने के बाद तक शुरुआत रेखा पर न आय तो उस चेतावनी दी जाती है । यदि वह दो बार गलत शुरुआत करता है ता उसे मुकाबले स निकाल दिया जाता है । 800 मीटर तक की सभी दौडा म खिलाडियो को अपने गलियारे म रहना होता है । 800 मीटर दौड म

भी दौड पथ के पहले दो घुमावो तक अपने गलियारे में ही रहना होता है। यदि कोई एथलीट जानबूझ कर अपने गलियारे को छोडता है तो उसे मुकाबले से बाहर कर दिया जाता है। यदि कोई एथलीट दूसरे एथलीट को बाधा पहुंचाता है या उसके आगे से रास्ता पार करता है तो गलती करने वाले को मुकाबले से हटाया जा सकता है। एथलीट का धड दौड खत्म होने वाली लाईन के पहले किनारे के ऊपर ऊर्ध्वाधर (वर्टीकल) आता है वही विजेता माना जाता है। स्टापवाच से समय मापा जाता है।

तश्तरी फेंक

प्रक्षेपण मुकाबले के लिए पर्चियां निकालकर फैसला किया जाता है कि एथलीट को किस क्रम में स्पर्धा में भाग लेना है अगर कोई खिलाडी जानबूझकर अपने बारी लेने में देरी करता है तो उसे गलती के रूप में रिकार्ड किया जाता है। खिलाडियो को अँगुलियो पर टेप लगाने की अनुमति नही होती। खिलाडी की पोशाक ऐसी होनी चाहिए कि गीली होने पर भी उसके आर-पार दिखाई न दे। खिलाडी नगे पैरो अथवा जूते पहन खेल में भाग ले सकता है। जूते के तले पर ज्यादा से ज्यादा 6 और एडी पर दो स्पाइट लगाने की इजाजत होती है। तश्तरी एक वृत्त के भीतर से फेंकी जाती है। इसे वृत्त खण्ड के अन्दर ही गिरना चाहिये। यदि आठ से कम प्रतियोगी हो तो आमतौर पर प्रत्येक एथलीट को छह मौके तश्तरी फेंकने के लिए दिए जाते हैं। जो एथलीट अधिकतम दूरी तक तश्तरी फेंकता है वे विजेता होता है। तश्तरी फेंकने की हरकत जिस समय शुरू की जाती है उस समय एथलीट को स्थिर खडा रहना चाहिए। वह तश्तरी किसी भी तरह पकड सकता है और उसे फेंकने के लिये किसी भी तरह की तकनीक का इस्तेमाल कर सकता है। यदि प्रक्षेपण क्रिया शुरू करने के बाद एथलीट के शरीर का कोई हिस्सा वृत्त को सीमांकित करती रिंग के ऊपरी भाग को अथवा उसके पास जमीन के किसी भाग को छूता है तो प्रक्षेपण फाउल माना जायगा। यह नियम तब तक लागू रहेगा जब तक तश्तरी अधर में उडान भरती रहेगी। तश्तरी के जमीन छू लेने के बाद एथलीट को वृत्त में बांटने वाली रेखा के पीछे वाले भाग से बाहर निकलना चाहिए। तश्तरी वृत्त खण्ड की रेखाओं के भीतरी किनार के अन्दर ही तश्तरी गिरनी चाहिए। रिंग के भीतरी किनारे में उस बिन्दु तक की दूरी मापी जाती है जो तश्तरी गिरने से बनती है और रिंग के भीतरी किनारे से सबसे नजदीक होती है। माप फेंकने के वृत्त के केन्द्र को उस बिन्दु से मिलाने वाली रेखा पर लिया जाता है। मापते समय [illegible] अंकित किया जाता है। मुकाबले के फैसले के लिए पाच निर्णायक [illegible] होते हैं। दो [illegible] भीतर एथलीट द्वारा की जाने वाली [illegible] करते हैं। वह [illegible]

नही होता कि तश्तरी कहां गिरेगी। इसलिए तीन निर्णायक इस काम के लिये नियुक्त किये जाते हैं।

हर्डल दौड़—हर्डल दौड़ 110 मीटर और 400 मीटर दूरियों पर पुरुषों के लिए होती है और 100 मीटर पर छात्राओं के लिए होती है। हर्डल दौड़ लेन में होती है और हर लेन में दस हर्डल होते है। हर्डल धातु से बने होते है तथा आड़ा रखा छड़ लकड़ी का होता है। ये हर्डल ऐसे होते हैं कि 4 किलोग्राम तक का वजन आड़े रखे छड़ के ऊपरी किनारे के ठीक बीचोबीच लगाया जाय तो वह उलट जाय। छात्राओं की 100 मीटर की दौड़ के लिए हर्डल की ऊँचाई 0 838 मीटर अथवा दो फुट 9 इंच ऊँचाई होती है। छात्रों की 110 हर्डल मीटर दौड़ के लिए ऊँचाई 3 फुट 3 इंच होती है। छात्रों की 400 मीटर हर्डल दौड़ के लिए दो फुट 11 इंच ऊँचाई होती है। छात्रों की 110 मीटर मुकाबले के लिए पहला हर्डल 13 72 मीटर तथा शेष एक दूसरे से 9 14 मीटर पर और अंतिम से दौड़ समाप्ति रेखा 14 02 मीटर पर होती है। 400 मीटर दौड़ में पहला हर्डल 45 मीटर पर व शेष एक दूसरे से 35 मीटर दूरी पर होते हैं और अंतिम हर्डल से समाप्ति रेखा 40 मीटर पर होती है। छात्राओं की 100 मीटर दौड़ में पहला हर्डल शुरूआत रेखा से 13 मीटर की दूरी पर और शेष 8 5 मीटर अन्तर पर रखे जाते है। अन्तिम हर्डल दौड़ समाप्ति रेखा से 10 5 मीटर पर होती है। यदि एथलीट किसी हर्डल पर अपनी टांग अथवा पाँव घसीटता है अथवा अपने गलियारे के अलावा और किसी गलियारे में रखे हर्डल पार करता है या अपने पाँव से जानबूझ कर हर्डल नीचे गिरा देता है तो उसे प्रतियोगिता से निकाल दिया जाता है। जो एथलीट सबसे पहले या सबसे कम समय में दौड़ पूरी कर लेता है वही दौड़ का विजेता होता है।

मुख्य खेल—

(1) बैडमिंटन—यह एक ऐसा खेल है जो दो या चार खिलाड़ियों के बीच खेला जाता है और हर खिलाड़ी कार्क और पंखों की बनी शटल को नेट से ऊपर आर पार रैकेट से खेलता है। नेट मैदान को दो भागों में बाँटता है। इसमे कोशिश यह की जाती है कि शटल विरोधी खिलाड़ी के कोर्ट में नेट के पास होती हुई जमीन पर गिर पड़े अथवा विरोधी खिलाड़ी उसे कोर्ट से बाहर फेंक जाये।

बैडमिन्टन का कोर्ट इस प्रकार का होता है कि खिलाड़ी फिसले नहीं और जहाँ धूल न उड़े। खिलाड़ी के चोट न लगे इसलिए यह लकड़ी का बनाया जाता है। कोर्ट पर निशान सफेद रंग के लगाये जाते हैं। लाइनें डेढ़ इंच चौड़ी होती हैं तथा ये कोर्ट के अन्दर ही मानी जाती है। कोर्ट जिन दीवारों से घिरा होता है उनमें से किनारे की तरफ की दीवारें कम से कम 3 फुट और पीछे सिरों की दीवारें

गम से कम 5 फुट दूर होनी चाहिए। कोट में हवा व प्रकाश की व्यवस्था होनी चाहिए कि हवा के कारण शटल पर किसी तरह की हरकत न हो। कोट के बीच में नेट सुतली का बना हुआ और जालीदार होना चाहिए। जाली का एक खाना 2/8 × 3/4 इंच होता है। यह खूब कस कर तना होता है। ऊपरी किनारा खम्बा के साथ एक तल पर होता है। ये दोनों खम्बे बाहरी सीमा रेखा पर कोट की सतह पर गाड़े जाने चाहिए। खेल आमतौर पर लगातार चलता है हालांकि कुछ खेल संघ दूसरे और तीसरे गेम के बीच विश्राम का समय देते हैं। भारत में यह समय 5 मिनिट का होता है। हर गेम के बाद खिलाड़ी साइड बदलते हैं। तीसरी गेम में भी जब अधिक अंक प्राप्त करने वाला खिलाड़ी 15 अंकों के खेल में 2 अंक, 11 अंक के गेम में 6 अंक और 21 अंकों के खेल में 11 अंक बना लेता है तो भी पाले बदले जाते हैं। जो साइड सर्विस कर रही होती है वही अंक ले सकती है। युगल और छात्रों के एकल में गेम 2 अथवा 15 अंक के हो सकते हैं। छात्राओं की एकल गेम 11 अंक की होती है।

मैच का फैसला तीन गेम खेल कर होता है। अंक गणना का जिम्मेदार केवल एम्पायर ही होता है। एम्पायर चाहे तो सर्विस जज और लाइन मैन रख सकता है। यदि खेल के अंतिम हिस्से में दोनों खिलाड़ी एक स्कोर पर ही पहुँच जाते हैं तो नया निर्णायक स्कोर निश्चित करके गेम को बढ़ाकर सैट किया जाता है। खिलाड़ी जब गेम सैट करना चाहता है तो ऐसा उसे अगली सर्विस किये जाने से पहले कर लेना चाहिए। गेम सैट करने के बाद स्कोर 0 से शुरू होता है और जैसे फैसला हो उसके मुताबिक 2, 3, 5 तक चलता है। फाइनल स्कोर गेम में कुल स्कोर किये अंकों के मुताबिक ही अंकित किया जाता है। यदि गेम सैट की गई हो तो सर्विस करने वाले के कुल अंक कितने हैं इसके हिसाब से कोट का फैसला होता है। सर्विस सामने वाली नेट के पार तिरछे कोट में की जाती है। शटल का तब ठीक चाल समझा जाता है जब औसत ताकत का खिलाड़ी कोट की पिछली बाउण्ड्री से पूरी अण्डर हैंड स्ट्रोक लगाये और शटल ऊपर उठने के बाद किनारा रेखा में समानान्तर चलने के बाद दूसरी ओर की सीमा रेखा से 30 मीटर पहले और 76 मीटर से अधिक परे न गिरे। यदि सर्विस करने वाला फाल्ट करता है तो उसके विरोधी खिलाड़ी को सर्विस का अधिकार मिल जाता है। यदि दूसरा खिलाड़ी फाल्ट करता है तो सर्विस करने वाले खिलाड़ी को अंक मिल जाता है। सर्विस करते समय फाल्ट निम्नलिखित हालतों में होती है—

(1) यदि शटल कमर से ऊपर की ऊँचाई पर हिट किया जाय।

(2) यदि रैकेट का माथा हत्थी के स्तर से पूरी तरह नीचे न हो।

(3) यदि सर्विस करने वाले के पांव सही सर्विस कोट में न हों।

(4) उसके दोनो पाव फश पर न हा।

(5) यदि विराधी खिलाडी को चकमा देने की कोई हरकत की जाती है अथवा सर्विस पाने वाला सही कोट म नहीं खडा हाता।

(6) यदि शटल हिट किये जाने से पहले ही रिसीवर अपने स्थान से हिल जाता है या शटल सर्विस कोट से बाहर जा गिरती है।

बास्केट बाल

बास्केटबाल – यह एक ऐसा खेल है जो दो टीमो के बीच द्रुतगति स खेला जाता है। प्रत्येक टीम मे पाच-पाँच खिलाडी होत है। य खिलाडी गेद हाथ से पास ल सक्त है अथवा लुढका सकते है अथवा फेंक सकते हैं या उसे थोडा मार सकते है। हाथ को बल्ला बनाकर भी गेद पर प्रहार किया जा सकता है, प्रत्येक खिलाडी को डिबल करने की इजाजत भी होती है।

मैदान—मेदान की लम्बाई 26 मीटर और चौडाइ 24 मीटर होती है। मदान मे छत कम स कम 7 मीटर की ऊँचाई पर होनी चाहिए। खल घास के अलावा किसी सख्त सतह पर भी खेला जा सकता है। मैदान की रेखाओ की चौडाई 5 स मी होनी चाहिए। मैदान के चारो तरफ सीमा रेखाओ से एक मीटर दूरी तक काई वाधा नही होनी चाहिए। मैदान के मध्य म बने गोल का अद्ध-व्यास 1 80 मीटर होना चाहिए। आग तुक टीम चुनाव करती है कि उस कौनसी साइड चुननी हे। यदि मैदान किसी टीम का न हो तो टास स इसका फसला किया जाता है। आधा समय खेलने के बाद टीम अपनी साइडें अथवा पाल बदल लेती है। शुरू म प्रत्येक टीम म मैदान मे आने के समय पाच पाच खिलाडी हात है और पाच ही स्थानापन्न खिलाडी हात है। खल जम्प बाल के साथ शुरू किया जाता है। वास्केट म ऊपर स गिरकर गेंद उसम कुछ समय क लिए रह या नीचे गिर जाए तो गोल हो जाता है। फील्ड गोल करने पर दा अक और फ्री थ्रो गोल किए जाने पर टीम को एक अक मिलता है। खेल बीस-बीस मिनिट के दो सत्रो म खेला जाता है। बीच म 10 स 15 मिनिट का विश्राम हाता है।

खेल जम्प बाल स साथ शुरू किया जाता है। मध्य मदान म बने वृत्त म खडा रैफरी गेंद ऊपर फेंकता है। विराधी टीमा क जा खिलाडी वहाँ पर खडे हात हैं, व ऊपर कूदकर गेंद को पर धकेलने का प्रयास करते हैं। खिलाडिया क लिए जरूरी है कि व मदान क अपने भाग के अद्ध वृत्त म खडे हो। उनका एक पाँव सेंटर लाइन को छूते रहना चाहिए। गेंद के जमीन पर गिरने स अन्य खिलाडी म छूने मे पहले खिलाडी को दो बार उस टैप करने की अनुमति होती है। गेंद जब तक टप नहीं कर ली जाती खिलाडिया को अपनी जगह पर रहना चाहिए। अन्य

खिलाडियो को उस वृत्त से बाहर रहकर जम्प करने वाले खिलाडी की कोशिश म किसी तरह रुकावट नही डालनी चाहिय। गेंद बास्कट म अथवा उसके ऊपर हा तो किसी को बैक बार्ड अथवा बास्केट छूने की इजाजत नही होती। प्रतिबंधित क्षत्र म आक्रामक खिलाडी रिंग से नीचे आने स पहले गेंद को छू नही सकता चाहे वह गोल अथवा पास करना चाहता हो। गेंद रिंग का छू लेने पर वह गिरती गेंद को अवश्य छू सकता है। तब अक स्कोर नही किया जा सकता। विरोधी पक्ष वायलिशन के हाने के स्थान के निकट की किनारा रेखा स थ्रो इन करते हैं।

क्रिकेट

वतमान म क्रिकेट बहुत ही लोकप्रिय खेल हो गया है। यह खेल 11 खिलाडियो की दो टीमो के बीच खेला जाता है।

जिस पिच पर यह खेल खेला जाता है उसम विकटे एक दूसरे से 22 गज की दूरी पर लगी होती है। इस मेल म फील्डिंग करने वाली टीम बल्लेबाजो को आऊट करने का प्रयास करती है तथा बल्लेबाजी करने वाली टीम अधिक से अधिक रन बनाने की कोशिश करती है। प्रत्यक टीम बारी बारी स दोना पारियाँ खेलती है। दो पारियो म अधिक रन बनाने वाली टीम मच जीत जाती है। आजकल एक दिवसीय मैच अधिक लोकप्रिय हो गए है। इसमे प्रत्येक टीम 50 60 ओवर खेलती है। जो टीम एक पारी म ज्यादा रन बना लेती है वह विजेता रहती है।

पिच —यह दो बालिंग क्रीजो के बीच का क्षेत्र है। दाना ओर के विकिटो के मध्य बिंदु को मिलाने वाली रेखा के दोना ओर 5 फुट तक यह क्षेत्र होना है। पिच मैटिंग की अथवा सतह घास की बनी हो सकती है। खेल से पहले घास की कटाई छँटाई करके इस समतल कर दिया जाता है। खेल क्षेत्र एक सीमा रेखा अथवा बाउण्ड्री क अंदर हाता है। पिच के दोना सिरो पर विकटे गडी होती है और इन पर दा क्षैतिज गिल्लिया रखी होती है।

खेल के लिए निश्चित घण्टे अथवा निश्चित आवर निर्धारित किए जा सकते हैं। दोनो ही हालातो म यदि परिणाम पहले निकल आय ता खेल वही बन्द हो जाता है। दो बल्लेबाज विकिटा पर आकर स्थान लेते है। फील्डिंग करने वाली टीम का खिलाडी एक आर से गेंदबाजी करता है। सामने वाला बल्लेबाज अपने विकिट की रक्षा करते हुए गेंद को हीट करता है। यदि गेंद बाउण्ड्री के अन्दर रह जाती है तो किसी क्षेत्र रक्षक के वापस गेंद फेंकने तक बल्लेबाज जितने रन ले लेत हैं, वह उनके खाते म जुड जाते है। यदि गेंद बाउण्ड्री के बाहर निकल जाती है तो बल्लेबाजी को चार रन मिलत है। यदि गेद हवा म तैरती हुई बाउण्ड्री के बाहर निकल जाती है तो बल्लेबाज को 6 रन मिलत हैं। विरोधी टीम के खिलाडी मैदान के अलग अलग भागो म इस तरह खडे होते है कि बल्ले-

बाज की हर गेंद को रोक सके और अधिक रन न बनने दे। बल्लबाज के आउट होने अथवा रन बनने का फैसला अम्पायर करते हैं। दोनों छोर पर दो अम्पायर खड़े रहते है। जिस छोर से गेंदबाजी की जाती है उसी छोर के अपायर को निर्णय देने का अधिकार होता है। यदि कोई टीम अपनी पहली पारी के तुरंत बाद ही दूसरी पारी शुरू करने को मजबूर हो तो इसे फालो आन कहा जाता है। गेंदबाज एक आवर मे 6 गेंद फेंकता है। एक ही गेंदबाज लगातार दो ओवर एक साथ नहीं फेंक सकता। विकिट की दोनो तरफ से बारी बारी से एक एक आवर में गेंद फेंकी जाती है।

स्कोरिंग—बल्लेबाजो का प्रयास अधिक से अधिक रन बनाना होता है। यदि दोनो बल्लेबाज गेंद हिट किये जाने के बाद एक दूसरे को लांघ लेते हैं और सामने वाले विकट पर पहुँच जाते तो रन बन जाता है। यदि बल्लबाज के सामने वाली विकिट तक पहुँचने से पहले ही क्षेत्र रक्षक की गेंद विकिट से लग जाती है तो वह खिलाडी रन आउट माना जाता है। ऐसे रन जो बल्ले से गेंद हिट किये बिना ही बनाये जायें अतिरिक्त रन कहलाते हैं। ऐसे रन बाइड बाल बाइ लेग बाई अथवा नो बाल पर मिलते हैं। कोई भी खिलाडी निम्नलिखित तरीको से आउट हो सकता है—

(1) खेलने के लिए आता हुआ बल्लबाज यदि जानबूझकर दो मिनिट से अधिक समय लेता है।

(2) बल्लेबाज गेंद खेलने की कोशिश करे और गेद उसके पाव में लग जाय तथा खिलाडी विकिट के सामने हो तो उसे पगबाधा आउट करार दे दिया जाता है अथवा खिलाडी गेद खेलने से चूक जाये और गेद उसके विकिट को उडा दे।

(3) बल्लेबाज के गेंद हिट करने के बाद तैरती हुई गेंद को कोई क्षेत्र रक्षक कैच कर ले।

(4) रन बनाने के प्रयास में क्षेत्र रक्षक के विकिटो से बल्लेबाज के आने से पहले गेद लगाने पर बल्लेबाज आउट हो जाता है।

परिणाम—दोनो टीम के अपनी दोनो पारिया पूरी कर लेने के बाद जिस टीम के अधिक रन बन जाते है वह टीम विजेता होती है। यदि निर्धारित अवधि मे दोनो में से किसी टीम की पारी अधूरी रहती है तो मैच बराबरी पर छूटा माना जाता है। यदि दोनो टीमो के रन बराबर रहते है तो मैच टाई हो जाते है। सीमित आवर क्रिकेट में वह टीम जीतती है जो अधिक रन बनाती है।

फुटबाल

फुटबाल दुनिया का सबसे प्रसिद्ध खेल है। यह खेल भी दो टीमो के बीच होता है तथा प्रत्येक टीम में 11 11 खिलाडी होते है।

मदान—फुटवाल का मैदान 50 100 गज चौडा तथा 100 130 गज लम्बा होता है। इनके दोनो किनारा पर गाल बने होने हैं और गोल क्षेत्र पेनल्टी क्षेत्र मे घिरा होता है। गोल खम्भ और उन पर रखा आडा छड सभी एक चौडाइ वे हात हैं। यह चौडाई गोल रेखा की चौडाई के बराबर होता है। मैदान के हर कोन पर लकडी की एक छडी पर पताका हाती है।

फुटवाल खेल दो सत्रो म होता है। पहले सत्र का पूर्वार्द्ध दूसरे को उत्तराद्ध कहते हैं। प्रत्यक सत्र 45 मिनिट का होता है। आधा समय गुजरने के बाद 5 मिनिट का समय विश्राम होता है तथा टीम अपना पाला बदल लती है। किक पहल लगान का हक पाने के लिये दोनो कप्तान शुरू म टोस करत हैं। टोस जीतने वाली टीम खेल शुरू होत ही गद को मध्यबिन्दु से विरोधी टीम की तरफ वाल मैदान म फेंकने का प्रयास करती है। गेद खेल जाने तक कोई अन्य खिलाडी सटर सक्ल म प्रवश नही कर सकता है। एक बार खेले जाने क बाद गद को पूरी परिधि जितनी दूरी घूमनी होगी और किक से खेल शुरू करने वाले खिलाडी को पुन किक लगाने म उस समय तक रुके रहने होगा जब तक किसी दूसर खिलाडी न उसे छू लिया हो। गोल हो जाने के बाद खेल पुन इसी तरीके स शुरू किया जाता है। जिस टीम पर गोल किया हुआ होता है वही पुन खेल शुरू करती है। खेल का दूसरा सत्र शुरू करने के समय वह टीम गेद किक करती है। जिसने पहल सत्र म एसा नही किया होता औ का मौका छोडकर गालकीपर ही एक मात्र खिलाडी होता है जिस अपने हाथो अथवा बाजू स गेद खेलने की इजाजत होती है और एसा भी वह अपने गोल क्षेत्र के अन्दर ही कर सकता है। मगर खिलाडी गेंद राकने, इस काबू करन, पास दने उसके साथ आगे बढने अथवा गोल करने म हाथो के सिवा शरीर के किसी भी हिस्स को इस्तेमाल कर सकता है अथात् खिलाडी पांव, सिर, जांघ अथवा छाती का इस्तमाल कर सकता है।

आडे रखे छड के नीचे की गोल रखा पूरी तरह से गेद द्वारा पार करन पर ही गाल माना जाता है। उस समय दाना गोल खम्भा के बीच म से गेद गुजरती है। पर गाल होगा तभी यदि आक्रामक टीम क बिना कोई नियम ताडे एसा किया हो। अधिक गोल करने वाली टीम की जीत मानी जाती है। यदि दोना टीम बराबर सख्या म गोल करे तो मैच अनिर्णित माना जाता है। खेल पर नियन्त्रण रैफरी रखता है और उसकी सहायता के लिए दो लाइन मैन होत हैं। रैफरी टाइम कीपर का काम भी करता है और गेम का रिकार्ड रखता है और खेल के अन्य नियम लागू करवाता ह। गाल किक थ्रो इन, कारनर किक, फ्री किक पनल्टी किक, आफ साइड फाउल और गोल होने का निणय भी रफरी दता ह।

हाकी

हमार देश का राष्ट्रीय खेल हाकी है। इस खेल म प्रत्यक टीम म 11 11 खिलाडी हाते है।

मदान—हाकी का मैदान 100 गज लम्बा व 60 गज चौडा होना है। किनारा रेखा से 5 गज अन्दर की ओर एक समाना तर रखा हाती है उस पर गोल रखा मे 16 गज दूर एक चिह्न होता है।

दाना टीम 35 35 मिनट के दो सत्र म खेलती हैं। मध्यान्तर 5 मिनिट का होता है। मध्या तर के बाद दाना टीम अपनी अपनी साइड बदल देती है। टास करके दाना टीमा क कप्तान यह फैसला करते हैं कि किसको कौनसी साइड लेनी है। तब मैदान के मध्य म गेद रखकर खल शुरू करने के लिए बुली की जाती है। अब नये नियमो के अनुसार बुली के स्थान पर गेंद हिट की जान लगी है। बुली करते समय दाना टीमा का एक एक खिलाडी साइड लाइनो की तरफ मुख करके खडा हा जाता है। उसकी अपनी गोल लाइन उसके दायी ओर हाती है। गद दानो खिलाडियो क बीच म रख दी जाती है। तब दोना म से प्रत्यक खिलाडी गेद और अपनी तरफ के मैदान के आधे भाग क बीच वाल हाकी से टप करता है और तब हाकी की चपटी तरफ से अपने विरोधी खिलाडी की हाकी का गेंद से ऊपर टप करता है। ऐसा तीन बार किया जाता है। इसक बाद दोनो म स कुस्त खिलाडी गेंद को हिट करन म सफल हाता है। शप सभी खिलाडी गेन्द स पाँच गज दूर गद और अपनी तरफ के गाल के बीच वाल भाग म खडे हाते हैं। यदि इस नियम को कोई ताडता है ता दुबारा बुली की जाती है। अब बुली कवल महिला मैचो म होती है।

यदि गेद गाल लाइन को पूरी तरह पार कर जाती है तो गोल हुआ माना जाता है। खिलाडी हाकी स्टिक म गेंद का हिट करके विरोधी क गोल म डालन को कोशिश करते हैं अधिक गाल करने वाली टीम मैच जीत जाती है। गाल, आफ साइड, फाउल फ्री हिट, पुश इन, कानर हिट, पनल्टी कानर, पनल्टी स्ट्रोक, पनल्टी बुली दन का निणय रफरी करते हैं। सत्र के दौरान दो रैफरी हात हैं। जिनका निणय प्रत्येक टीम को मान्य होता है।

कबड्डी

यह खेल भारत के गाँव-गाँव म लोकप्रिय है। इस खेल म दो टीमा म मुकाबला हाता है। प्रत्यक टीम म 7 खिलाडी होत है। पाँच खिलाडी एवजी म रख जाते है। बीस बीस मिनिट की दो पालियाँ होती है। बचिन छात्राओ क लिए केवल 15 मिनिट की पाली रखी जाती है।

मैदान—कबड्डी के लिए 12.5 मीटर लम्बे और 10 मीटर चौड़े समतल भू खण्ड की व्यवस्था होनी चाहिए। इन मापों में 5 सेमी चौड़ाई की सीमा रेखाएँ भी शामिल हैं। मध्य रेखा जो मैदान को दो भागों में बाँटती है वह 5 सेमी चौड़ी होती है। इस मैदान को स्पर्श रेखा और मावियों में बाँटा जाता है। स्पर्श रेखा मध्य रेखा से 3.25 सेमी दूरी पर होती है। स्पर्श रेखा से 1 मीटर दूर बोनस रेखा होती है। मैच खिलाने के लिए दो रेफरी, एक स्कोरर और दो सहायक स्कोरर होने चाहिये। अम्पायरों का निर्णय अंतिम माना जाता है।

इस खेल में एक टीम का खिलाड़ी कबड्डी बोलते हुए दूसरी टीम के पाले में जाता है। दूसरी टीम के जितने खिलाड़ियों को नियमानुसार छूकर अपने पाले में सुरक्षित लौट जाता है उतने अंक उसकी टीम को मिल जाते हैं। आउट हुए खिलाड़ी मैदान से बाहर बैठ जाते हैं। यदि आक्रामक स्वयं विरोधी पाले में पकड़ा जाए तो आउट हो जाता है और उसे बाहर बैठा दिया जाता है। विरोधी टीम को एक अंक मिल जाता है और उनका एक खिलाड़ी भीतर खेलने आ जाता है। इस तरह निर्धारित समय तक खेल चलता रहता है। विरोधी पाले को छू लेने से पहले ही खिलाड़ी के लिए कबड्डी बोलना जरूरी होता है। यदि खिलाड़ी इसमें देरी करता है तो रैफरी उसे चेतावनी देकर विरोधी टीम को आक्रमण का अवसर दे सकता है। यदि आक्रमक अपने पाले में लौट आता है अथवा विरोधी के पाले में आउट हो जाता है तो उसके पाँच सैकण्ड के भीतर ही विरोधी टीम अपना आक्रमक भेजेगी और दोनों टीम बारी बारी से ऐसा खेल समाप्ति तक करती रहेगी। रैफरी इस बार में समय का ध्यान रखेगा। यदि कोई टीम एक से अधिक आक्रमक अपने अपने विरोधी पाले में भेजता है तो रेफरी उसे चेतावनी देगा अथवा आउट करा देगा। विरोधी आक्रामक को पकड़ने पर जान बूझकर उसका मुख व दांत नहीं करवा सकते।

आक्रामक को इस तरह से पकड़ा भी नहीं जायगा कि उसे किसी तरह की चोट लगने की आशंका हो। विरोधी उस समय तक आक्रमक के पाले में जा नहीं सकता अथवा उसके शरीर के किसी भाग को छू नहीं सकता जब तक आक्रमक अपने पाले में चला नहीं जाता। यदि विरोधी इसके विपरीत करता है तो उसे आउट करार दिया जायगा। खेल समाप्ति पर जिस टीम के अधिक अंक बनते हैं उसे विजेता घोषित कर दिया जाता है। खेल शुरू होने से पूर्व टास करके यह फैसला किया जाता है कि कौन सी टीम पाला चुने अथवा आक्रमण का अधिकार लेवे। उत्तरार्द्ध में दोनों टीम पाला बदल लेती हैं।

खो-खो

कबड्डी की तरह खो-खो भी एक ऐसा भारतीय खेल है जिसमें किसी तरह

के साधना की जरूरत नही हाती है। इस खेल म प्रत्यक दल म नौ नौ खिलाडी होते है।

मदान—खा खो का मैदान 28 मीटर लम्बा व 19 मीटर चौडा होता है। खिलाडियो क बैठने व मैदान म दौडने वाल खिलाडिया की स्थिति चित्रानुसार होती है।

इस खेल म एक दल के आठ खिलाडी आयताकार मैदान म बने वर्गों म उकडू बैठत है। इनम एक का मुख एक तरफ और दूसरे का दूसरी तरफ हाता है। नौवा खिलाडी मैदान म लग दो खम्बा म स एक के पास खडा हो जाता है। दूसर दल के तीन खिलाडी मैदान म प्रवेश करत है तो खम्बा क पास पहले स खडा खिलाडी उनको स्पश कर आउट करने का प्रयास करता है। पहले तीन खिलाडिया के आउट होन के बाद दूसरी टीम के तीन और खिलाडी मैदान म प्रवश करत है। इस तरह तीन तीन की टोलियो म आने के बाद जब नौ खिलाडी आउट हो जात हैं, तो पारी खत्म हो जाती है। कुछ समय बाद दूसरी पार्टी छूने वाली और पहली दौडने वाली बन जाती है। मैच का फैसला दो पारिया म हाता है। एक पारी म एक दल का सात मिनट तक दौडने अथवा बैठन की क्रिया करनी होती है। दा मिनिट के विश्राम के बाद उस फिर बैठने (यदि पहले दौडा हो) या दौडने (यदि पहले मैदान मे बैठे हो) क्रिया करनी होती है। पांच मिनट क मध्यान्तर क बाद एक पारी और होती है। निर्धारित समय म जिस टीम के अधिक अक हात है वह मैच जीत जाती है। खो खो खिलान क लिए दा अम्पायर, एक रफरी, एक समय निरीक्षक और एक स्कोरर होता है।

बालीबाल

बालीबाल खल के लिये मैदान 59 फिट लम्बा व 29 फिट 6 इन्च चौडा होता है। इसम सीमा रेखाएँ भी शामिल रहती है। यदि गेंद इन रेखाओ म दूर चली जाये तो उसे आउट माना जाता है। आक्रमण रखाएँ किनारा रेखाओ मे पर कितनी ही दूरी तक बढी मानी जा सकती है। सर्विस एरिया अकन के लिए दो लाइनें 15 समी लम्बी और 5 समी चौडी और सिरा रेखा स 20 समी पीछे और इसके लम्ब दिशा म खिची जाती है इनम से एक तो दायी आर क किनारा रेखा के साथ साथ हाती है और दूसरी इसक तीन मीटर परे। बायी ओर सर्विस क्षत्र की यूनतम गहराई 2 मीटर हाती है। मैदान के मध्य म 3 फुट 3 इ च चौडा और 9 32 मीटर लम्बा नेट हाता है। यह जिस जाली स बना होता है उसका एक खाना 10 समी वग का हाता है। इसके ऊपरी हिस्स पर 5 समी सफद कनवस दुहरा कर लगाया जाता है। यह लचीली केबल से टगा होता ह। इसम गुजरती केबल तनी हाती है।

दोना टीम म 6 6 खिलाडी होत हैं। मैच पांच सेट अथवा गेम म पूरा होता है। दो गेम अथवा सट क बीच मध्यान्तर होता है। पहली तीन विश्राम काल अवधियां दा दो मिनट की होती है और चौथे और पांचवें सैट के बीच की अवधि पांच मिनट तक हो सकती है। रैफरी क सीटी बजान के साथ ही दायी किनारे खड़ा खिलाडी सर्विस करता है। सर्विस करने वाला सर्विस क्षेत्र म खडा होता है और अपने हाथ से गेंद पर प्रहार करता है। वह बाजू स किसी हिस्से का इस्तेमाल कर गेंद नैट के पार विरोधी टीम क क्षेत्र म भेज सकता है। गेद प्रहार से पहले दूसरे हाथ स छूनी नहा होनी चाहिय। प्रहार क बाद गेंद सर्विस रेखा पर अथवा काट के भीतर गिर सकती है। सर्विस करने के दौरान विरोधी टीम का ध्यान नही बँट जाना चाहिए। सर्विस करने पर गेंद यदि नट को छू जाय, नैट एरियल अथवा इसक काल्पनिक विस्तार अथवा सर्विस करने वाली टीम के खिलाडी स छू जाय अथवा कोट से बाहर गिर तो फाल्ट मानी जाती है। नैट के पार भेजने के पहले हर टीम तीन बार गेंद छू सकती है। कमर स ऊपर शरीर के किसी भी भाग म गेंद भेजी जा सकती है। पर शत यह है कि गेद पर प्रहार साफ हाना चाहिए। गेद पकडी नही जानी चाहिए न ही उस स्कूप किया जाना चाहिए और न ही किसी तरह से उस 'केरी' किया जाना चाहिए। ब्लाक करने की हालत को छोडकर गेंद एक साथ छू लेत है, तो इसे दो स्पश माना जाता है। तब शेप बचे एक स्पश म ही गेद नैट के पार जानी चाहिए। यदि कोई खिलाडी को छू रहा होता है तो उस हालत म भी गेंद खेली जा सकती है। यदि सर्विस क अलावा और किसी प्रहार से गेद नैट छू जाती है ता उस ठीक माना जायगा शत यह कि गेद दूसरी तरफ गिरे। मैदान के अ दर ही गेंद यदि जमीन छू ले अथवा मैदान स बाहर चली जाय तो आउट मानी जाती है। रैफरी का फैसला अन्तिम हाता है। सैट अथवा गेम उस समय जीत ली जाती है जब एक टीम 15 अक बना लेती है और दूसरी टीम उससे कम से कम दो अक पिछडी होती है। यदि 14 14 पर दोनो टीम बराबर हो तो खेल तब तक चलती रहती है जब तक एक टीम दूसरी स दो अक अधिक नही बना लेती।

कुश्ती

कुश्ती भारत का परम्परागत खेल है। हमारे देश के पहलवान मिट्टी म ही कुश्ती लड लिया करते है। लेकिन कुश्ती के लिए अखाडा हाना जरूरी है। अखाडा अष्ट भुजाकार होता है। यह 9 मीटर व्यास के एक वृत्ताकार क्षेत्र म होता है। के द्र स 7 मीटर व्यास का वृत्ताकार क्षेत्र क बाद एक मीटर लाल पट्टी का निष्क्रियता क्षत्र होता है। इसके बाद 1 50 से 1 80 मीटर सुरक्षात्मक क्षत्र होता है। गद्दा एक प्लेटफाम अथवा इसक मच पर रखा गया होता है। मच 1।

मीटर से अधिक ऊँचा नहीं होता। इस अखाड़े म आमने सामने दो कोने लाल और नीले रंग के होते है।

तीन-तीन मिनट के दो राउण्डो म कुश्ती का फैसला होता है। यदि इससे पहले कोई पहलवान चित हो जाये तो कुश्ती वही खत्म हो जाती है। समय निरीक्षक हर एक मिनिट बाद टाइम की घोषणा करता है। राउण्ड खत्म होने पर समय निरीक्षक घण्टी बजाता है तो रैफरी अपनी सीटी बजा करके कुश्ती खत्म होने की घोषणा करता है। राउण्ड के बीच का विश्राम एक मिनिट का होता है। कुश्ती लडने से पूर्व पहले गद्दो के बीचोबीच आकर पहलवान हाथ मिलाते हैं तब रफरी उनके नाखूनो आदि की जाँच करता है। रैफरी की सीटी बजाते ही कुश्ती शुरू हो जाती है।

एक पहलवान जब नीचे गिर जाता है, तो भी कुश्ती जारी रहती है। नीचे वाला ऊपर के पहलवान के काबू म से निकलकर ऊपर उठ सकता है, यदि इस कोशिश म वह गद्दे स बाहर हो जाता है तो पुन अखाडे म वह अन्दर आ करके घुटने टेक कर स्थिति लेनी होती है। यदि एक पहलवान विरोधी का नाच ले लेता है तो भी उसको सक्रिय रहना चाहिए। जब किसी एक पहलवान के तीन गिनते तक दोनो कन्धे गद्दे स छूते रह जायें तो उसे चित होना करार दिया जाता है। इसका सकेत रफरी गद्दे को हाथ स पीटकर अथवा सीटी बजाकर देता है। अको के आधार पर अथवा विरोधी को चित कर कुश्ती का फैसला होता है। दोनो पहलवानो के अक बराबर हो, तो कुश्ती बराबर छूट जाती है। पहलवानो को निम्नलिखित हिसाब स अक दिये जाते है। विरोधी पहलवान को गद्दे पर गिरा कर काबू म लाने पर अथवा नीचे स निकलकर काबू म रहते हुए ऊपर आने पर, ठीक दाँव लगाने पर, और विरोधी के गद्दे पर गिरने के बाद उसका सिर अथवा कन्धा उसे छुए अथवा नहीं, कोन दिया जाने पर एक अक दिया जाता है।

इकाई—11

शारीरिक शिक्षा द्वारा नेतृत्व एव समूह भावना का विकास

11

समूह भावना का अथ एव महत्त्व

समूह (Group) की कुछ प्रमुख मनोवैज्ञानिक परिभाषाएँ निम्नाकित है—

पी जिसबट—"एक सामाजिक समूह व्यक्तियो का समूह है जो मान्यता प्राप्त सरचना के अधीन क्रिया प्रतिक्रिया करता है।"

लीबोन—"जब मानव, समूह मे आता है तो वह समूह मन का अनुभव करता है। उसके अनुभव, चिन्तन तथा काय, उसके नितान्त व्यक्तिगत रूप स काय करने की स्थिति से भिन्न होते है।"

कैली एव तिबॉट—"व्यक्तियो के सगठन ही समूह हो जाता है। इसके सदस्य सामान्य उद्देश्य स्वीकार करते हैं। इनकी सम्प्राप्ति म वे आपस मे क्रिया, प्रतिक्रिया करते है एव प्रगति करते है।"

कटल—"समूह मनुष्यो का वह सगठन है जिसम आपसी सम्बन्धो के माध्यम से वे अपनी कतिपय आवश्यकताओ को स तुष्ट करते हैं।"

उपयु क्त परिभाषाओ से स्पष्ट है कि समूह म निम्नाकित तीन बातो का होना आवश्यक है —

(i) सामान्य उद्देश्य,
(ii) सदस्यता,
(iii) सगठन।

समूह भावना किसी व्यक्ति या बालक के किसी समूह के सदस्य के रूप म सामान्य उद्देश्यो एव सगठन के प्रतिनिष्ठा, समपण तथा सहकारिता की भावना है। बालको म समूह भावना का विकास सामाजीकरण (Socialization) की प्रक्रिया का परिणाम होता है। बालक की अभिवद्धि एव विकास की विभिन्न अवस्थाओ (शैशवावस्था, बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था) मे सामाजीकरण की

प्रक्रिया द्वारा उनके सामाजिक विकास का विवेचन इस पुस्तक के खण्ड-'ग्र' के अध्याय-8 म किया जा चुका है। 6 वर्ष की आयु से बालक समूह कार्यों म रुचि लेने लगता है जिसमे उसका सामाजीकरण होता है। यह विकास उसके शारीरिक विकास के कारण क्रमश सभव होता है। समूह भावना का यह विकास बाल्यावस्था व किशोरावस्था म उत्तरोत्तर विकसित होती जाती है। समूह भावना के कारण ही बालक बालिकाओ म खेल की प्रवृत्ति प्रतिस्पर्धा, नेतृत्व, दल भावना के कारण दल व साथियो की प्रतिष्ठा के लिये त्याग करने की भावना का विकास होता है।

शारीरिक शिक्षा द्वारा नेतृत्व एव समूह भावना का विकास

शारीरिक शिक्षा द्वारा बालको को सामूहिक व्यायाम, पी टी, खेल कूद आदि शारीरिक प्रवृत्तियो म भाग लेने का अवसर मिलता है जिसमे उनम नेतृत्व एव समूह भावना का विकास होता है। शैशवावस्था समाप्त कर ज्यूँही बालक विद्यालय परिवेश म पदार्पण करता है और उसे एक बडे विद्यार्थियो के समूह म क्रिया प्रतिक्रिया करने का अवसर मिलता है जिससे उसका सामाजीकरण होता है। यद्यपि शैशवावस्था म बालक को घर तथा आस पडौस के बच्चो के साथ खेलने का अवसर मिलता है तथा उसम समूह भावना का प्रादुर्भाव होने लगता है किन्तु बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था म विद्यालयी वातावरण म रहकर उसकी समूह भावना का उत्तरोत्तर विकास होता जाता है और बडे समूह या मित्र मण्डली या खेल कूद के दल का सदस्य बनने के कारण उसम समूह भावना परिपक्व होती है। उसम नेतृत्व व समूह के प्रति निष्ठा एव त्याग की भावना बलवती हो उठती है।

समूह भावना का विकास मानसिक और सामाजिक विकास म जुडा हुआ है। डा एम एम माथुर का यह कथन उपयुक्त है कि—"मानसिक और सामाजिक विकास का भी आपस म गहरा सम्बन्ध है। बालक का मानसिक विकास उसे दूसरो के साथ सामजस्य स्थापित करने व्यवहार कुशल होने और सामाजिकता की भावना—वृद्धि म सहायक होता है। उनके सामूहिक कार्यों म भाग लेने की सामूहिक भावना का उदय शीघ्र होता है। व दूसरो का नेतृत्व भली भाति कर लेते है और अच्छे नेता की सभी योग्यताएँ उसम आ जाती हैं।"[1] शारीरिक शिक्षा की विभिन्न प्रवृत्तियो के माध्यम से बालक म नेतृत्व एव समूह भावना का विकास द्रुतगति से होता है।

यौगिक व्यायाम | 12

[इकाई-12- अष्टांग योग की आवश्यकता, महत्त्व, यम नियम एव आसनो के महत्त्व की सामान्य जानकारी।
इकाई-14 - योग शिक्षा से मानसिक एव शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रभाव।
इकाई-15—ध्यान का बालको पर प्रभाव।]

(क) अष्टाग योग की आवश्यकता, महत्त्व, यम, नियम एव आसनो के महत्त्व की सामान्य जानकारी

यौगिक व्यायाम भारतीय योगदशन का अभिन्न अग है। योगदशन के अनुसार अष्टाग योग के अन्तगत आठ अग होते हैं— (1) यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचय व अपरिग्रह), (2) नियम (शौच, सन्तोष तप, स्वाध्य व ईश प्रार्थना), (3) आसन, (4) प्राणायाम, (5) प्रत्याहार, (6) धारणा, (7) ध्यान, तथा (8) समाधि। इस प्रकार योगासन भारतीय सस्कृति के अभिन्न अग हैं जिनमे व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक विकास होता है। विद्यार्थी जीवन म इनका विशेष महत्त्व है। अनेक रोगो की चिकित्सा म भी योगासन सहायक होते है। विशेष स्थान, उपकरण व धन के अभाव म भी य विद्यालयो के लिए अत्य त अनुकूल हैं। इस दिशा म अब प्रयत्न किय जा रह हैं। अत शिक्षको को इनस परिचित होना आवश्यक है।

नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) म योग की आवश्यकता एव महत्त्व को इन शब्दो म प्रकट किया गया है—"शरीर और मन के समेकित विकास क साधन के रूप म योग शिक्षा पर विशेष बल दिया जायेगा। सभी विद्यालयो म योग की शिक्षा की व्यवस्था के लिये प्रयास किये जायेंगे और इस दृष्टि से शिक्षक प्रशिक्षण पाठयक्रमो म योग की शिक्षा भी सम्मिलित की जायेगी।"

इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुसार राष्ट्रीय शिक्षक, अनुसधान एव प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) द्वारा निर्मित 'राष्ट्रीय पाठ्यक्रम' म 10 वर्षीय विद्यालयीय सामान्य शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर 'स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा' विषय को 'केन्द्रिक पाठ्यक्रम' (Core Curriculum) का अभिन्न एव अनिवाय अग बनाया गया है जिसके अन्तगत राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुकूल योग शिक्षा को भी सम्मिलित किया गया है।

राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर द्वारा 10 + 2 शिक्षा योजना के अन्तर्गत 10 वर्षीय सामान्य विद्यालयी पाठ्यक्रम की कक्षा 9 व 10 के निमित्त 'स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा' विषय के पाठ्यक्रम में योग शिक्षा के निम्नांकित प्रकरण निर्धारित किये है—

कक्षा–9 यौगिक व्यायाम

(1) महाप्राण ध्वनि, (2) यौगिक सूक्ष्म व्यायाम, (3) स्थूल व्यायाम, (4) कुक्कुटासन, अर्ध मत्स्येन्द्रासन, योग मुद्रासन व भुजंगासन, (5) कायोत्सर्ग, (6) प्राणायाम (भस्त्रिका), (7) षटकर्म (धौती व जलनेति।

कक्षा–10 यौगिक व्यायाम

(1) यौगिक सूक्ष्म व्यायाम (पूर्ववत), (2) योगासन—(i) मयूरासन (ii) सर्वांगासन, (iii) हलासन, (iv) कर्णपीडासन, (v) मत्स्यासन (vi) रामबाणासन (3) प्राणायाम (सूर्य भेदी) (4) षट्कर्म (एच्छिक)–(i) कपाल भाति (ii) कुंजल (5) श्वास-प्रेक्षा।

उपर्युक्त योग शिक्षा के शिक्षकों व प्रशिक्षकों की तैयारी के लिए एस टी सी एवं बी एड स्तर के प्रशिक्षण नियमित कार्यक्रमों में भी योग शिक्षा को सम्मिलित कर लिया गया है।

योगासनों का निम्नांकित विवेचन उनकी विधि, महत्त्व एवं भागों को स्पष्ट करने हेतु किया जा रहा है—

(1) कुक्कुटासन

कुक्कुटासन, इस आसन में मुर्गे जैसी आकृति बनती है इसलिए इसका नाम कुक्कुटासन रखा गया है। कुक्कुटासन करने के लिए सर्वप्रथम आसन पर

कुक्कुटासन

कम्बल या दरी बिछाकर पालकी (चौकडी) लगाकर बैठ जाइए। दायें पैर को हाथ द्वारा उठाकर बाइं जांघ पर रखिए। फिर बायें पैर का उठाकर दाइं जांघ पर रखिए। सुषुम्ना की अस्थि (रीड की हड्डी) सीधी रखिए। दोना हाथ घुटना पर रखिए। आँखें बन्द करके ध्यान दीजिय।

इस मुद्रा को पद्मासन कहते हैं। पद्मासन म बठने क बाद दोना जांघा और पिण्डलिया क बीच म स दोना हाथ निकाल कर हथलिया का जमीन पर टिकाइए। दोनो हाथा क बल पर सार शरीर का तालकर रखिए। दृष्टि सामन रखिए, इस तरह कुक्कुट (मुर्गा) बन जाइय।

लाभ—इस आसन स बाँहा तथा वक्ष (छाती) का बल बढता है। इसन जठराग्नि प्रदीप्त हाती है, भूख खुलकर लगने लगती है। आमाशय (मेदा) क सार राग दूर हात हैं। इस आसन का करत रहने म पट-दर्द, कब्ज, आफरा, गैस, अपच जैस कष्ट नहीं हात।

(2) मत्स्येन्द्रासन

मत्स्येन्द्रासन के लिए कम्बल या दरी पर बैठ जाइये। दायां पैर पद्मासन की तरह बाई जांघ पर (जघामूल) म रखिए। बायें पैर को घुटना मोड़कर, दाइ जांघ की तरफ खड़ा करके रखिय। दायां हाथ बायें पर की बाई तरफ ल जाकर नाई हथली स बायें पैर का पजा पकड़ लीजिय। बायें हाथ को पीठ क पीछे से ले जाकर दाइ जांघ छू लीजिय। अब गदन को बाई तरफ जहा तक घुमा सकें घुमाइय।

(2) ऊपर लिखी क्रिया को अब दूसरे हाथ-पैर स कीजिय।

लाभ—इससे मुखडे पर तेजस्विता तथा कांति आती है। सारे शरीर का रक्त शुद्ध होकर कायाकल्प हो जाता है। शरीर की सारी अस्थियां, नाड़िया, मांस-पेशिया तथा ग्रंथियां के रोग दूर हो जाते हैं और स्फूर्ति प्राप्त होती है। पुराना अतिसार (दस्तो की बीमारी) पेट म कीड़े, नसो की कमजोरी आदि दूर होती है।

(3) योगमुद्रासन

योगमुद्रासन करने क लिए कम्बल, चटाई या आसन पर चौकडी लगाकर बैठिये। दायें पर को उठाकर बाइ जांघ पर रखिय, बायें पैर को उठाकर दाइ जाघ पर रखिय। सुषुम्ना नाडी अर्थात् रीढ़ की हड्डी सीधी रखिय। दोनो हाथो को दोना घुटनो पर रखिये। यह पद्मासन की स्थिति है। इसके बाद दोनो हाथ पीठ के पीछे ले जाकर बाये हाथ से दायें हाथ की कलाई पकड लीजिय। रीढ की हड्डी सवथा सीधी रखिय। आखें ब द कीजिये धीरे धीरे सास बाहर छोडते हुए आगे की ओर झुकिये। आगे की ओर झुकते झुकते मस्तक धरती पर टिका दीजिये। कुछ देर सास बाहर रोक कर सास अ दर खीचिय। श्वास अन्दर खीचत हुए धीर धीरे उठकर क (2) स्थिति म आइय।

लाभ—इससे जठराग्नि (पाचन शक्ति) बढती है। कब्ज, अपच, बदहजमी दूर होती है। श्वास पथ (गल, कण्ठ नली आदि) म बलगम (श्लेष्मा) हो तो वह बाहर निकल आती है और गला साफ हो जाता है।

(4) भुजगासन

भुजगासन इसम पट क बल लेटिये। दोनों हथेलियाँ को सामने भूमि पर रखिये दोनो हाथो की कुहनिया बगलो स सटी हुई रह। दोनो पर परस्पर सटे

भुजगासन (सर्पासन)

हुए रहे तथा पजे भूमि पर गिरे हुए। धीरे धीरे सांस लेते हुए पीठ और वक्ष (छाती) के भार को हाथों पर डालते हुए कमर से ऊपर का शरीर ऊपर उठाइये। आंखें बन्द कीजिये। थोडी देर श्वास रोककर कुम्भक कीजिये। धीरे-धीरे श्वास बाहर छोडते हुए सिर, पीठ तथा सीने को नीचे लाते हुए जमीन पर ले आइये।

लाभ--(1) आधा सीसी अर्थात् आधे सिर का दर्द बहुत कष्टदायक होता है और साधारणत दवाओ से ठीक नहीं होता। यह आसन करने से अवश्य आराम होता है।

(2) इस योगासन से खांसी, दमा, ब्रोंकाइटिस आदि रोगो का भय नहीं रहता और अगर ये रोग पहली अवस्था मे हो तो अवश्य दूर हो जाते हैं।

विशेष---यह आसन प्रतिदिन दो मिनट कीजिए।

(5) कायोत्सर्ग (शवासन)

विधि—कम्बल बिछाकर बिलकुल सीधे लेट जाइए। पांव मे एक फुट का अन्तर रखिए। हाथ शरीर के दोनो ओर (150 का कोण बनाते हुए) रखें। हथेलियां आकाश की ओर आधी खुली हो। पैर के पजे ढीले और फर्श पर लिटाए हुए रखें। गर्दन को भी ढीला करते हुए किसी भी एक ओर झुक जाने दीजिये। आंखें बन्द करें और शरीर को निश्चेष्ट निष्कम्प छोड दे। श्वास प्रश्वास नासिका से ही लें और छोडें। पहले ध्यान श्वास पर केन्द्रित कीजिए कि ठण्डा ताजा श्वास ले रहे है और गर्म विकारयुक्त छोड रहे हैं। श्वास की गति नियमित हो जाने पर कल्पना कीजिए कि आपके शरीर मे ढिलाई की लहर आ रही है और यह ढिलाई की लहर आपके पांव के अगूठे से चलनी शुरू हुई है और ऊपर तक जा रही है। अपने मन को शरीर के एक एक अग पर केन्द्रित करते जाइये और कल्पना करते जाइये कि वह अग शिथिल हो गया है। क्रम इस प्रकार रहेगा—पांव का अगूठा, पहली अगुली, दूसरी अगुली, तीसरी अगुली चौथी अगुली, तलवे, ऐडी, टखने, पिण्डली, घुटने, जघा तथा नितम्ब, कमर, पेट नाभि एव वक्ष स्थल। हाथ के अगूठे, अगुलियां, हथेली, कलाई, बाहु, कोहनी, भुजदण्ड और स्कन्ध। गर्दन, ठुड्डी, होठ, दांत, जिह्वा, कपोल, कान, नासिका, आंखें, पलकें, भौंह, ललाट, सिर के बाल एव चोटी।

अब पुन ऊपर से नीचे ध्यान केन्द्रित करते जावें और कल्पना करते जाइए कि अग शिथिल हो रहे है। सवप्रथम शिखा मण्डल, चोटी, सिर के बाल, ललाट, भौहें, पलकें, आँखें, नासिका, कान, कपाल, जिह्वा, दाँत, होठ, ठुड्डी व गदन, स्कंध, भुजदण्ड, कोहनी, बाहु, कलाई, हथेली, अगुलियाँ तथा हाथ के अगूठे। वक्षस्थल, नाभि, पेट एव कमर। नितम्ब, जघा, घुटन, पिण्डली, टखने, एडी, तलवे, अ गुलियाँ और अ गूठे।

इस प्रकार नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे कल्पना करने से शरीर के अग बिल्कुल शिथिल हो जावेंगे और इस अवस्था में यदि कोई व्यक्ति आपका हाथ या पैर ऊपर उठाकर उसे छोड दें तो वह लकडी की भाँति नीचे गिर पडेगा। इस आसन को आप 5 से 10 मिनट तक करें।

कायोत्सग शवासन

लाभ—आधुनिक परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि शवासन में हृदय गति, श्वास गति व मस्तिष्क की विद्युत सक्रियता (इलेक्ट्रीकल एक्टीविटी) न्यूनतम हो जाती है और रक्त प्रवाह प्रत्युतम होता है। यह पूर्णत एक शिथिल अवस्था होती है। जिसमें श्वास की गति 18 से घटकर केवल 6–7 प्रति मिनट ही रह जाती है, ऑक्सीजन व्यय घट जाता है, शारीरिक क्रियाओं की गति घट जाती है और रक्त का दबाव भी घट जाता है। प्रसिद्ध हृदय रोग विशेषज्ञ डा दाते के अनुसार उच्च रक्तचाप के लिए कायोत्सग सर्वाधिक उपयुक्त है। अनिद्रा व हृदय रोगों में, निराशावादी व्यक्तियों के लिए, मानसिक चिंताओं के लिए एव अन्य मानसिक विकारों के लिए भी अत्युत्तम है।

मानसिक तनाव के साथ ही, शिर शूल व माइग्रेन के दद के लिए बहुत ही लाभकारी है। इससे मानसिक स तुलन बना रहता है और मन का प्रभाव शरीर पर पडने से, शारीरिक स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। व्यक्ति की इच्छा शक्ति का विकास होता है एव आत्म विश्वास जाग्रत होता है। शक्ति सचय के लिए यह आसन बेजोड है, थकान मिटती है एव जजर शरीर में भी नवजीवन का सचार होता है।

धनुरासन

विधि—इस आसन का नाम धनुरासन इसलिये पडा है, क्योंकि आसन करते समय आसनकर्ता की आकृति धनुष के आकार के समान बन जाती है। पहिले भूमि पर कुछ बिछाकर उल्टा लेट जाइये। पाँव सीधे रहने चाहिये। दोनों पैरों के पजे और ऐडियाँ आपस में मिलाये रखो। पृथ्वी पर पैर की अगुलियों के
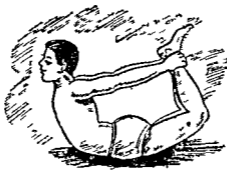
धनुरासन

सहारे पैर को रक्खो । धीरे धीरे घुटना को पीठ की तरफ मोडते जाइए । दोनो हाथो को पीछे ले जाओ तथा हाथो से दोनो पैरो के टखनो को मजबूती से पकड लो । दोनो जांघा, सिर, छाती को पृथ्वी से ऊपर की ओर उठाते जाओ । हाथो से दोनो पैरो के टखना का खूब खीचो । घुटने जमीन से ऊपर उठ जावेगे । इस प्रकार धनुष के समान शरीर बन जायेगा ।

लाभ—यह आसन बहुत ही लाभप्रद है जो व्यक्ति पीठ झुकाकर के काम करते है उनके लिये बहुत उपयोगी है । समस्त मेरुदण्ड लचीला, कठोर तथा शक्तिशाली बनता है । बाहु बलवान होती है तथा शरीर मे टेढापन नही आता है ।

पेट के अनेक रोग दूर हो जाते है, भोजन ठीक प्रकार से पचता है, यकृत और पील्हा नही होता । मदाग्नि नही होती है, आंतो की कमजोरी दूर हो जाती है । डिसेंटरी, लीवर, किडनी, हाथ पैरो की दुर्बलता आदि के रोग दूर हो जाते है । शरीर हमेशा स्वस्थ, सुडौल, सुन्दर शक्तिशाली बना रहता है ।

सर्वांगासन

विधि—यह सबसे महत्त्वपूर्ण आसन है, बच्चे, युवक, बूढे, स्त्रियाँ, लडकियाँ सभी को इस आसन का अभ्यास कराना चाहिये । इस आसन के अभ्यास से सम्पूर्ण शरीर के अवयवो पर बडा ही अच्छा प्रभाव पडता है । सर्वप्रथम पृथ्वी पर पीठ के बल सीधा लेट जावें पर जुडे हुए सीधे रहे, अपने सम्पूर्ण शरीर को कडा रखे शरीर मे फुर्ती हो जिससे शरीर थोडे से इशारे पर उठ सके । अब धीरे धीरे पैरो को ऊपर उठायें गर्दन के पास शरीर को मोड लें, कन्धो से पैरो तक का समस्त भाग ऊपर की तरफ बिल्कुल सीधा होना चाहिये । दोनो हाथ मजबूती के साथ जमीन पर ही जुडे रहे । समस्त शरीर का भार दोनो कन्धो और ग्रीवा पर आ ठहरना चाहिये, टाँगें ऊपर बिल्कुल सीधी रहे, पैरो को मिलालें । सिर गर्दन, कन्धा तथा पीठ का निचला हिस्सा जमीन पर ही रहेगा । धीरे धीरे पैरो तथा कमर को पुनः पृथ्वी की ओर लाइये तथा पहिली जैसी दशा मे रखना चाहिये । इस आसन के अभ्यास को करते समय साँस हमेशा नाक से ही लेनी चाहिये ।
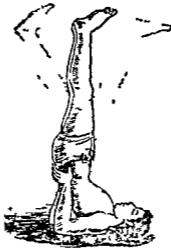
ऊर्ध्व सर्वांगासन

लाभ पट की तमाम नसे ठीक हो जाती है, पेट के विकार कम होते हैं आमाशय पर जोर पडता है, आमाशय की तमाम खराबिया दूर हो जाती हैं। रीढ की हड्डी मजबूत बनती है। कमर का दद, सिर का दद तथा जोडा का दद दूर हो जाता है।

यह आसन नेत्र ज्योति वधक, स्मरण शक्ति को तीव्र करने वाला वीय वधक तथा रक्त शोधक है। भूख खूब लगती है कफ दूर हो जाता है। समस्त रोगा जैसे वात रोग, पाडू रोग, पित्त राग, बवासीर, बहरापन, मानसिक विकार, मधुमेह आदि रोग दूर हो जाते हैं।

हल आसन

विधि—इस आसन को सवागासन के नाम से भी पुकारा जाता है। सबसे पहले भूमि पर सीधे चित्त लेट जाइये। पैर बिलकुल सीधे रहे। दोनो टागा को

परस्पर मिलाते हुए धीरे धीरे ऊपर उठाइये। सिर के पीछे ले जाकर जमीन पर टिका दीजिए जिससे घुटने मुडने न पावें। पैर के पजे जमीन पर ही टिके रहे।

हाथ चाहे भूमि पर रखें और चाहे सहारे के लिए कमर पर लगा लें। पुन धीरे-धीरे पैरो को जमीन से वापिस उठाते हुए पहिले की ही अवस्था मे जमीन पर रखें।

लाभ--इस आसन का अभ्यास करने से रक्त का सचार होता है। अत सार शरीर का रुधिर शुद्ध हो जाता है। भूख खूब लगती है। उदर सम्बन्धी सारे राग दूर हो जात है। यकृत और प्लीहा जस भयानक रोग नही हात है। अजीण नही हाता है। मधुमेह, जिगर, तिल्ली के रोगियो के लिए यह आसन बहुत ही लाभप्रद है।

कर्ण पीडासन

विधि--जमीन पर पीठ के सहारे चित्त होकर लेटें। दोनो टागा को पैर के पजा महित मिलाये। धीरे धीरे टागा का उठाकर सिर के कन्धा के पीछे ले जावें तथा कान तक लगावे। टागा स काना को दबावें तथा दोनो भुजायें पीछे पीठ स लगावें।

लाभ -हलासन के समान ही लाभदायक है। उदर सम्बन्धी सारे रोग दूर हो जात हैं। भूख खुब लगती है। शौच साफ आता है। कानो का बहरापन दूर हो जाता है। मेरुदण्ड पृष्ठ तथा लचकीला बना रहता है। जिगर तिल्ली के सब राग दूर हो जाते है।

मत्स्य आसन

विधि—पदमासन लगाकर के पीठ के सहारे जमीन पर लेट जायें। दोना हाथा को पीठ के सहारे जमीन पर ही लगायें। कमर का भाग जमीन पर नही रहना चाहिय। सिर तथा पदमासन वाला भाग जमीन से लगा रहे। घुटना का पृथ्वी पर समतल रहना परमावश्यक है। सारे शरीर को अच्छी प्रकार से कडा रखखो। सास जल्दी जल्दी निकालनी और लेनी चाहिए।

मत्स्यासन

लाभ—शरीर के अधिकाश अवयवो को मजबूत बनाता है। उदर सम्बन्धी विकार दूर होवे हैं। शौच साफ आता है। आता मे मल जमता नही है। आतो के तरह तरह के रोग दूर होते है। शरीर निरोग रहता है। रीढ की हड्डी मजबूत बनती है। मस्तिष्क की शक्ति बढाने को यह आसन बहुत ही उपयोगी है।

राम बाणासन

विधि—फर्श पर कम्बल बिछाकर पेट के बल लेट जाएँ। अपने हाथों को कन्धों के समानान्तर आगे ले आएँ। अब श्वास लेते हुए नाभि से आगे का हिस्सा ऊपर उठाएँ तथा हाथों के बीच अधिक से अधिक फासला बनाएँ। अब पीछे से पाँव इस कदर उठाएँ कि नाभि से पीछे का हिस्सा उठ जाए। दोनों पाँवों के बीच भी अधिक से अधिक फासला बनाएँ। यथासम्भव इस मुद्रा में रुकने का प्रयास करें। इस आसन में शरीर की आकृति बाण की तरह हो जाती है। इसलिए इसे राम बाणासन कहा जाता है।

लाभ—इस आसन को करने से पेट की आँतों पर अनुकूल असर पड़ता है। पाचन व मल विसर्जन क्रिया सुधरती है। मधुमेह व गुर्दे रोग निवारण में सहायता पहुँचती है।

(ख) योग शिक्षा से मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रभाव

उपर्युक्त यौगिक आसनों के विवरण के अन्तर्गत शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रभाव का विवेचन किया जा चुका है, अतः उसकी पुनरावृत्ति करना अनुपयुक्त है। जहाँ तक योग शिक्षा से मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव का प्रश्न है, यह कहना पर्याप्त होगा कि शारीरिक स्वास्थ्य पर ही मानसिक स्वास्थ्य निर्भर रहता है। अतः यौगिक शिक्षा से शारीरिक स्वास्थ्य के साथ साथ मानसिक स्वास्थ्य स्वतः ही ठीक रहता है।

स्वास्थ्य के मुख्यतः दो स्वरूप होते हैं—(1) शारीरिक स्वास्थ्य तथा (2) मानसिक स्वास्थ्य।

(1) शारीरिक स्वास्थ्य—शारीरिक स्वास्थ्य के अन्तर्गत खेलकूद और व्यायाम के सन्दर्भ में आगे विस्तार से चर्चा की जायेगी। यहाँ केवल मानसिक स्वास्थ्य के अर्थ व उसके महत्त्व को स्पष्ट करना आवश्यक है।

(2) मानसिक स्वास्थ्य—मानसिक स्वास्थ्य की निम्नांकित परिभाषाएँ उल्लेखनीय हैं —

क्रो तथा क्रो (Crow and Crow)—"मानसिक स्वास्थ्य मानव कल्याण का विज्ञान है जो मानव सम्बन्धों के समस्त पक्षों को अपने में समाहित करता है।"

डा एस एस माथुर—"हम मानसिक स्वस्थ व्यक्ति उसी को कह सकते हैं, जिसके सम्पूर्ण अर्जित या वंशानुगत गुण पूर्ण रूप से विकसित होते हैं और उद्देश्य को सामने रखते हुए इनका अन्य वस्तुओं के साथ सामंजस्य रहता है। मानसिक स्वास्थ्य से तात्पर्य एक आकर्षक व्यक्तित्व वाला व्यक्ति नहीं, परन्तु वह व्यक्ति मानसिक स्वस्थ कहे जाते हैं जो सामाजिक हो तथा जिनकी इच्छा शक्ति दृढ़ हो और जिनमें आत्म विश्वास हो।" मानसिक आरोग्य विज्ञान के दो मुख्य कार्य हैं —

(1) मानसिक विकृति का रोकना, और (2) मानसिक विकृति का उपचार करना।

इन परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मानसिक स्वास्थ्य बालक की मानसिक विकृतियों के कारण उत्पन्न उसके कुसमायोजन का निराकरण कर उसके व्यक्तित्व को सुसमायोजन में सहायक सिद्ध होता है तथा उसमें आत्म विश्वास उत्पन्न कर उसके अधिगम को प्रभावी बनाता है।

योग शिक्षा एवं उसके आसनों द्वारा मानसिक विकृतियों का निराकरण एवं उनसे बचाव भी होता है। योग चिकित्सा पद्धति का अब इतना विकास हो गया है कि वह जनसाधारण में काफी लोकप्रिय होती जा रही है। यौगिक आसनों से व्यक्ति में मानसिक शान्ति मिलती है तथा उसके मानसिक उद्वेगों का शमन होता है। यह व्यक्ति में आध्यात्मिक बल एवं अंतःचेतना के शुद्धीकरण के कारण होता है।

(ग) ध्यान का बालकों पर प्रभाव

यौगिक व्यायाम अर्थात् आसनों में ध्यान का विशेष महत्त्व होता है। ध्यान (Meditation) अथवा चिन्तन का विकास योग शिक्षा द्वारा सुगमता से होता है क्योंकि ध्यान ही यौगिक आसनों का आधार भी होता है। अष्टांग योग के आठ अंगों—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि—में ध्यान को अष्टांग योग की अन्तिम परिणति में माना गया है जबकि आसन व अन्य अंगों को उस लक्ष्य तक पहुँचने का माध्यम या आरम्भिक सोपान का स्थान दिया गया है। योग शिक्षा द्वारा ध्यान अथवा अवधान (Attention) की अभिवृद्धि एवं विकास से बालकों के मानसिक विकास पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है।

ध्यान द्वारा ही बालक ज्ञानार्जन कर अपनी मानसिक शक्तियों—स्मृति, तर्क, चिन्तन, निर्णय, अवबोध, सौंदर्यानुभूति, कल्पना आदि—को विकसित करता है जिससे उसकी शैक्षिक प्रगति होती है। ध्यान से ही बालक को मानसिक परिपक्वता प्राप्त होती है।

———

इकाई—13

3 सूक्ष्म व्यायाम का महत्त्व, लाभ, आवश्यकता एव बरती जाने वाली सावधानियाँ

यौगिक आसन जब तक उनका पूर्ण अभ्यास न हो जाय प्राय श्रमसाध्य, जटिल एव अधिक समय की अपेक्षा रखने वाले होते है। इसके अतिरिक्त अशक्त, रोगी एव कुपोषण से ग्रस्त व्यक्तियो के लिये सुविधाजनक एव लाभप्रद सिद्ध नहीं होते। आधुनिक अत्यधिक व्यस्त जीवन म भी प्राय उनके लिए समय निकाल पाना सम्भव नहीं होता। अत अपेक्षाकृत कुछ सरल यौगिक व्यायामो का प्रावधान भी किया गया है जिन्हे 'सूक्ष्म व्यायाम' के नाम से जाना जाता है।

सूक्ष्म व्यायाम सरल, कम समय-सापेक्ष तथा अल्प बल, क्षमता व कौशल से सम्पन्न हो सकने वाले हल्के व्यायाम है जो शरीर को सक्षम, चुस्त एव स्फूर्तिमय बनाने के अतिरिक्त शरीर को निरोग रखने म भी सहायक होते हैं। कुछ ऐसे सूक्ष्म व्यायामो की विधि, महत्त्व, लाभ व सावधानियो का विवेचन निम्नांकित है —

यौगिक सूक्ष्म व्यायाम

(अ) उच्चारण स्थल तथा विशुद्ध चक्र की शुद्धि—

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हो, पैरो से स्कन्ध तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर ग्रीवा को समारम्भा से आधा अगुल पीछे की ओर झुकाते हुए तथा नत्रो को पूर्ण रूप से खोलकर सामने देखते हुए मुख बन्द रख।

क्रिया—पूव बताये अनुसार स्थिति म खडे होने क पश्चात् क्रिया प्रारम्भ करने के पूव दोनो हाथ स्वाभाविक रूप से नीचे लाकर उच्चारण स्थल पर ध्यान रखते हुए दानो नासिका र ध्रो से लोहार की धाकनी की भाति उच्च स्वर करते हुए श्वास प्रश्वास करे। प्रारम्भिक क्रम 25 बार।

विशेष—कण्ठकूप से हाथ के चतुरगुल मूल स माप ठुड्डी ग्रौर दृष्टि का सम रखने की अवस्था को ग्रीवा की समावस्था कहते है।

(क) (ख)
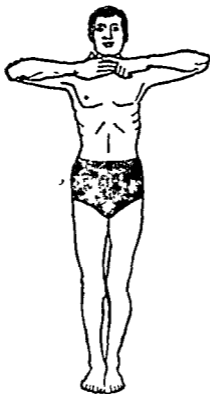
लाभ—नाडियो म कण्ठ के ग्र दर जिस स्थान स शब्दोच्चारण होता है, वहाँ पर जो वात, पित्त, कफ, मज्जा मेदादि अनुपयुक्त पदार्थों का सग्रह हो जाता है उसकी निवृत्ति हाती है। तुतलापन दूर होता है। विचार करने की शक्ति बढती है। स्वर मधुर हो जाता है। सगीत का अभ्यास करने वालो के लिये यह परम उपयोगी है।

(ब) यौगिक प्रार्थना

पैर परस्पर मिले हुए हो, पैर स सिर तक का विभाग सरलता से सीधा रख कर नेत्र बन्द रखते हुए हाथो को सम्पुट करके हृदय देश के ऊपरी विभाग म स्थित करें। तत्पश्चात् दोनो अगूठो को कण्ठकूप से मिलाकर भुजवल्लियो से वल पूवक वक्ष स्थल को दबायें।

क्रिया —मन स बाह्य वृत्तियो को हटाकर प्रभु से प्राथना करें अर्थात् एक स्वरूप का ध्यान करे। ज्यो ज्यो मन एकाग्र हो, भुजबल्लियो तथा हथेलिया का ढीला करें। मन एकाग्र न होने पर हाथो को बलपूवक दबाना चाहिए।

लाभ - इस क्रिया के अभ्यास स मानसिक विकारा की निवृत्ति, मनोवहा नाडी की उध्वगति, इष्टानुकम्पा की प्राप्ति और शरीर के अनेक रोगो की निवृत्ति होती है। विशेषतया यह क्रिया चित्त की एकाग्रता के लिए बहुत उपयोगी है। आत्म साक्षात्कार एव परम शान्ति प्राप्ति का यह अभ्यास अचूक साधन है।

(स) बुद्धि तथा धृति शक्ति विकासक

स्थिति पैर परस्पर मिले हुए हो, पैरा से स्कध तक का विभाग सरलता से सीधा रखते हुए मुख बद करके सिर को पोछे की ओर पूण रूप से झुकावें, नेत्रो को पूण रूप से खोलकर आकाश की ओर दखने हुए खडे रह।

क्रिया—शिखा मण्डल म ध्यान रखते हुए दोना नासिका रन्ध्रो स लोहार की धोकनी को भांति यथाशक्ति बलवग प्रदान करत हुए श्वास प्रश्वास करें। प्रारम्भिक क्रम 25 वार।

लाभ—शिखास्थान के नीचे बुद्धि स्थल साधारण, गाय के खुर के परिमाण वाला है। इस बुद्धि मण्डल के अन्दर घडी की सुई के समान एक नाडी निरन्तर घूमती रहती है, जो सभी इन्द्रिया और अग प्रत्यगो को ज्ञान प्रदान करती है। उसम कफ आदि की विषमता हाने पर नाडी की गति अवरुद्ध हा जाती है जिसके परिणामस्वरूप बुद्धि मान्ध, विस्मृति, विक्षेप, सशय आदि दोष उत्पन्न होत है। इस क्रिया के अभ्यास से समस्त दोष दूर हो जात हैं और बुधित्व की विशुद्धि, धृति शक्ति की वृद्धि तथा सद्बुद्धि प्रदान करन वाले ज्ञान तन्तुआ की जागृति होती है।

(द) स्मरण शक्ति विकासक

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हा, पैरा से स्कन्ध तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर पैरा से डेढ़ गज की दूरी पर पृथ्वी पर नीचे की ओर दृष्टि जमा कर खडे हो। ग्रीवा समावस्था म रहे।

क्रिया—ब्रह्मरन्ध्र दशम द्वार सहस्रारविन्द म ध्यान रखते हुए, आन्तरिक बल वेग प्रदान करते श्वास प्रश्वास करें, आरम्भिक क्रम 25 वार।

लाभ—मस्तक और शिखा स्थान के मध्य मस्तिष्क (स्मृति मण्डल) म कम आदि की विफलता स उत्पन्न होने वाले पागलपन, भ्रान्ति, विस्मृति, उन्माद आदि रोगा की निवृत्ति होती है। यह क्रिया मस्तिष्क स अधिक परिश्रम करने वालो की थकावट दूर करके अधिक स अधिक काय करने की क्षमता तथा स्मरण शक्ति को विकास प्रदान करती है। स्वाध्याय शील, कलाकार, विद्यार्थिया तथा वकीला क लिए यह अभ्यास परम उपयोगी है।

(य) मेधा शक्ति विकासक

स्थिति—पर परस्पर मिल हुए हा। पैरा स स्क ध तक का विभाग सीधा रखकर नेत्रो को ब द कर ठुड्डी कण्ठकूप स लगाकर खडे रह।

क्रिया—गले के पीछे गठीले स्थान, मेधाचक्र पर ध्यान रखकर आ तरिक बल प्रदान करत हुए लाहार की धाकनी की भांति उच्च स्वर स श्वास प्रश्वास करें।
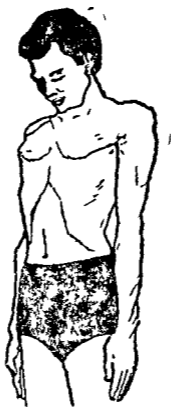
विशेष—ध्यान रहे कि एक से पाँच क्रियाओं के पश्चात श्वास प्रश्वास करते समय जितने जोर से श्वास अन्दर लेवें, उतने ही जोर से श्वास बाहर छोड़ें। आरम्भिक क्रम 25 बार।

लाभ—इस क्रिया से मेधा-स्थान में होने वाले कफ आदि दोषों का विनाश होता है। परस्पर प्रेम तथा आकर्षण शक्ति की प्राप्ति होती है, प्राण सुषुम्नावाही होता है।

(र) नेत्रशक्ति विकासक

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से कण्ठ तक का विभाग सरलता से सीधा रखते हुए ग्रीवा को पूर्ण रूप से पीछे झुकाकर खड़े रहें।

विशेष—दोनों नेत्रों से पूर्णतया आन्तरिक बल प्रदान करते हुए भ्रूमध्य में निर्निमेष याने बिना पलकें झपके हुए देखते रहें। जब नेत्रों में थकावट प्रतीत हो अथवा आँसू आने के पहले ही नेत्रों को बन्द कर लें। पुनः नेत्रों को खोलकर पहले की भाँति ही करें। आरम्भिक क्रम 5 मिनट का होना चाहिए।
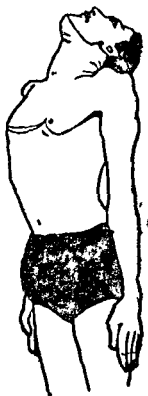
लाभ—इस क्रिया के अभ्यास से नेत्रों में होने वाले समस्त दोषों की निवृत्ति होती है। नेत्रों की ज्योति बढ़ती है तथा गिद्धदृष्टि प्राप्त होती है।

उदर शक्ति विकासक (अजगारी मुद्रा - क्रिया—1)

स्थिति—दोनों पैर आपस में मिलाकर एकदम सीधे खड़े हो जायें।
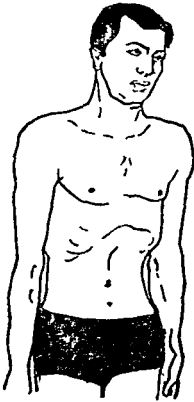
(अ) (ब)

क्रिया—धीरे धीरे श्वास भरते हुए पेट को फुलावें और कुछ देर श्वास रोक कर फिर बाहर निकाले और पेट को पिचकायें।

उदर शक्ति विकासक (क्रिया–2)

स्थिति—दोनों पैर आपस में सटे रहें और पैरों से कंधे तक का भाग सीधा रखें और ग्रीवा को समावस्था में माथा अंगुल ऊपर की ओर उठाकर खड़े रहें।

क्रिया—दोनों नासारन्ध्रों से जोर से वायु खींचें और बाहर निकालकर पेट पिचकायें।

उदर शक्ति विकासक (क्रिया–3)

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से स्कन्ध तक का भाग सीधा रख कर सिर को पूर्णतया पीछे झुकाए हुए खड़े रहें।

क्रिया—दोनों नासिकारन्ध्रों से तीव्र वेग से श्वास अन्दर खींचें तथा छोड़ें। श्वास बाहर छोड़ते समय पेट अन्दर जाय और श्वास लेते समय पेट फूले। आरम्भिक क्रम 25 बार।

उदर शक्ति विकासक (क्रिया-4)

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हो पैर से स्कंध तक का भाग सीधा रखकर पैरो से डेढ गज की दूरी पर देखते हुए खडे रहे।

क्रिया—ऊपर बताई हुई क्रिया 3 को दोहरावे। इसम तीव्र गति से नासिका द्वारा श्वास खीचना और छोडना है। श्वास छोडते समय पेट अन्दर जाये और श्वास लेते समय पेट फूलाना है।

नाभि पर 90 डिग्री का कोण बन जाय। फिर उदर शक्ति विकासक क्रिया (3) को दोहरावें। श्वास भरते समय पेट फुलाना है और छोडते समय पेट पिचकाना है।

(8) उदर शक्ति विकासक

स्थिति—जैसी उदर क्रिया (6) में बताई गई है।

क्रिया—अन्दर के श्वास को नासिका द्वारा बाहर निकाल कर बाह्य कुम्भक की स्थिति में पेट को शीघ्रतापूर्वक फुलावें तथा पिचकावें।

यथासाध्य श्वास रोकने के बाद क्रिया बंद करके धीरे धीरे श्वांस लें। क्रिया करते समय श्वास न भीतर जाए और न बाहर आवे।

(9) उदर शक्ति विकासक

स्थिति—क्रिया (7) की भांति स्थिति मे खड़े रहकर नाभि पर 90 डिग्री का कोण बनाकर उदर क्रिया (8) को दोहरावे। 90 डिग्री का अंश के कोण पर
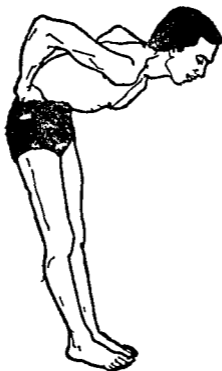
सामने झुक कर बाहर श्वास रोक कर जल्दी जल्दी पेट फुलाना और पिचकाना है।

यौगिक व्यायाम करने से पूर्व निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये

1 आसन शौच क्रिया के बाद या खाना खाने के 6 घंटे बाद करे।

2 क्रिया करने के लिए दरी या कम्बल बिछा लेना चाहिये।

3 क्रिया करने से पूर्व जूते तथा मौजे उतार देने चाहिये।

4 क्रिया को लयबद्ध तथा सामान्यतया एकाग्रता की स्थिति में करें।

5 क्रियाएँ धीमे तथा शक्ति के अनुसार ही की जानी चाहिये।

6 लयबद्ध तरीके से मौनपूर्वक करना चाहिये।

7 यथासम्भव आंखे बन्द रखें, जो जबरदस्ती से किसी आसन को नहीं करना चाहिए।

8 प्रतिदिन नियमपूर्वक करना चाहिए।

9 जिस स्थिति में आसन करें उस स्थिति मे कुछ देर रुके और हर आसन के बाद थोड़ा विश्राम करें।

————

इकाई—16

14 राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्र गान व समूह गान का महत्त्व

राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रगान व समूहगान (राष्ट्र प्रेम या देश भक्ति सम्बंधी गीतों का समवेत गान) राष्ट्रीय सम्मान के प्रतीक माने जाते हैं जिन्हें स्वतन्त्रता-दिवस (15 अगस्त) तथा गणतन्त्र दिवस (26 जनवरी) के अवसर पर पूर्ण सम्मान दिया जाता है तथा राष्ट्रीय ध्वज को निश्चित परिमाण व विधि के अनुसार फहराया जाता है तथा राष्ट्रगान को एक निश्चित राग, लय व गति से गाया जाता है। इन नियमों का उल्लंघन अशोभनीय तथा मर्यादाहीन माना जाता है। इन्हें उचित सम्मान देने हेतु सभी को सावधान की स्थिति में खड़े होकर राष्ट्रगान को सामूहिक रूप से गाना भी पड़ता है। अतः "स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा" के अन्तर्गत इन राष्ट्रीय प्रतीकों का उचित सम्मान देने का प्रशिक्षण एवं उनकी जानकारी को सम्मिलित किया जाना उपयुक्त है।

राष्ट्रीय ध्वज—

तिरंगा 'बलिदान, पवित्रता तथा समृद्धि' का प्रतीक—कांग्रेस द्वारा स्वीकृत इस तिरंगे राष्ट्रीय ध्वज में तीन रंग थे – ऊपर केसरिया, बीच में सफेद तथा नीचे हरा। बीच की सफेद पट्टी पर गहरे नीले रंग का चरखा बनाया गया था। इसके अनुसार केसरिया रंग 'धैर्य, त्याग व वीरतापूर्ण बलिदान' का, सफेद रंग 'सत्य, शांति और पवित्रता' का तथा हरा रंग विश्वास तथा समृद्धि' का भाव बतलाने वाला माना गया।

झण्डे की लम्बाई चौड़ाई के लिए 3 व 2 का अनुपात तय कर दिया गया। उसे इसी अनुपात में छोटा-बड़ा किया जा सकता है। यह भी कहा गया है कि झण्डे का कपड़ा खादी का याने हाथ का कता हुआ सूती रेशमी या ऊनी होना चाहिए।

भारत का 'राष्ट्रध्वज' बना—22 जुलाई, 1947 को हमारी 'संविधान सभा' द्वारा सर्वसम्मति से इस 'राष्ट्रध्वज' के रूप में स्वीकार कर लिया गया। इसके लिए प्रस्ताव पेश करते हुए नेहरू जी ने कहा था—

"यह ध्वज साम्राज्य, साम्राज्यवाद या किसी के ऊपर किसी के प्रभुत्व का संकेत नहीं। यह न केवल हमारी स्वतन्त्रता का, अपितु इस देश के वाले समस्त व्यक्तियों की स्वाधीनता का प्रतीक है। यह ध्वज जहाँ कहीं भी जाएगा न केवल उन्हीं देशों में, जहाँ हमारे राजदूतों और मन्त्रियों के रूप में भारतीय रहते हैं, बल्कि समुद्रों के पार जहाँ कहीं भी हमारे जहाज इस ध्वज को ले जाएंगे, मुझे आशा है, वहाँ यह ध्वज उस देश की जनता को भ्रातृत्व का संदेश देगा, उन्हें बताएगा कि भारत विश्व के प्रत्येक राष्ट्र के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने का इच्छुक है और वह स्वाधीनता प्राप्त करने वाले सब लोगों की सहायता करना चाहता है।"

14 अगस्त, 1947 को संविधान सभा के चिरस्मरणीय अर्द्ध रात्रिकालीन अधिवेशन में भारतीय महिलाओं की ओर से यह विधिवत् राष्ट्र को समर्पित किया गया। 15 अगस्त, 1947 को स्वतन्त्र भारत के राष्ट्रध्वज के रूप में 'यूनियन जैक' के स्थान पर फहराया गया।

'चरखे' के स्थान पर 'चक्र'—स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जब तिरंगा राष्ट्रध्वज बना तो उसमें बीच की सफेद पट्टी पर 'चरखे' के स्थान पर 'चक्र' अंकित कर दिया गया। इस परिवर्तन का कारण यह था कि ध्वज की एक ओर का प्रतीक दूसरी ओर भी ठीक वैसा ही होना चाहिए। यह बात 'चक्र' में तो सम्भव थी 'चरखे' में नहीं। यह चक्र सारनाथ के 'अशोक स्तम्भ' से लिया गया। यह चक्र 'भारत की प्राचीन संस्कृति' का प्रतिनिधित्व करता है। डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन के शब्दों में 'अशोक चक्र धर्म चक्र' का प्रतीक है। वह धर्म जो सदा गतिशील है, जिससे यह प्रकट होता है कि स्थिरता में मृत्यु है और गति में जीवन।

राष्ट्रध्वज का व्यवहार—राष्ट्र ध्वज के उचित व्यवहार की व्यवस्था के लिए भारत सरकार ने झण्डे के सम्बन्ध में कुछ नियम बनाये हैं। उसके अनुसार किसी भी व्यक्ति या वस्तु के सम्मान में ध्वज झुकाने पर निषेध है। राष्ट्र ध्वज के ऊपर या उसके दाहिनी ओर कोई अन्य ध्वज नहीं लगाया जा सकता। यदि बहुत से ध्वज एक सरल रेखा में लगाने हों तो अन्य ध्वज राष्ट्र ध्वज के बाँयी ओर रहेंगे। जब ध्वज फहराए जाएँ तो राष्ट्र ध्वज सबसे ऊपर रहेगा। ध्वज क्षैतिज (लेटी हुई) अवस्था में नहीं ले जाया जा सकता। वह सदैव ऊँचा और फहराने के लिए मुक्त होना चाहिए। यदि एक ही दण्ड पर कई ध्वज फहराने हों तो राष्ट्र ध्वज को किसी शोभा यात्रा में ले जाया जाय तब उसे प्रमुख व्यक्ति के दाएँ कंधे पर ऊंचा रखना चाहिए और उस ध्वज वाहक को जुलूस में सबसे आगे चलना चाहिए। जब ध्वज को फहराना हो तब ध्वज की केसरिया पट्टी सबसे ऊपर होनी चाहिए।

साधारणतः राष्ट्र ध्वज सभी प्रमुख सरकारी भवनों जैसे उच्च न्यायालय, सचिवालय, आयुक्त कार्यालय, कलेक्टरी, कारागृह, जिला बोर्ड, नगरपालिका आदि

पर फहराना चाहिए। कुछ विशिष्ट स्थानो पर सीमावर्ती क्षेत्रो म भी राष्ट्र ध्वज का व्यवहार म लाया जा सकता है। कुछ विशेष अवसरो यथा— स्वतत्रता दिवस, महात्मा गा धी के ज म दिवस, गणत त्र दिवस, राष्ट्रीय सप्ताह या अ य किसी भी राष्ट्रीय आन दोत्सव पर ध्वज क व्यवहार पर प्रतिबध नही रहगा तथा कोई भी व्यक्ति अपन निवास स्थान पर राष्ट्र ध्वज फहरा सकेगा। सामा यत राष्ट्र ध्वज को आधा झुकाकर नही फहराया जाता, पर राष्ट्रीय स्तर पर 'शोक' के भाव का व्यक्त करने के लिए ऐसा किया जाता है।

झण्डे का सूर्योदय स सूर्यास्त तक ही फहराना चाहिए। किसी राष्ट्रनेता क सम्मान म उनकी शवशय्या को राष्ट ध्वज स ढँका जा सकता है, पर अग्नि सस्कार अथवा दफन करने से पहले ध्वज को ससम्मान हटा लिया जाना चाहिए। जब किसी मोटर पर राष्ट्रध्वज लगाना हो ता उसका दण्ड 'रेडिएटर कैंप' पर ही लगाना चाहिए। समटे जाने के समय झण्डा धरती स नही छूना चाहिए।

'वन्दे मातरम्' मातृभूमि की वन्दना

इस गीत की रचना बकिम बाबू न अलग स की तथा सन 1882 म उस 'आन दमठ' उप यास म शामिल कर लिया। उप यास म यह गीत स यासियो द्वारा माँ दुर्गा की व दना के समय गाया गया है, जिसमे व तत्कालीन अत्याचारी शासक के विरुद्ध लडने के लिए आशीर्वाद माँगती है। यह गीत सस्कृत और बगला—दोनो भाषाओ का मिला जुला रूप है। 'राष्ट्रगीत' के रूप म 'व दे मातरम्' निम्नाकित रूप मे है —

व दे मातरम्

सुजलाम् सुफलाम मलयज शीतलाम
शस्य श्यामलाम् मातरम् ॥ व दे ॥

शुभ्र ज्योत्सना पुलकित यामिनीम्,
फुल्ल कुसुमित द्रुमदल शोभिनीम्,
सुहासिनीम् सुमधुर भाषिणीम,
सुखदाम्, वरदाम् मातरम् ॥ व दे ॥

त्रिशकोटि कण्ठ कलकल निनाद कराल,
द्वि-त्रिश कोटि भुजैधृतख रकर वाल,
के बोले मा ! तुमि अबल !

बहुबल धारिणीम्, नमामि तारिणीम्,
रिपुदल वारिणीन् मातरम ॥ व दे ॥

श्यामलाम् सरलाम् सुस्मिताम्, भूषिताम्
धरणी भरणी मातरम् ॥ व न्द ॥

इस गीत म कवि ने 'भारत' को 'माता' मानकर उसकी व न्दना की है। 14 अगस्त, 1947 की आधी रात के समय जब हमारा देश आजाद हो रहा था तब श्रीमती सुचेता कृपलानी ने 'व न्दे मातरम्' गीत गाया तथा सभी ने खडे होकर इसे सुना। दूसरे दिन यानि 15 अगस्त, 1947 को सुबह प्रसिद्ध सगीतकार ओंकारनाथ ठाकुर ने इसे आकाशवाणी पर गाया। इस गीत के सम्ब ध मे सन् 1948 म प नेहरू ने कहा—"यह स्पष्टत और निर्विवाद रूप स भारत का प्रमुख राष्ट्रीय गीत है और महान् एतिहासिक परम्परा है। हमारे स्वत न्त्रता सग्राम से इसका निकट सम्बन्ध रहा है। इसका स्थान सदा बना रहेगा और कोई दूसरा गीत इसको विस्थापित नही कर सकता।"

'जन गण मन' कोटि कोटि कण्ठो का गौरव

भारत म 'वन्दे मातरम्' तथा 'जन गण मन' को 'राष्ट्रगीत' का गौरव मिला है। इनम 'जन गण मन' 'राष्ट्रगीत' है तथा 'व न्दे मातरम् हमारे 'राष्ट्र का प्रार्थनागीत।'

'जन गण मन' गीत की रचना गुरुदेव रवी न्द्रनाथ ठाकुर ने की थी। इसकी रचना की प्रेरणा उन्हे अचानक ही मिली। सन् 1901 की बात है। कलकत्ता म काग्रेस का 17वाँ अधिवेशन हो रहा था। उसम दक्षिण रजन सेन ने 'व न्दे मातरम्' को अपनी बनाई हुई नई स्वर लिपि मे गाया।

जब हमारा देश सन् 1947 म स्वत न्त्र हुआ तो भारतीय गणतत्र की सविधान सभा ने रवि ठाकुर द्वारा रचित इस गीत को 'राष्ट्रगीत' के रूप म स्वीकार कर लिया। इस समय 'व न्दे मातरम्' भी सामने था। नेहरूजी का विचार था कि सगीत और स्वरो की दृष्टि स 'जन गण मन' अधिक उपयुक्त है। उस समय यह भी स्वीकार किया गया कि 'व न्दे मातरम्' को 'जन गण मन' क समान ही स्थान और महत्त्व प्राप्त रहेगा। 24 जनवरी, 1950 को औप चारिक रूप स 'जन गण मन' को भारत का 'राष्ट्रगीत' घोषित किया गया।

यह गीत सबसे पहले 'भारत भाग्य विधाता' शीर्षक से 'तत्त्वबोधिनी' नामक पत्रिका म सन् 1912 म प्रकाशित हुआ। इस पत्रिका के सम्पादक स्वय रवी द्रनाथ ठाकुर ही थे। मूल गीत म कुल पाँच छ न्द थे जबकि 'राष्ट्रगीत के रूप म इसका केवल पहला छ द ही स्वीकार किया गया, जो इस प्रकार है—

"जन गण मन अधिनायक जय हे
भारत भाग्य विधाता।

इस राष्ट्रगीत का गायन काल लगभग 52 सेकण्ड है। कुछ अवसरों पर इसकी प्रथम तथा अन्तिम पंक्तियाँ गाई जाती है, जिनका समय लगभग 20 सेकण्ड है।

'जन गण मन' एक रूप में विराट परमात्मा की स्तुति है तो दूसरे रूप में यह सारे संसार के प्रति कवि की कल्याण अथवा मंगलकामना है। इसमें सबको एक ही प्रेमसूत्र में पिरोने की बात कही गई है। 'जन गण मंगलदायक' शब्द से जन की सर्वमंगल' की भावना प्रकट होती है। इतना ही नहीं, सारे संसार का कल्याण करने वाला परमात्मा ही 'भारत भाग्य विधाता' है।

इस प्रकार हमारा 'राष्ट्रगीत' जनगणमन / कल्पना च
साथ ही साथ हमारे राष्ट्र की महान् संस्कृति और अ परम्पर
का प्राणगीत भी है। संसार के बहुत कम देशों में भा
मिलती है। ध्यान रखो 'राष्ट्रगीत' का सम्मान 'राष्ट्र'
है। इस गीत के गायन के समय सीधे खड़े होकर ही
प्रकट कर सकते है।

समूहगान

राष्ट्रगीतो एवं दे गान
गान उनके लिए निश्चि गति

राष्ट्रीय पर्वों पर समूहगान गाते समय राष्ट्रगान को उचित सम्मान दिया जाना चाहिए।

शारीरिक शिक्षा एव शिक्षक का इसमे योगदान

राष्ट्रीय ध्वज का फहराने तथा राष्ट्रगान के समवेत गान के समय छात्र-छात्राओं एव समस्त उपस्थित व्यक्तियो का सावधान की स्थिति म खडे होकर उचित सम्मान प्रदर्शित करना अनिवार्य होता है। इस अनुशासन का महत्व समझाना शारीरिक शिक्षा का अग होना चाहिए। शारीरिक शिक्षा प्रशिक्षक को राष्ट्रीय पर्वों पर उपयुक्त विधि स राष्ट्रीय ध्वज एव राष्ट्रगान का उचित सम्मान देन हेतु अनुशासन स्थापित करना अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए।

———

शिक्षक प्रशिक्षण (प्रथम वर्ष) परीक्षा, 1990

स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा

सप्तम प्रश्न-पत्र

समय 3 घण्टे] [पूर्णाङ्क 75

नामाक (अको मे) ....

नामाक (शब्दो मे)

परीक्षा का दिन एव तिथि .... ..

भाग 'अ'

समय 30 मिनिट] [पूर्णाङ्क 15

निर्देश

(1) सभी प्रश्न करने है ।
(2) उत्तर देने से पहले प्रश्नो को अच्छी तरह से पढ़िये ।
(3) प्रश्न क्रमाक 1 से 14 के उत्तर मे उनके सम्मुख निर्धारित कोष्टक मे केवल सकेताक्षर अकित करें । प्रश्न क्रमाक 15 से 22 तक रिक्त स्थानो की पूर्ति करें ।
(4) प्रश्न सख्या 1 से 14 तक प्रश्न आधा अक का है तथा 15 से 22 तक प्रत्येक प्रश्न एक अक का है ।

1 मानव शरीर म कुल अस्थियाँ होती हैं—
(क) 2/3, (ख) 2/5,
(ग) 2/8, (घ) 222 । ( ) ½

2 भोजन मे जल का शोषण होता है—
(क) छोटी आात मे, (ख) बडी आात में,
(ग) यकृत मे, (घ) गुर्दो मे । ( ) ½

3 मानव का सामाजिकतापूर्ण विकास होता है—
(क) विद्यालय मे, (ख) परिवार में,
(ग) समाज मे, (घ) घर मे । ( ) ½

4 चलती मोटर या गाडी से उतरिये—
(क) मुँह पीछे करके, (ख) मुँह सामने करक,
(ग) मुँह दायें करके, (घ) मुह बायें करके । ( ) ½

5 टी० बी० मे रोग क्षमता प्राप्त करने के लिए—
(क) बी० सी० जी० का उचित प्रयोग करना चाहिए।
(ख) कुनैन का प्रयोग करना चाहिए।
(ग) स्टेप्ट्रोमाइसन लेना चाहिए।
(घ) प्राकृतिक वातावरण मे रहना चाहिए। ( )

6 चेहरा कितनी अस्थियो से बना होता है—
(क) 12, (ख) 10,
(ग) 14, (घ) 8। ( ) ½

7 मलेरिया के जीवाणु का नाम है—
(क) प्रोटोजोआ, (ख) एनोफेलीज,
(ग) बैक्टीरिया, (घ) पोरीफेरा। ( ) ½

8 दूध की शुद्धता मालूम की जाती है—
(क) लेक्टोमीटर से, (ख) बैरोमीटर से,
(ग) थर्मामीटर से (घ) आल्टीमीटर से। ( ) ½

9 भोजन प्राप्त ऊर्जा का माप है—
(क) किलोग्राम (ख) ग्राम,
(ग) कलोरी, (घ) मिलीग्राम। ( ) ½

10 केरीड फाउल लिया जाता है—
(क) फुटबाल मे, (ख) हाकी मे,
(ग) बॉलीबाल मे, (घ) कबड्डी मे। ( ) ½

11 कबड्डी खेल से सम्बन्धित है—
(क) अण्डरहैण्ड, (ख) कली,
(ग) पसनलफाउल, (घ) लोना। ( ) ½

12 राष्ट्रीय झण्डे की लम्बाई व चौडाई का अनुमान होता है—
(क) 2 3, (ख) 2 4,
(ग) 3 5, (घ) 6 2। ( ) ½

13 चेजर किस खेल से सम्बन्धित है ?
(क) फुटबाल मे, (ख) खो-खो,
(ग) कबड्डी, (घ) हाकी। ( ) ½

14 बालीबाल मे प्रत्येक दल मे खिलाडियो की सख्या होती है—
(क) 9, (ख) 6
12, (घ) 7। ( ) ½

निर्देश रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए—

15 मलेरिया रोग "" ""नामक मच्छर से होता है। 1

16 विटामिन "" "" की कमी से मसूडो से खून निकलता है। 1

17 हड्डी टूट जाने से उस अंग मे " आ जाती है। 1

18 गाईडिंग ट्रेनिंग में " चिकित्सा की शिक्षा दी जाती है। 1

19 नाक आउट पद्धति मे टीम एक बार हारने से "" "" से बाहर हो जाती है। 1

20 ऊँची कूद में"" "" ""सदा एक पाँव से लिया जाता है। 1

21 वालीबाल में विश्राम के लिए टाइम आउट की अवधि " सैकण्ड से अधिक नही होती। 1

22 रिले दौड में"" खिलाडियो से मिलकर एक दल बनाया जाता है। 1

शिक्षक प्रशिक्षण (प्रथम वर्ष) परीक्षा, 1990

स्वास्थ्य एव शारीरिक शिक्षा

सप्तम प्रश्न-पत्र

समय 2½ घण्टे] [पूर्णांक 50

भाग 'ब'

आवश्यक निर्देश

1 सभी प्रश्न करने हैं।

2 प्रश्न 1 से 7 चार-चार अंक के हैं उत्तर 100 शब्द हैं।

3 प्रश्न 8 से 11 आठ-आठ अंक के हैं उत्तर शब्द हैं।

1 प्राथमिक चिकित्सा के उपयोग मे भ्राने वाली प्रमुख पट्टियो के प्रयोग लिखें। 4

2 व्यक्तिगत स्वास्थ्य के लिए कौन-कौन सी वांछित भ्रादतें होना भ्रावश्यक है। 4

3 योगासन करने से हमें क्या-क्या लाभ है ? 4

4 राष्ट्रीय जीवन में हमारे राष्ट्रीय ध्वज का क्या महत्त्व है ? 4

5 रिले दौड में बटान बदलने की क्रिया कैसी होती है ? 4

6 थकान निवारण के उपाय बताइए। 4

7 शारीरिक शिक्षा द्वारा बालको में नेतृत्व एव समूह भावना का विकास कसे होता है ? 4

8 खेलकूद मनुष्य के शारीरिक, मानसिक एव सामाजिक विकास में भ्रत्यन्त लाभप्रद है। कसे ? 8

9 शारीरिक शिक्षा की कोई दो परिभाषाएँ दीजिए भ्रौर बताइए कि इसकी भ्रावश्यकता हमारे विद्यालय में क्या है ? 8

10 पर्यावरण की शुद्धता भ्राधुनिक युग के बढते हुए प्रदूषण के नियत्रण पर निभर है। विवेचन करें। 8

11 गृह परिचर्या से भ्राप क्या समझते हैं ? एक गुणी गृह परिचारिका में भ्रपने कार्यों के प्रति किन किन बातो का होना भ्रावश्यक है ? 8

— —